

एम.ए. संस्कृत द्वितीय प्रश्न-पत्र
ललितसाहित्य एवं साहित्यशास्त्र



लेखक : डॉ. सन्यसाची सारंगी

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूँ-341306 (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

ललितसाहित्य एवं साहित्यशास्त्र

इकाई	पाठ्यक्रम विवरण	पृष्ठ संख्या
इकाई-1	: मुद्राराक्षस नाटक	1 - 67
इकाई-2	: स्वप्नवासवदत्तम् नाटक	68 - 121
इकाई-3	: मेघदूतम् (उत्तरमेघ)	122 - 167
इकाई-4	: दशकुमारचरित(अष्टम-उच्छ्वास)	168 - 191
इकाई-5	: हर्षचरित(पंचम-उच्छ्वास)	192 - 231

इकाई-1

मुद्राराक्षस नाटक

संरचना

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 विशाखादत्त का परिचय
- 1.3 विशाखादत्त का शास्त्रवैदुष्य
- 1.4 विशाखादत्त की शैली
- 1.5 कथावस्तु का मूलस्रोत
- 1.6 मुद्राराक्षस का नामकरण
- 1.7 मुद्राराक्षस का अङ्गीरस
- 1.8 प्रतिपाद्य विषयवस्तु
- 1.9 पात्रों का चरित्र-चित्रण
- 1.10 मुद्राराक्षस नाटक के महत्वपूर्ण पद्यांश
- 1.11 कठिन शब्दावली
- 1.12 अभ्यास प्रश्नावली

1.0 उद्देश्य :-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. मुद्राराक्षस नाटक की ऐतिहासिकता अर्थात् काल-विषयक विभिन्न मत-मतान्तरों के विश्लेषण के उपरान्त उनके काल का निर्धारण कर सकेंगे।
2. मुद्राराक्षस नाटक की प्रतिपाद्य-विषयवस्तु का परिचय प्राप्त करेंगे।
3. मुद्राराक्षस नाटक का काल-निर्धारण किन बहिःसाक्ष्यों तथा अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर किया गया है, इस जिज्ञासा का शमन कर पायेंगे।
4. मुद्राराक्षस नाटक की भाषा एवं शैली को समझ सकेंगे।
5. मुद्राराक्षस नाटक का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल स्रोत का परिज्ञान कर पायेंगे।

6. जीवन के लिए महत्वपूर्ण कूटनीति को जानेंगे।
7. जीवन में करणीय व अकरणीय कार्यों के विषय में जानेंगे।
8. संस्कृत भाषा एवं साहित्य के सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक महत्व को जानेंगे।

1.1 प्रस्तावना :-

मुद्राराक्षस नामक नाटक के रचयिता कवि विशाखदत्त हैं। इस नाटक में सात अंक हैं तथा इसका प्रमुख रस वीर है। यह एक नई विधा का नाटक है। प्रायः संस्कृत नाटकों में नायिका अवश्य होती है परन्तु यह ऐसा नाटक है जिसमें न तो कोई नायिका है और न ही कोई विदूषक है। यह नाटक विशुद्ध कूटनीतिक राजनीति को आधार बनाकर लिखा गया है। यह एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया नाटक है। इस नाटक में महान् कूटनीतिज्ञ चाणक्य की प्रतिभा व षडयन्त्र के द्वारा नन्दवंश का विनाश दिखलाया गया है। तदुपरान्त नन्दवंश के मन्त्री राक्षस को वश में करने व चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनने के लिये विवश करने का वर्णन प्राप्त होता है।

1.2 विशाखादत्त का परिचय :-

मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में लिखा है- “आज्ञापितोऽस्मि परिषदा यथाद्य त्वया सान्मत बटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक् पृथुसूनुः कवेर्विशाखादत्तस्य कृतिरभिनवं मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यमिति।” इससे इतना ही पता चलता है कि इस नाटक के कर्ता का नाम विशाखादत्त है। जो महाराज पृथु अथवा नाटक के कुछ अन्य संस्करणों के अनुसार महाराज भास्करदत्त के पुत्र हैं। इनके पितामह का नाम सामन्त बटेश्वरदत्त था। किन्तु विशाखादत्त कहाँ के थे? केवल नाटककार थे, कवि थे या किसी राजतन्त्र के संचालक या संचालकों में से कोई एक थे, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। किन्तु मुद्राराक्षस के नाटककार विशाखादत्त हैं- इसमें दो मत नहीं हैं। वस्तुतः भवभूति और कालिदास की तरह विशाखादत्त भी अपने व्यक्तित्व के परिचय के सम्बन्ध में उदासीन हैं। इसका कारण यह है कि हमारे पूर्वीय चिन्तक सदैव से सिद्धान्त के उपासक थे न कि व्यक्ति के व्यक्तिपरता के इस निरपेक्षता से प्रस्तुत चरित-नायक विशाखादत्त भी पूर्ण प्रभावित प्रतीत होते हैं। फलतः इनकी आलोच्य कृति ही इनके व्यक्तित्व का परिचायक है।

1.2.1 व्यक्तित्व :-

विशाखादत्त मूलतः राजनीतिक षडयंत्रों के शिल्पी और शुद्ध विचारक हैं। स्वयं उदार दृष्टिकोण वाला हिन्दूधर्म में विश्वास रखकर भी अन्य धर्म के प्रति आस्थावान थे। उनके व्यवहारों में, विचारों में आत्मात्मिक संयम, धार्मिक आस्था तथा सांसारिक व्यवहार घुल-मिलकर

ऐसा समन्वय उपस्थित कर देते हैं कि पाठकों की सहानुभूति का पथ प्रशस्त हो जाता है। सारांश यह कि विशाखादत्त का व्यक्तित्व राजनीतिक पृष्ठभूमि पर जिज्ञासा, समन्वय और बौद्धिक विवेक का केन्द्र है। जहाँ राजनीति है, वहीं उनका कूटनीतिज्ञ विश्लेषक उभरता है, और जहाँ उनकी कला की दृष्टि है, वहाँ उनका नाटककार उन्हें द्विविधा से उठाकर उन्हें विश्वासी और श्रद्धालु बना देता है सर्वथा परिणत व्यक्तित्व में उन्हें उपस्थित करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विशाखादत्त का व्यक्तित्व सदैव विकल्प से उठकर संकल्प में पर्यवसित है और तर्क से उठकर विश्वास में सुस्थिर है।

1.2.2 कृतित्व :-

विशाखादत्त की अन्तिम किन्तु अमरकृति मुद्राराक्षस के अतिरिक्त दो अन्यकृतियाँ भी हैं- देवीचन्द्रगुप्तम् और अभिसारिकवंचितकम् किन्तु इन दोनों ग्रन्थों का अस्तित्व केवल नाट्यदर्पण और शृङ्गारप्रकाश के उद्धरणों में ही सुरक्षित है। ये दोनों ही कृतियाँ विशाखादत्त के कौमार्य कालीन रचनाएँ हैं। देवीचन्द्रगुप्तम् का इतिवृत्त राजनीतिक है। इसमें गुप्तवंशीय राजा रामगुप्त की दुर्बलता और चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रबल पराक्रम का बड़ा ही भव्य निदर्शन है। अपनी भीरुता के कारण रामगुप्त ने रूपसी पत्नी ध्रुवदेवी को महाशक्तिशाली शक राज को समर्पित कर देना चाहा, किन्तु अत्यन्त तेजस्वी चन्द्रगुप्त ने छद्मवेश में शक राज का बधकर ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया। यह नाटक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। इसका उल्लेख बाण के इर्षचरित में, राजशेखर की काव्यमीमांसा में तथा नाट्यदर्पण में सात बार हुआ है। अभिसारिकवंचितकम् का उल्लेख अभिनव भारती एवं शृङ्गारप्रकाश में मिलता है। इस नाटक की कथावस्तु वत्सराज उदयन के जीवनचरित पर आधारित है। इस तथ्य का ज्ञान भी हमें पूर्वोक्त ग्रन्थों के उद्धरणों से ही प्राप्त होता है।

1.2.3 निवास स्थान :-

मुद्राराक्षस की कथावस्तु का केन्द्र पाटलिपुत्र (पटना) है। संभवतः तत्कालीन राजा की यही राजधानी हो। विशाखादत्त इसी प्रदेश के निवासी प्रतीत होते हैं। यहाँ के भूभागों से, यहाँ की प्रथाओं से, चाल-चलन से, वस्तु-व्यवहार से ये पूर्ण परिचित हैं, इसका पता नाटक में वर्णित विषयों के सन्दर्भ में स्थान स्थान पर मिलता है। विशाखादत्त गौड़ देश की प्रथाओं से, वहाँ की सुन्दरियों के साज-शृङ्गारों से पूर्ण परिचित थे। 'खश' जातिविशेष के सैनिकों के प्रति आकर्षण भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

चीयते बालिशस्याऽपि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।

न शालेरू स्तम्बकरिता वपुर्गुणमपेक्षते।। (मुद्रा.1.13)

इस श्लोक में वर्णित विषय से भी यह प्रतीत होता है कि कवि उस प्रदेश का निवासी है, जो धान की खेती के लिए प्रख्यात है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं- गौड़

प्रदेश की प्रथाओं का उल्लेख, खश जातियों का वर्णन, धान की बतलायी गयी विशेषता इस बात का प्रमाण है कि विशाखादत्त पूर्वी-बिहार या दक्षिण बिहारप्रान्त किंवा उत्तरपर्वतीय अंचल के निवासी थे।

1.2.4 काल :-

मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में चन्द्रग्रहण का संकेत मिलता है। जो केवल इसलिए नहीं हो पा रहा है कि चन्द्र के साथ बुध ग्रह की स्थिति के कारण ग्रहण योग ठीक नहीं बैठता है। कुछ आलोचकों के मतानुसार यह तिथि 2 दिसम्बर 860 ई. थी, इस आधार पर इस नाटक की रचना नवीं सदी के उत्तरार्ध में मानी जा सकती है। जेकोवी की सम्मति के अनुसार मुद्राराक्षस का अभिनय इसी अवसर पर अवन्ति वर्मा के मन्त्री शूर ने कराया था। किन्तु इस धारणा के समर्थन में कोई अन्य पुष्ट प्रमाण का अभाव रहने के कारण इसकी मान्यता विद्वानों ने नहीं दी है।

मुद्राराक्षस का कथानक ऐतिहासिक है। उसका रचनाकाल निर्धारित करने के लिए तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं की समीक्षा करने पर पता चलता है कि प्राचीन काल में महाराज पृथु, भास्करदत्त अथवा सामन्त बटेश्वरदत्त के सम्बन्ध में इतिहास में कहीं कोई चर्चा नहीं है। विशाखादत्त के नाम के आगे दत्त शब्द प्रयोग एवं उनके पिता, पितामह आदि के नामों के आगे भी प्रयुक्त दत्त-उपाधि को देखकर कुछ विद्वानों ने यह निचार व्यक्त किया है कि इनका वंश शदत्त वंश था। किन्तु इतिहास में दत्त-वंशीय सामन्त का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता है। डॉ. सत्यव्रत सिंह ने लिखा है कि- “इस नाटक के कालनिर्णय से सम्बद्ध सभी कल्पनायें इस नाटक के भरतवाक्य पर केन्द्रित हैं।” वस्तुतः इस नाटक के भरतवाक्य में ‘पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः’ ही पाठ नहीं मिलता, अपितु अवन्तिवर्मा, दन्तिवर्मा, रन्तिवर्मा, रन्तवर्मा पाठ भी मिला करता है। इन विभिन्न राजाओं के कालभेद के कारण विशाखादत्त का कालनिर्णय भी अनिश्चय गर्भगत हो जाता है।

प्रथम पाठ के आधार पर प्रो. शारदा रंजन राय की धारणा है कि मुद्राराक्षस में विशाखादत्त ने गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (375-413 ई.) की ओर संकेत किया है। वे प्रकारान्तर से अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की प्रशंसा करते हैं। मुद्राराक्षस का घटनास्थल पाटलिपुत्र है। चीनी यात्री फाहियान ने पाटलिपुत्र को मगध की राजधानी बतलाया है। ह्वेनसंग उसे भग्नावशेष पाया। इस पाठ के आधार पर कुछ विद्वान इस रचना को पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ को मानते हैं।

दूसरे पाठ ‘अवन्तिवर्मा’ को तैलंग महोदय प्रामाणिक मानते हैं। इनके मतानुसार राजा हर्ष (606 ई. से 648 ई.) के बहनोई ग्रहवर्मा के पिता मौखरि राजा थे। इस मत के अनुसार

इस नाटक की रचना 7 वीं सदी में हुई। मेकडोनल तथा रैप्सन इसी मत को स्वीकार करते हैं।

‘दन्तिवर्मा’ पाठ के आधार पर मुद्राराक्षस का रचनाकाल पल्लव राजा दन्तिवर्मा का समय 779-830 ई. निश्चित किया गया है। किन्तु उस समय दक्षिण में हूणों का उपद्रव नहीं फैला था। अतः यह मत मान्य नहीं हो सका।

इसी प्रकार ‘रन्तिवर्मा’ या ‘रन्तवर्मा’ भी भ्रामक मत ही है। इन विभिन्न मतों का सामञ्जस्य केवल एक ही हो सकता है कि सर्वाधिक प्राचीन पाठ ‘पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः’ ही विशाखादत्त का अभिप्रेत था। बाद के सभी पाठ परिवर्तित कर सामयिक राजस्तुति के लिए प्रयुक्त किये गये होंगे।

मुद्राराक्षस की शैली, भारत का सीमा निर्धारण धार्मिक कथन प्रभृति को मिलाजुलाकर यही कहा जा सकता है कि इस नाटक का मूल पाठ ‘पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः’ ही है और इसका रचना-काल कपर लिखित चन्द्रगुप्त के साथ ही मेल खाता है।

1.3 विशाखादत्त का शास्त्र वैदुष्य :-

मुद्राराक्षस के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि विशाखादत्त की प्रतिभा बहुमुखी थी। कवि न्यायशास्त्र, नाट्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा ज्योतिष के निष्णात विद्वान् थे। विशाखादत्त की राजनीतिक पृष्ठभूमि तक पहुँचने के लिये मौर्यकालीन इतिहास के प्रारम्भिक पृष्ठों का पर्यालोचन करना पड़ेगा। सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण ई. पू. ३२६ में किया था। सिन्ध तथा पंजाब के अनेक गणराज्यों की स्वतन्त्रता अपहृत कर सिकन्दर ने मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त का पथ प्रशस्त कर दिया। चन्द्रगुप्तमौर्य के पूर्व महापद्मनन्द यहाँ का शासक था। इसके साम्राज्य की नींव पश्चिमोत्तर सीमान्त में दृढ़ करने वाला सिकन्दर था। ई. पू. ३२२ के लगभग मौर्य सत्ता की स्थापना के साथ भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का प्रवर्तन हुआ। सम्पूर्ण देश एक सुसंगठित शासनतन्त्र के अधीन ऐक्य बद्ध हुआ। भारत से जब सिकन्दर लौट गया, चन्द्रगुप्त ने गुरु चाणक्य की प्रेरणा से मगध का राज्यसिंहासन अधिकृत कर लिया। उसने अपने अदम्य पौरुष से मौर्यसाम्राज्य की उत्तरी एवं पश्चिमोत्तरवर्ती सीमाएँ हिन्दूकुश तथा वर्तमान पारस की सरहद तक तथा दक्षिण में नर्मदा विन्ध्यपर्वतश्रेणी को लाँघ कर, प्रायद्वीप के भीतर मैसूर तक पहुँचा दी। इस प्रकार उस समय कलिङ्ग एवं काश्मीर को छोड़ कर सम्पूर्ण भारत (पाकिस्तान को लेकर) तथा आधुनिक अफगानिस्तान और बलूचिस्तान उसके साम्राज्य में समाविष्ट थे। इतने बड़े अनुष्ठान को चाणक्य की नीति ने एक कठिन खेल के रूप में प्रदर्शित किया है। इसकी तुलना सर्प से की गयी है। ननु ‘खेलत्येवार्योऽहिना’

(मुद्रा.२) इसमें सर्पों का खेल दिखलाने वाला, सँपेरा, संन्यासी, ज्यौतिषी, वैतालिक आदि सभी प्रकार के व्यक्ति गुप्तचर के कार्य में संलग्न हैं और अन्ततः वे अपने उद्देश्य में सफल हो ही जाते हैं। इससे पता चलता है कि विशाखादत्त राजनीति शास्त्र के पूर्ण पण्डित थे। 'मुद्राराक्षस' को पंक्तियों में, तत्कालीन सभ्यता नाटक के पात्रों के आचरण में पदे पदे परिलक्षित होती है। भौतिक ऐश्वर्य, सौन्दर्यपरक अभिरुचियाँ, शिष्ट एवं परिष्कृत संस्कृति, प्रबुद्ध लौकिक प्रज्ञा, विभिन्न विधाएँ और वैदग्ध्य के वर्णन से पत्र-पत्र आविल है। राजनीतिक षडयन्त्रों का भी इस नाटक में विशाखादत्त ने उसी प्रकार परिशंसन किया है, जिस प्रकार उच्च नैतिक विचारों का सन्निवेश किया है। विशाखादत्त नैतिकता अथवा सदाचार के आदर्श से पूर्ण परिचित थे। उनके प्रत्येक पात्रों के व्यक्तित्व में इन गुणों का सन्निवेश है। इनके छोटे-छोटे पात्र भी जहाँ कूटनीतिक पृष्ठाधार पर विश्वासघात रूप अनैतिक आचरण करते हैं वहाँ इसके लिए भी उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है। मनःस्थिति की पवित्रता में निष्काम कर्मयोग की प्रधानता के आधार पर प्रतिष्ठित आध्यात्मिक अर्थवत्ता से अनुरंजित जिस उदात्त एवं कठोर आदर्श की स्थापना कालिदास या बाल्मीकि ने की है, प्रायः विशाखादत्त इस भावभूमि से अवश्य ही अपरिचित थे। अथवा उनकी प्रेति में सन्निहित राजनीतिक शुष्कता ने इसे अस्वीकृत कर दिया। विशाखादत्त के पात्र भावात्मक अथवा कलनात्मक उत्साह से प्रेरित होकर नहीं, प्रत्युत बौद्धिक विश्वास से प्रेरित होकर कार्यशील हुए हैं।

विशाखादत्त के शास्त्रीय ज्ञान की सर्वोपरि विशिष्टता है उनकी बौद्धिकता। विचारों में, तत्त्वज्ञान में, आचार शास्त्रीय प्रश्नों में उनका अध्ययन, चिन्तन अतिगंभीर है। चाणक्य की कूटनीति को वे व्यवहार की कसौटी पर कसते हैं। सामान्य आचारशास्त्र के ऊपर वे आचरण के एक उच्चतर आदर्श का निर्माण करते हैं। इनके आदर्श की पृष्ठभूमि बुद्धि अथवा चरित्र की दृढता है। समाज एवं शासन पर वे व्यावहारिक तथा एक कुशल राजनीतिज्ञ की दृष्टि से विचार करते हैं। मुद्राराक्षस का सारा नैतिक एवं बौद्धिक वातावरण इस बात के साक्षी है कि विशाखादत्त का ज्ञान किसी एक शास्त्र के पल्ले में नहीं बँधा है। 'मुद्राराक्षस' के सम्पूर्ण पात्रों में यह सशक्त बुद्धिवाद व्याप्त है। मुद्राराक्षस में ऐसे युग का चित्रण है जो विराट् सर्जनात्मक उद्वेजना एवं अशान्ति से परिपूर्ण है। संभवतः समाज की इस स्थिति का निरूपण करने में विशाखादत्त का आभ्यन्तर संघर्ष भी उन्हें विचलित कर रहा था। विभिन्न शास्त्रों का पाण्डित्य एक ओर उन्हें खींचता था और निसर्ग प्राप्त कविताकला उन्हें दूसरी ओर खींचती थी- 'कर्त्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा' (मुद्रा.४.३) किन्तु विशाखादत्त की कलात्मक सजावट, राजनीतिक कल्पना तथा शब्दशक्ति का भण्डार इस बात का प्रमाण है कि उनका पाण्डित्य, उनकी काव्य प्रतिमा का कहीं बाधक नहीं बना।

1.4 विशाखादत्त की शैली :-

विशाखादत्त ने मुद्राराक्षस की रचना में काव्यात्मकता का अतिशय न रखकर पूर्णतः नाट्यदृष्टि रखी है। इसीलिए लेखक की शैली प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से विभूषित है, अलंकारों का प्रयोग केवल विषयवस्तु को सुगम बनाने के लिए किया गया है। इनका प्रकृतिवर्णन विरल है। श्लेष के प्रयोग से कई उपमाएँ सुन्दर बन पड़ी हैं। रूपक, समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा एवम् अर्थान्तरन्यास के हृदयावर्जक विन्यास मुद्राराक्षस में अत्यन्त सरल किन्तु लालित्यपूर्ण भाषा में सुलभ हैं। छोटे-बड़े सभी प्रकार के छन्द भी इसके शोभावर्धक हैं। बड़े छन्दों में भावों का विस्तार है तो छोटे छन्दों में अल्पाक्षर वाली सारभूत सूक्तियाँ हैं। कुल मिलाकर विशाखादत्त की शैली में सहजता, लालित्य, अभिव्यक्ति की प्रभावकता एवं अनुपम आवर्जकता है। कुछ उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। चाणक्य अपने स्वगतभाषण में कहता है-

समुत्खाता नन्दा नव हृदयरोगा इव भुवः

कृता मौर्ये लक्ष्मीः सरसि नलिनीव स्थिरपदा।

द्वयोः सारं तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा

फलं कोपप्रीत्योर्दिवषति च विभक्तं सुहृदि च॥(मुद्रा.1.13)

नन्दों का विनाश और मौर्यलक्ष्मी को स्थिर करके उसने समान रूप से अपने कोप और प्रसन्नता का फल क्रमशः शत्रु और मित्र को बाँटा है। उधर राक्षस का कञ्चुकी एक नैतिक उपमान का प्रयोग करके तात्कालिक चाणक्य-राक्षस संघर्ष का चित्रण करता है-

कामं नन्दमिव प्रमथ्य जरया चाणक्यनीत्या यथा

धर्मो मौर्य इव क्रमेण नगरे नीतः प्रतिष्ठां मयि।

तं सम्प्रत्युपचीयमानमपि मे लब्धान्तरः सेवया

लोभो राक्षसवज्जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च॥ (मुद्रा.2.1)

वृद्धावस्था ने काम को नष्ट किया जैसे चाणक्यनीति ने नन्द को क्रमशः मुझमें धर्म प्रतिष्ठित हुआ जैसे पाटलिपुत्र नगर में मौर्य (चन्द्रगुप्त) (सम्प्रति वह धर्म अत्यधिक समृद्ध हो चुका है किन्तु राजसेवा से मेरा बढ़ा हुआ लोभ उसे दबाना चाहता है जैसे राज्यशक्ति से समृद्ध मौर्य को राक्षस अभिभूत करने के प्रयास में लगा हैय यह बात अवश्य है कि वह (लोभ या राक्षस) जीत नहीं सकता।

यत्र तत्र रौद्र आदि उग्र रसों के उद्भावन में समासयुक्त ओजोमयी पदावली के विन्यास में भी विशाखादत्त को समान कौशल प्राप्त है जैसे- चाणक्य के कृतक कोप पर चन्द्रगुप्त का प्रस्तुत कथन-

संरम्भ-स्पन्दि-पक्ष्म-क्षरदमल-जल-क्षालन-क्षामयापि
भुभङ्गोद्भेद-धूमं ज्वलितमिव पुनः पिङ्गया नेत्रभासा।
मन्ये रुद्रस्य रौद्रे रसमभिनयतस्ताण्डवे संस्मरन्त्या
संजातोदग्रकम्पं कथमपि धरया धारितः पादघातः॥ (मुद्रा.3.30)

मुद्राराक्षस के प्रायः सभी पद्यों के अन्तिम चरण में उस पद्य की कुञ्जी रहती है, अन्य चरणों को समझने का प्रथम सोपान वही रहता है। कवि ने अपने पाण्डित्य का प्रकर्ष भी शास्त्रों की पारिभाषिक पदावली का विभिन्न सन्दर्भों में सटीक प्रयोग करते हुए प्रकट किया है जैसे प्रस्तुत पद्य में न्यायदर्शन के साध्य, अन्वयव्याप्ति, सपक्ष, विपक्ष, निग्रह आदि पदों का राजनीति के सन्दर्भ में प्रयोग करके निष्कर्ष दिया है कि अशुद्ध हेतु साध्य की सिद्धि में समर्थ नहीं होता, वह हेत्वाभास मात्र है-

साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं विभ्रत्सपक्षे स्थितिं
व्यावृत्तं च विपक्षतो भवति यत् तत् साधनं सिद्ध्यते।
यत् साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धं च यत्
तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात् स्वामिनो निग्रहः॥ (मुद्रा.5.10)

विशाखादत्त ने इस नाटक में अनेक सूक्तियों का भी प्रयोग किया है जैसे- अत्यादर शङ्कनीयः (मुद्रा.१.२१), हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः (मुद्रा.१.२२), पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी (मुद्रा.२.७), सेवां लाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः (मुद्रा.३.१४), परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेतु पुरुषः (मुद्रा.३.४) इत्यादि। तृतीय अङ्क के आरम्भ में शरद् ऋतु का रमणीय वर्णन किया गया है, बस यही एकमात्र प्रकृतिवर्णन है। सामान्य नाटकों के समान इसमें भी तीन प्रमुख प्राकृतों (शौरसेनी, माहाराष्ट्री, मागधी) का प्रयोग है। वस्तुतः विकासकाल का एक महत्वपूर्ण नाटक होने से मुद्राराक्षस नाट्यरत्न है।

1.5 कथावस्तु का मूलस्रोत :-

महाराज नन्द एवं चाणक्यसम्बन्धी कथा का स्पष्ट उल्लेख श्रीमद्भागवत एवं विष्णुपुराण में है। इन पुराणों में वर्णित वृत्तों के अनुसार आचार्य चाणक्य ने महानन्दों का विनाश कर मगध साम्राज्य के राज्यसिंहासन पर चन्द्रगुप्त को अधिष्ठित कर दिया। इन्हीं पुराणों में यह भी लिखा है कि कौटिल्य का यह शिष्य कामन्दक ने चाणक्य की उस अभिचार क्रिया का वर्णन किया है जिसका प्रयोग उन्होंने नन्द को मारने के लिए किया था।

कौटिल्य के द्वारा नन्दवंश के सर्वनाश के बाद चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण काल इतिहासों की मान्यता के अनुसार ई. सन् के ६२५ वर्ष पूर्व माना जाता है। उस समय से लेकर 'मुद्राराक्षस' के रचनाकाल तक के लगभग एक सहस्र वर्ष का अन्तराल प्रतीत होता है। इस

अवधि में चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य के बीच वाली कथा के सम्बन्ध में बहुविध किंवदन्तियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यद्यपि नाटक की वस्तुयोजना में इन किंवदन्तियों का कुछ भी संकेत नहीं मिलता। दशरूपक में लिखा है कि शकटदास के घर में छिपकर चाणक्य ने 'कृत्या' उत्पन्नकर राजा को पुत्रों सहित मार डाला। योगानन्द की मृत्यु के बाद, पूर्वनन्द का पुत्र चन्द्रगुप्त महापराक्रमी चाणक्य के द्वारा राजा बना दिया गया। इस प्रकार का संकेत बृहत्कथा में मिलता है। (दश.रू.पृ.७४) किन्तु बृहत्कथा सम्प्रति अनुपलब्ध है। कथासरित्सागर को लोग बृहत्कथा के मूल अंश का यथार्थ रूपान्तर मानते हैं। मुद्राराक्षस का विस्तृत विवरण कथासरित्सागर में नहीं मिलता। जो कुछ भी वृत्त मिलता है उसमें राक्षस के 'कृत्यो' की कोई चर्चा नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस नाटक की कथावस्तु विशाखादत्त की कल्पनाप्रसूत है। आस्थामूलक भारतीय कौटिल्यनीति के साथ स्वामिभक्तिपरक राक्षस का संघर्ष, जहां सब कुछ बुद्धि के कांटे पर तौलकर तर्क से परिणित कर इस इतिवृत्त को सजाया गया है। इस आस्था के नवनिर्माण, नाटकीय गति, क्रिया और शान के बीच समुचित सामंजस्य की स्थापना का अभिनव प्रयास विशाखादत्त की अपनी विशेषता है।

ऐसा लगता है विशाखादत्त ने अपने नाटक में मौर्य साम्राज्य की स्थापना तथा नन्दवंश के विनाश का सारा श्रेय आचार्य विष्णुगुप्त को दिया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अरूप तत्त्व का अपनी कल्पना के बल पर रूप दिया है, सौन्दर्य का प्रतिमान गढ़ा है, उसे लावण्य-जल से मङ्गल स्नान कराया है और फिर इससे सम्बन्धित सारे घटनाचक्रों की परिकल्पना कर ली है। कौटिल्य अर्थशास्त्र की राजनीति का महाप्रयोक्ता तो सर्वप्रथम राक्षस को ही नाटककार ने दिखाया है। कथासरित्सागर के वर्णन में राक्षस के चरित के सामंजस्य का कहीं भी आग्रह परिलक्षित नहीं होता जैसा मुद्राराक्षस में है। चाणक्य-चरित में व्यापक वस्तुनिष्ठता के कारण नाटकीय इतिवृत्त की भावात्मक मधुरिमा के बीज मिलते हैं। मुद्राराक्षस के विकास के इतिहास में शैलीगत सारगर्भ संक्षिप्तता के अतिरिक्त विशाखादत्त की सबसे बड़ी देन का यही राजनीति के साथ मानव के उदात्त चरित में रागात्मक सहज सामंजस्य की प्रतिष्ठा है। भागवत एवं विष्णुपुराण के आदर्श कौटिल्य चरित्र उपजीव्य होने के कारण मुद्राराक्षस में आकर ही नाटकीय ख्याति प्राप्त कर सका अन्यथा उसमें शुष्क राजनीति का इतना आग्रह प्रबल है कि उसमें नाटक की आत्मा ढूँढ़े भी नहीं मिलती। विशाखादत्त की उर्वरा कल्पना जहां भावात्मक है, वहीं सम्बन्धित भागवत की कथा प्रगाढ़ दार्शनिकता तथा नीरस राजनीति के निविड़ आच्छादन से आच्छादित है। विशाखादत्त की कल्पना से प्रसूत यह शुष्क कथा राजनीति-रस से प्रतिस्तर की आर्द्र हो उठी है। मुद्राराक्षस का वर्णन नाटकगत देशकाल की सजीवता में अपनी सार्थकता रखता है। इस नाटक में कौटिल्य की कुटिलनीति

की तीखी-मीठी बातों से तत्कालीन राजनीति के सीमन्त मोतियों से गूथी सुन्दरी की मस्तिष्क पर लटकते बाल सा सुसज्जित है। वस्तुतः महाकवि विशाखादत्त की प्रतिभा की स्तुत्य है।

1.6 मुद्राराक्षस का नामकरण :-

संस्कृत साहित्य में काव्यों का नामकरण प्रायः या तो नायक-नायिका के नाम पर किया जाता है या फिर कथा की किसी महत्वपूर्ण घटना के आधार पर किया जाता है। मुद्राराक्षस का नामकरण भी इस नाटक के कथानक की एक महत्वपूर्ण घटना के आधार पर किया गया है और वह है मुद्रा के द्वारा राक्षस को वश में करने की घटना। चाणक्य अपनी कूटनीतियों के जाल में राक्षस को फंसाकर उसे चन्द्रगुप्त का मंत्री बनने के लिए विवश कर देते हैं। मुद्राराक्षस नाटक में राक्षस की मुद्रा (अँगूठी) की विशेष भूमिका है। इसी मुद्रा के कारण चाणक्य, राक्षस को वश में कर पाते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक इस अँगूठी का विशेष महत्व रहा है। चाणक्य शकटदास को कहते हैं कि वह एक पत्र लिखे, चाणक्य की राजनीति से शकटदास अनभिज्ञ होता है। चाणक्य उस कपट पत्र पर राक्षस की अँगूठी से चिह्न लगवाते हैं। इस चिह्न से यह निश्चित हो जाता है कि यह पत्र केवल राक्षस का ही है। इस पत्र के कारण राक्षस और मलयकेतु में भेद उत्पन्न हो जाता है और मलयकेतु को राक्षस से अलग कर दिया जाता है। चाणक्य राक्षस का निग्रह करने में सफल हो पाते हैं क्योंकि उस कपट पत्र पर राक्षस की यही मुद्रा अङ्कित थी। इस मुद्रा के आधार पर ही राक्षस को जीत लिया गया, अतः इस नाटक का 'मुद्राराक्षस' नामकरण किया गया है 'मुद्रया गृहीतः राक्षसः यस्मिन् तत् मुद्राराक्षसं नाम नाटकम्'। अपनी ही मुद्रा को अपने ही विरुद्ध प्रयुक्त होते देखकर राक्षस विवश हो जाता है व अपनी हार स्वीकार कर लेता है।

1.7 मुद्राराक्षस का अङ्गीरस :-

भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से किसी भी नाटक के मूल-तत्त्वों में नेता, वस्तु और रस को परमावश्यक माना गया है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में भी व्यद्यपि 'रस' नामक किसी वस्तु का उल्लेखन नहीं है, फिर भी कार्य और व्यापार की सक्रियता को वहाँ भी महत्व दिया गया है। जहाँ तक विशाखादत्त के मुद्राराक्षस का प्रश्न है- भारतीय रससिद्धान्त की परम्परा से तो अनुप्राणित है ही, पाश्चात्य परम्परा के कार्यव्यापार की सक्रियता का भी जान या अनजान में ही सुन्दर समन्वय हो जाता है। मुद्राराक्षस यद्यपि एक सुखान्त नाटक है, फिर भी इसके मूल में एक करुण चेतना सुख की तह में छिपी हुई है। नाटक की पंक्ति-पंक्ति में सुख-दुःखात्मक भावना का समन्वित रूप इसमें मिलता है। इस नाटक में वैसे तो अनेक रसों की सुन्दर योजना हुई है, किन्तु इसके अंगी रस के रूप में 'वीर रस' की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

नाटक के आदि से अन्त तक को रस विद्यमान रहकर, अभिनय में अभिव्यक्त अन्य रसों की अपेक्षा सर्वाधिक व्याप्त हो, उसे हम अङ्गीरस कहते हैं। अङ्गीरस में मुख्यपात्र की मूकवृत्ति का प्रतिफल नहीं रहता है। यह रस नाटक के मूल उद्देश्य या फलागम का स्वादरूप होता है, साथ ही प्रेक्षक के पश्चात् पाठक या दर्शक पर पड़नेवाले प्रभूत प्रभाव का अभिव्यञ्जक होता है। अङ्गी रस का सम्बन्ध अन्य रसों से करीब-करीब नहीं होता, जो सम्बन्ध स्थायी और सञ्चारी भावों का परस्पर होता है।

भारतीय नाट्यशास्त्र में वीर, हास्य और करुण रसों में से किसी एक को अङ्गीरस मानने की बात है। मुद्राराक्षस में उद्देश्य के विचार से वीर रस की प्रधानता परिलक्षित होती है। इसमें चाणक्य का उद्देश्य नन्दवंश का विनाश कर चन्द्रगुप्त की सार्वभौम सत्ता की स्थापना करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति में नाटक का प्रधानचक्र संगठित हुआ है। कथावस्तु के प्रारम्भ से अन्त तक वीर-रस किसी न किसी रूप में विद्यमान है। कथावस्तु की प्रधान श्रृंखला की दृष्टि से भी अङ्गी रस वीर ही प्रतीत होता है। क्योंकि कथावस्तु की प्रायः सभी प्रमुख श्रृंखलाएँ नन्दवंश के विनाश से सम्बद्ध हैं। किसी भी प्रकार के संघर्ष का स्थायीभाव उत्साह है और उत्साह से ही वीररस की अभिव्यक्ति होती है। पात्र भी वीररसानुकूल हैं। चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं। इनकी मूलवृत्ति नन्दवंश का विनाश कर चन्द्रगुप्त के एक-छत्र राज्य की स्थापना है। इन भावों का प्रतिफलन भी तो वीररस में ही संभव है। इस नाटक की प्रमुख घटनाएँ अधोद्विक्त हैं-

- (१) नन्दवंश का विनाश।
- (२) चन्द्रगुप्त के राज्य की स्थापना।
- (३) राक्षस को अधिकृत करना।

इन तीनों घटनाओं का सम्बन्ध संघर्ष से है। तीनों में आश्रय चन्द्रगुप्त या चाणक्य है। आलम्बन तीन अवश्य हो जाते हैं। किसी भी प्रकार से विचार करने पर नाटक में सम्पूर्ण अवयवों के संयोग से वीररस की ही निष्पत्ति हुई है। नाटक में अन्तिम स्थल पर जो प्रभाव की अन्विति होती है, वही पूर्ण रसनिष्पत्ति का कारण बनकर चमत्कार उत्पन्न करने और लोकोत्तर काव्यात्मक आनन्द देने में सहायक बनती है। इस प्रभाव की अन्विति में मूलतः वीर रस ही प्रधान ठहरता है। इसका शास्त्रीय विवेचन इस प्रकार है-

1. स्थायीभाव-उत्साह
2. आलम्बनविभाव- नन्द
3. आश्रय- चाणक्य वा चन्द्रगुप्त
4. उद्दीपनविभाव- नन्द का अत्याचार

5. अनुभाव- चाणक्य की प्रतीज्ञा

6. संचारीभाव- गर्व

वीररस के अतिरिक्त इस नाटक में अद्भुत, रौद्र, बीभत्स, श्रृंगार आदि अन्य रसों का भी यत्र तत्र समावेश है। जहाँ कहाँ भी विषम परिस्थिति आती है- चाणक्य की नीति ढाल बनकर उपस्थित हो जाती है। चाणक्य की प्रतिज्ञा में रोद्र रस की अभिव्यक्ति है। नन्द पर्वतेश्वर की मृत्यु में वीभत्स रस का समावेश है। हास्य का सम्पूर्ण नाटक में अभाव है। श्रृंगार का विस्तृत चित्रण नहीं है, पर राज्यलक्ष्मी के वर्णन में श्रृंगार फूट पड़ा है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं, कि मुद्राराक्षस नाटक का अंगीरस वीर है, पोषकरस रौद्र और नियामक शान्त है। इस प्रकार रसयोजना की दृष्टि से भी यह नाटक सफल है।

1.8 प्रतिपाद्य विषयवस्तु :-

मुद्राराक्षस के कथानक का केन्द्रबिन्दु नन्दवंश का महामात्य 'राक्षस' है, जिसकी योग्यता और स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर चाणक्य चाहता है कि यह किसी प्रकार चन्द्रगुप्त का मन्त्री होना स्वीकार कर ले। कौटिल्य यह अच्छी तरह जानता है कि यदि राक्षस जैसा राजनीतिनिष्ठा एवं स्वामिभक्त व्यक्ति चन्द्रगुप्त का मंत्रित्व स्वीकार कर ले तो चन्द्रगुप्त का राज्य अटल हो जाय और भारत एक शक्तिशाली प्रशासक के अधीन संगठित एवं अखण्ड रूप में आ जाय। वस, इसी लक्ष्य को लेकर चाणक्य और राक्षस के बीच जो राजनीतिक चालों की चोटें चलती हैं। उन्हीं का इस नाटक के घटनाचक्रों में रोचक चित्रण हुआ है, जो निम्न प्रकार है-

1.8.1 प्रथम अङ्क का सार :-

नान्दी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है। सूत्रधार को नटी से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रग्रहण के उपलक्ष्य पर नटी ने ब्राह्मणों को भोज के लिए आमन्त्रित किया है। सूत्रधार इसका खण्डन करते हुए कहता है कि चन्द्रग्रहण तो हो ही नहीं सकता। चाणक्य नेपथ्य में केवल 'चन्द्रग्रहण' ये शब्द ही सुन पाता है। नाम की समानता के कारण चाणक्य समझता है कि राक्षस, मलयकेतु के साथ मिलकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण (चन्द्र का ग्रहण) करने जा रहा है। चाणक्य अत्यधिक कुपित हो जाता है और यह कहते हुए रंगमंच पर प्रवेश करता है कि मेरे होते हुए कौन चन्द्रगुप्त पर आक्रमण कर सकता है। इस प्रकार नाटक का मुख्य पात्र रंगमंच पर आ जाता है।

इसी अङ्क में चाणक्य यह उद्घोषणा करता है कि वह अनेक गुणों से युक्त राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री पद स्वीकार करवाना चाहता है, जिससे चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को चिरस्थायी बनाया जा सके। राक्षस को नियंत्रित किये बिना चन्द्रगुप्त का राज्य स्थिर नहीं हो

सकता है। चाणक्य उन योजनाओं को भी बतलाता है जिनका सूत्रपात उसने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया है।

सबसे पहले तो चाणक्य नन्दवंशीय सर्वार्थसिद्धि को तपोवन जाने पर मरवा देता है, ताकि नन्दवंश का कोई भी व्यक्ति जीवित न रह सके। वह यह लोकापवाद (अफवाह) फैला देता है कि राक्षस ने विषकन्या का प्रयोग करके पर्वतक को मरवा दिया। पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को भागुरायण एकान्त में यह कह कर डरा देता है कि तुम्हारे पिता चाणक्य द्वारा मरवा दिए गए हैं और उसे भागुरायण ही कुसुमपुर से राक्षस के पास भेज देता है। कुसुमपुर में रहने वाले नन्दों के घनिष्ठ मित्रों का पता लगाने के लिए नाना वेश में अनेक गुप्तचर नियुक्त कर दिए जाते हैं। चन्द्रगुप्त का साथ देने वाले भद्रभट इत्यादि प्रधान पुरुषों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट कर दिया जाता है, ताकि वे शत्रु पक्ष में न मिल जायें। चन्द्रगुप्त की रक्षा के लिए उसके समीप अनेक विश्वसनीय सेवकों को नियुक्त कर दिया जाता है। चाणक्य अपने बचपन के सहपाठी इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण को जीवसिद्धि नामक क्षपणक का रूप धारण करवा देता है तथा नन्द के मंत्रियों के साथ नन्दों के नाश से पूर्व ही जीवसिद्धि क्षपणक की मित्रता करवा दी जाती है। राक्षस का जीवसिद्धि पर विशेष रूप से विश्वास उत्पन्न हो जाता है।

चाणक्य के द्वारा प्रयुक्त गुप्तचर निपुणक वहाँ आकर सूचना देता है कि राक्षस के परिवार के सदस्य चन्दनदास नामक वैश्य के यहाँ सुरक्षित हैं। इसके बाद चाणक्य चन्दनदास को बुलवाते हैं तथा उसे कहते हैं कि वह राक्षस के परिवारजनों को सौंप दे। चन्दनदास किसी भी कीमत पर राक्षस के परिवारजनों को सौंपने के लिए तैयार नहीं होता। चाणक्य उसे बन्धन में डालने की आज्ञा देते हैं तथा अपने ही गुप्तचर जीवसिद्धि नामक क्षपणक को इस आरोप में कुसुमपुर से निष्कासित करवा देता है कि उसने पर्वतक को विषकन्या का प्रयोग करके मरवाया है। यह जीवसिद्धि नामक क्षपणक वास्तव में चाणक्य का ही इन्दुशर्मा नामक मित्र है। जीवसिद्धि क्षपणक को देश निकाला इसलिए दिया जाता है ताकि वह राक्षस के पास जा सके।

चाणक्य के गुप्तचर को राक्षस के नाम से अंकित मुद्रा मिलती है, जिसे वह चाणक्य को समर्पित कर देता है। चाणक्य मुद्रा प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है और राक्षस के मित्र शकटदास के द्वारा एक कपट पूर्ण लेख लिखवाकर उसे राक्षस की मुद्रा से मुद्राङ्कित कर देता है। शकटदास यह नहीं जान पाता है कि इस लेख को चाणक्य ने लिखवाया है। फिर चाणक्य वह लेख सिद्धार्थक को दे देता है व उसके कान में गुप्त योजना बताता है और उसे कहता है कि वह शकटदास, जिसे चाणक्य ने मृत्युदण्ड की सजा दी है, उसे मृत्युस्थान से छुड़वाकर राक्षस के यहाँ पहुँचा दे।

राक्षस के मित्र शकटदास को फाँसी का आदेश दिया जाता है लेकिन चाणक्य अपने गुप्तचर सिद्धार्थक के माध्यम से उसे वध्यस्थल से भगाकर राक्षस की शरण में पहुँचा देता है। सिद्धार्थक ने शकटदास को भगा दिया, यह समाचार जानकर चाणक्य प्रसन्न हो जाता है। राक्षस के मित्र चन्दनदास की सारी सम्पत्ति हड़प ली जाती है व उसे उसकी पुत्र व पत्नी सहित इस आरोप में कारागार में डलवा दिया जाता है कि उसने राक्षस के परिवार को छिपा कर राजद्रोह किया है। पर्वतक के आभूषण विश्वावसु इत्यादि तीन भाइयों को दिलवा दिए जाते हैं तथा उन्हें कुछ आदेश दिया जाता है। परन्तु पाठकों को यह नहीं पता चल पाता कि उन्हें क्या आदेश दिया गया है। भद्रभट, पुरुषदत्त, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि प्रधान पुरुषों को राक्षस के पास भेज दिया जाता है, परन्तु अन्य लोग यही समझते हैं कि वे चन्द्रगुप्त से असन्तुष्ट होकर राक्षस की शरण में चले गए हैं। इस प्रथम अंक का नाम मुद्रालाभ है।

1.8.2 द्वितीय अङ्क का सार :-

विराधगुप्त नामक राक्षस के गुप्तचर का आगमन होता है। वह जीर्णविष नामक सपेरे का वेश धारण कर कुसुमपुर का समाचार जानने गया था, इस दृश्य से द्वितीय अंक का प्रारम्भ होता है। इसी अंक में राक्षस अपनी सभी योजनाओं का प्रयोजन बतलाता है कि वह केवल अपने दिवंगत स्वामियों को प्रसन्न करने के लिए ही चन्द्रगुप्त से उनका राज्य वापस लेने चाहता है। अंक के प्रारम्भ में राक्षस इस बात से अत्यधिक चिन्तित हो जाता है कि उसकी योजनाएँ सफल भी हो पाएंगी या नहीं। तभी मलयकेतु का कञ्चुकी प्रवेश करता है और वह राक्षस के लिए मलयकेतु द्वारा अपने शरीर से उतार कर भेजे गये आभूषण लाता है, जिन्हें राक्षस मलयकेतु की भावनाओं का आदर करने के लिए पहन लेता है। विराधगुप्त राक्षस को कुसुमपुर के समाचार बतलाता है तथा यह भी बतलाता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जो योजनाएँ बनाता है, वे किस प्रकार असफल हो जाती हैं। राक्षस अपने परिवार को चन्दनदास के घर में रख कर एक सुरंग के रास्ते कुसुमपुर से बाहर आ जाता है। अपने मित्र शकटदास को विपुल धनराशि देकर कुसुमपुर में स्थापित कर देता है ताकि यहाँ रहने वाले उसके सेवकों को आर्थिक कठिनाई न हो। शत्रुओं के समाचार जानने के लिए तथा उसके संगठन को तोड़ने के लिए जीवसिद्धि नामक क्षपणक को नियुक्त कर देता है, जो वास्तव में इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण है तथा चाणक्य का ही गुप्तचर है। चन्द्रगुप्त को मारने के लिए राक्षस एक विषकन्या नियुक्त करता है, जो चाणक्य की कुटिलता के कारण पर्वतक के सम्पर्क में आती है और चन्द्रगुप्त के स्थान पर पर्वतक मार दिया जाता है और पर्वतक को मारने का अपयश राक्षस पर आ जाता है। पर्वतक का पुत्र मलयकेतु भी कुसुमपुर से भाग

जाता है तब चाणक्य पर्वतक के भाई वैरोचक को आधा राज्य देने की घोषणा कर देता है तथा नन्दभवन में प्रवेश करने का शुभ मुहूर्त आधी रात में बतलाया जाता है। चाणक्य कुसुमपुर में रहने वाले सभी शिल्पियों को बुलवा कर राजभवन को सजाने का आदेश देता है परन्तु तब यह ज्ञात होता है कि पूर्वद्वार तो सूत्रधार दारुवर्मा द्वारा पहले ही सजा दिया गया है। वे बाकी सजावट कर देंगे। चाणक्य तभी समझ जाता है कि दाल में कुछ काला है। वह नन्दभवन में प्रवेश करते समय वैरोचक को मणिमुक्ता जडित मुकुट तथा मालाओं से अलङ्कृत कर चन्द्रगुप्त की हथिनी चन्द्रलेखा पर बैठा देता है तथा चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजाओं को भी उसके साथ कर देता है, जिससे सभी को यह प्रतीत हो कि राजा चन्द्रगुप्त प्रवेश कर रहे हैं। दारुवर्मा, जो राक्षस द्वारा यन्त्रतोरण गिरा कर चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त किया गया था, वैरोचक को ही चन्द्रगुप्त समझ बैठता है। महावत वर्वरक भी चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त किया गया था, वह भी वैरोचक को ही चन्द्रगुप्त समझ कर हथिनी की जंजीर से लटकती हुई छुरी हाथ में पकड़ लेता है। छुरी द्वारा प्रहार की सम्भावना करती हुई हथिनी अपनी गति मन्द कर देती है और इस प्रकार पूर्वगणना के अनुसार ही दारुवर्मा द्वारा गिराए गए यन्त्रतोरण से महावत वर्वरक मारा जाता है। यह देख दारुवर्मा यह जान लेता है कि अब उसकी मृत्यु निश्चित है, वह यन्त्रतोरण को वैरोचक पर गिर पड़ता है और वह तुरन्त ही मर जाता है। दारुवर्मा वैरोचक के आगे चलने वाले पैदल अनुचरों द्वारा पत्थर मार-मार कर मार दिया जाता है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के आगे राज्य का भागीदार वैरोचक तथा राक्षस के दोनों गुप्तचर दारुवर्मा और वर्वरक चाणक्य की कूटनीति से मार दिए जाते हैं।

राक्षस अभयदत्त वैद्य को चन्द्रगुप्त को विष देकर मारने के लिए नियुक्त करता है, चाणक्य की बुद्धिमत्ता से वही विष अभयदत्त वैद्य को पिला दिया जाता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिये चन्द्रगुप्त के ही शयनागार में प्रमोदक को नियुक्त करता है। चाणक्य प्रमोदक से प्रश्न पूछता है कि तुम्हारे पास इतना अधिक धन कहाँ से आया, इसका सुसंगत उत्तर न दे सकने के कारण चाणक्य द्वारा वह भी मरवा दिया जाता है। बीभत्सक आदि जो राक्षस के कथनानुसार चन्द्रगुप्त को मारने के लिए राजगृह की दीवार में सुरंग बनाकर पहले से ही वहाँ रह रहे थे। वे भी चाणक्य की तीक्ष्ण बुद्धि के कारण मार दिए जाते हैं क्योंकि वहाँ से चावल के कण लेकर निकलती हुई चीटियों की पंक्ति को चाणक्य देख लेता है। यह जान लेता है कि इस कक्ष में कुछ लोग हैं, अतः उसमें चाणक्य आग लगवा देता है। धुएँ के कारण अवरुद्ध दृष्टि होने से निकलने का मार्ग न मिलने के कारण वे बीभत्सक आदि उसी आग में जलकर भस्म हो जाते हैं। इस प्रकार

राक्षस के द्वारा चन्द्रगुप्त के वध के लिए किये गये सारे षड्यन्त्रों को चाणक्य नष्ट कर देता है। राक्षस की सारी योजनाएँ असफल ही नहीं, अपितु अनिष्ट फल वाली हो जाती है।

विराधगुप्त राक्षस को यह भी बतलाता है कि उसके तीन मित्रों क्षपणक जीवसिद्धि विराधगुप्त राक्षस को यह भी बतलाता है कि उसके तीन मित्रों क्षपणक जीवसिद्धि, शकटदास और चन्दनदास को किस-किस अपराध में पकड़ लिया गया है और उन्हें क्या क्या दण्ड दिया गया है। तभी प्रथम अङ्क में वर्णित चाणक्य की योजनानुसार सिद्धार्थक शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर राक्षस के पास ले आता है। शकटदास अपनी बन्धन से मुक्ति का वृत्तान्त राक्षस को बतलाता है। राक्षस प्रसन्न होकर पुरस्कार रूप में अपने शरीर से उतार कर वही आभूषण सिद्धार्थक को दे देता है, जो कुछ समय पूर्व ही मलयकेतु का कञ्चुकी उसे पहना कर गया था। सिद्धार्थक उन आभूषणों को चुपके से राक्षस की मुद्रा से अंकित कर रख लेता है और उन्हें वहीं रखवा देता है। शकटदास राक्षस की अँगूठी पहचान लेता है व सिद्धार्थक से उसे ले लेता है। राक्षस वही अँगूठी शकटदास को राजकीय कार्य चलाने के लिए दे देता है। सिद्धार्थक वहीं रह कर राक्षस की सेवा करने लगता है।

शकटदास व सिद्धार्थक दोनों के चले जाने पर विराधगुप्त राक्षस को बतलाता है कि मलयकेतु के कुसुमपुर से भागने के कारण चाणक्य और चन्द्रगुप्त में अत्यधिक मनमुटाव रहने लगा है। राक्षस यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होता है तथा विराधगुप्त द्वारा ही अपने प्रिय मित्र स्तनकलश नामक वैतालिक को सन्देश भिजवाता है कि जब जब चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा का उल्लंघन करे तब तब वह चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काने में समर्थ हो गये। विराधगुप्त चला जाता है। तभी शकटदास राक्षस के पास तीन आभूषण भेजता है, जो बेचे जा रहे हैं। राक्षस उन्हें बहुमूल्य समझ कर खरीदने की अनुमति दे देता है। वास्तव में ये पर्वतक के ही आभूषण हैं जिन्हें प्रथम अङ्क में चाणक्य के कहने से विश्वासु आदि तीन भाइयों ने चन्द्रगुप्त से पर्वतक के श्राद्ध के अवसर पर ग्रहण किया था और अब चाणक्य की योजनानुसार ही राक्षस को बेच दिये गये हैं।

1.8.3 तृतीय-अङ्क का सार :-

इस नाटक में तृतीय अङ्क का विशेष महत्त्व है इसमें चन्द्रगुप्त और चाणक्य के कृतक कलह अर्थात् बनावटी विवाद का वर्णन किया गया है, जो नाटक को एक नया मोड़ दे देता है। इसी बनावटी विवाद के कारण मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। इसी कलह से मलयकेतु का राक्षस के प्रति अविश्वास पञ्चम अङ्क में और भी अधिक दृढ़ हो जाता है और वह राक्षस को अपमानित कर निष्कासित कर देता है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की पूर्वयोजना के अनुसार चन्द्रगुप्त कुसुमपुर में कौमुदी महोत्सव का

आयोजन करने का आदेश देता है परन्तु चाणक्य इसका निषेध करवा देता है। चन्द्रगुप्त ऐसा अभिनय करता है जैसे कि उसे इस कौमुदी महोत्सव के निषेध के विषय में कोई ज्ञान नहीं है। सुगाङ्ग महल की छत पर चढ़ कर जब कुसुमपुर को कौमुदी महोत्सव से रहित देखता है, तो वह अत्यधिक कुपित हो जाता है अओर कञ्चुकी द्वारा चाणक्य को बुलवाता है। चन्द्रगुप्त उससे कौमुदी महोत्सव के निषेध का कारण पूछता है। चाणक्य इसका सीधा उत्तर न देकर यह कहता है कि तुम सचिवायत्त सिद्धि वाले हो अर्थात् तुम्हें मन्त्री के कारण सफलता मिली है, अतः हम अपनी इच्छानुसार कार्य करेंगे।

चाणक्य के इतना कहने पर ही चन्द्रगुप्त के दो वैतालिकों में से एक वैतालिक जो स्तनकलश नामक राक्षस का गुप्तचर है, राक्षस के पूर्व आदेश के अनुसार चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काने के लिए श्लोक पढ़ता है। चन्द्रगुप्त अपने कञ्चुकी से उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देने को कहता है। परन्तु चाणक्य उसे रोक देता है। इससे तो चन्द्रगुप्त और भी अधिक आगबबूला हो जाता है। चाणक्य कहता है कि यदि तुम यह प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकते तो अपना राज्यभार स्वयं सम्भालो। चन्द्रगुप्त इसे स्वीकार कर लेता है और अब वह राजा के रूप में चाणक्य से कौमुदी महोत्सव का निषेध करने का कारण पूछता है। इस प्रश्न का चाणक्य दो टूक उत्तर दे देता है कि पहला कारण तो तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करना है और दूसरा कारण यह है कि यह सेना को तैयार कराने का समय है, उत्सव का नहीं। चन्द्रगुप्त यह कह कर अपना असन्तोष प्रकट कर देता है कि यद्यपि तर्क द्वारा हम आपको (चाणक्य को) नहीं जीत सकते तथापि हर प्रकार से राक्षस ही अधिक प्रशंसनीय है और अपनी विजय का श्रेय भी वह चाणक्य को न देकर भाग्य को देता है। इस पर तो चाणक्य अत्यधिक क्रोधित हो जाता है। इस प्रकार चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त में तक कलह (बनावटी विवाद) होता है। चाणक्य अपना मन्त्रीपद त्यागने की घोषणा करते हैं। चन्द्रगुप्त भी कहता है- मैं चाणक्य के बिना राज्य का संचालन कर लूँगा। चन्द्रगुप्त अपने कञ्चुकी वैहीनर से राज्य में यह घोषणा करने का आदेश दे देता है कि चाणक्य को अमात्यपद से हटाकर चन्द्रगुप्त स्वयं राज्य करेगा।

1.8.4 चतुर्थ-अङ्क का सार :-

चतुर्थ-अङ्क में राक्षस का गुप्तचर करभक राक्षस के पास आता है। द्वारपाल द्वारा करभक के आगमन के विषय में बतलाए जाने पर राक्षस उसे तुरन्त अन्दर बुलवाता है। करभक राक्षस को चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य के कलह की बात बतलाता है। तभी मलयकेतु भागुरायण के साथ शिरोवेदना से पीड़ित राक्षस को देखने के लिए पहुँच जाता है। मार्ग में ही भागुरायण मलयकेतु को भड़काता है कि राक्षस की शत्रुता चाणक्य से है, चन्द्रगुप्त से

नहीं। सम्भवतः चाणक्य के चन्द्रगुप्त से अलग हो जाने पर राक्षस चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ले। भागुरायण मलयकेतु को यह भली भाँति समझा देता है कि चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को अमात्यपद से हटा दिया है, व राक्षस नन्दवंश का पैतृक अमात्य है। इसलिए चन्द्रगुप्त राक्षस को अपना अमात्य बना लेगा और राक्षस की भी नन्दवंश में निरतिशय भक्ति है और चन्द्रगुप्त नन्दवंश का ही है, यह सोचकर चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार कर लेगा। ऐसा होने पर वे दोनों मलयकेतु को दूध में से मक्खी की भाँति निकाल कर फेंक देंगे। इस प्रकार भागुरायण मलयकेतु के मन में शङ्का के बीज बो देता है। परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। राक्षस चाणक्य को अमात्यपद से हटाए जाने के कारण यह सोच कर प्रसन्न हो जाता है कि अब उसके लिए चन्द्रगुप्त को जीतना अत्यधिक सरल हो जाएगा और वह अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेगा। इसी शुभ घटना की सूचना देने के लिए वह मलयकेतु को देखना चाहता है। मलयकेतु तो वहाँ पहले से ही दरवाजे के पीछे छिपकर राक्षस व करभक की बात सुन रहा होता है, अतः तुरन्त बाहर आ जाता है। राक्षस मलयकेतु को कहता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त से अलग हो गया है। अब चन्द्रगुप्त राज्य चलाने में सर्वथा असमर्थ है। इसी अवसर का लाभ उठाते हुए हम शत्रु पर आक्रमण कर देंगे। मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति शङ्का उत्पन्न हो जाती है परन्तु साथ ही वह युद्ध करने के उत्साह से भी भर जाता है। राक्षस क्षपणक जीवसिद्धि से जो वास्तव में चाणक्य का ही गुप्तचर है, प्रयाण करने का शुभ मुहूर्त निकलवाता है परन्तु उसके द्वारा बतलाए गए मुहूर्त से राक्षस सन्तुष्ट नहीं होता। अतः वे अन्य ज्योतिषियों से भी परामर्श लेना चाहता है। इस पर क्षपणक क्रुद्ध होकर चला जाता है।

1.8.5 पञ्चम-अङ्क का सार :-

पञ्चम-अङ्क में सिद्धार्थक तथा क्षपणक की बातचीत से ज्ञात होता है कि मलयकेतु पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर चुका है। मार्ग में उसने एक शिविर स्थापित किया है। वहाँ यह नियम बना दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति भागुरायण की मुद्रा से मुद्रित आज्ञापत्र लिए बिना न तो उस शिविर में आ सकता है और न ही शिविर से बाहर जा सकता है। प्रथम अङ्क में चाणक्य ने शकटदास से जो पत्र लिखवाकर राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर सिद्धार्थ को दिया था उसी पत्र को लेकर तथा दूसरे अङ्क में शकटदास को वध्यस्थल से बचाकर लाने के कारण प्रसन्न हुए राक्षस द्वारा अपने शरीर से उतार कर जो आभूषण दिए गए थे और सिद्धार्थक ने जिन्हें राक्षस की मुद्रा से मुद्रित करवा कर उसके भाण्डारगार में ही रखवा दिया था, उन्हीं आभूषणों को लेकर सिद्धार्थक के रंगमञ्च पर प्रवेश करने से पञ्चम-अङ्क प्रारम्भ होता है। सिद्धार्थक वस्तुतः चाणक्य का विश्वसनीय गुप्तचर

है। वह पत्र और आभूषण लेकर पाटलिपुत्र की ओर जाता है परन्तु मार्ग में उसे जीवसिद्धि क्षपणक मिल जाता है। यह भी चाणक्य का ही गुप्तचर है परन्तु राक्षस का कृत्रिम (अवास्तविक, बनावटी) मित्र बना हुआ है। वह सिद्धार्थक को भागुरायण (चाणक्य ही गुप्तचर) की मुद्रा से मुद्रित आज्ञापत्र लेकर ही शिविर से बाहर जाने को कहता है क्योंकि किसी के लिए भी आज्ञापत्र लिए बिना शिविर से आना-जाना निषिद्ध था।

परन्तु सिद्धार्थक स्वयं को राक्षस का व्यक्तिगत सेवक समझते हुए भागुरायण से आज्ञापत्र लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। क्षपणक आज्ञापत्र लेने चला जाता है। मलयकेतु राक्षस के प्रति शङ्कित रहता है। वह भागुरायण से मिलने के लिए उसके पास पहुँचने वाला ही होता है कि तभी क्षपणक आज्ञापत्र लेने के लिए भागुरायण के पास पहुँच जाता है। भागुरायण को पता है कि क्षपणक राक्षस का परम मित्र है, अतः वह उपहास में ही उससे पूछ लेता है कि कहीं राक्षस के कार्य से तो बाहर नहीं जा रहे। वह कहता है कि मैं तो राक्षस से बहुत दूर जा रहा हूँ और प्रसङ्गवश वह यह भी बतला देता है कि राक्षस ने विषकन्या का प्रयोग करके राजा पर्वतक को मारा है जिसके कारण उसे (क्षपणक को) चाणक्य द्वारा निष्कासित कर दिया गया। मलयकेतु छिपकर सब सुन लेता है और उसे यह निश्चय हो जाता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतक को मरवाया है, चाणक्य ने नहीं।

तभी शिविर के अधिकारी पुरुष सिद्धार्थक को पकड़ कर लाते हैं क्योंकि यह बिना आज्ञापत्र लिए शिविर से बाहर जा रहा था। उसके हाथ से राक्षस की मुद्रा से मुद्रित पत्र लेकर पढ़ा जाता है तथा उस पत्र के विषय में उससे पूछताछ की जाती है जब वह इस विषय में उचित जानकारी नहीं दे पाता तो उसे पीटा जाता है और तभी उसकी बगल से राक्षस की मुद्रा से मुद्रित आभूषणों की पेटी भी गिर जाती है। (यह वही पत्र है, जो प्रथम अङ्क में चाणक्य द्वारा शकटदास से लिखवा कर राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया गया था और ये वही आभूषण हैं, जो द्वितीय अङ्क में मलयकेतु के कञ्चुकी ने राक्षस को पहनाए थे और फिर यही आभूषण राक्षस द्वारा प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिए गए थे, क्योंकि वह शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर लाया था।) उस पत्र से तथा सिद्धार्थक द्वारा जो कुछ बतलाया गया उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धार्थक को राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के पास भेजा जा रहा है। चन्द्रगुप्त राक्षस को अपना अमात्य बनाना चाहता है इसीलिये उसके द्वारा चाणक्य को अमात्यपद से हटाया गया है। मलयकेतु इस बात से राक्षस को विश्वासघाती समझाने लगता है और तुरन्त राक्षस को बुलवाता है। मलयकेतु का सन्देश प्राप्त होते ही राक्षस उससे मिलने चलता है। राक्षस शकटदास द्वारा खरीदे गए तीन आभूषणों

में से एक को पहन कर आता है। ये आभूषण वास्तव में पर्वतक के हैं जो चाणक्य की योजनानुसार विश्वावसु इत्यादि तीन भाइयों को ग्रहण करवा कर राक्षस के पास बिकवा दिए गए थे।

मलयकेतु राक्षस से सीधा प्रश्न करता है कि- आपने सिद्धार्थक को यह पत्र तथा आभूषण लेकर चन्द्रगुप्त के पास क्यों भेजा ? तो राक्षस हतप्रभ सा हो जाता है। वह यह नहीं कह सकता कि पत्र और आभूषण उसके नहीं हैं क्योंकि उन पर उसकी मुद्रा अंकित है। शत्रु द्वारा कपटमुद्रा उत्पन्न करने की बात भी निराधार हो जाती है क्योंकि सिद्धार्थक बतलाता है कि यह पत्र शकटदास द्वारा लिखा गया है और राक्षस शकटदास के प्रति अत्यन्त विश्वस्त होने के कारण यह बात अक्सर कह देता था कि यदि पत्र शकटदास द्वारा लिखा गया है तो यह समझ लिया जाए कि यह मेरे द्वारा ही लिखा गया है। भागुरायण शकटदास के लेख की प्रतिलिपि मँगवा लेता है जिससे यह निश्चित हो जाता है कि पत्र शकटदास ने ही लिखा है। तभी मलयकेतु की दृष्टि राक्षस द्वारा पहने गए आभूषण पर पड़ जाती है, जो वास्तव में पर्वतक का है। राक्षस को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि यह सारी योजना चाणक्य की ही थी। मलयकेतु को अब यह निश्चय हो जाता है कि उसका पिता राक्षस द्वारा ही मरवाया गया था और अब राक्षस उसे भी मरवा देना चाहता है। मलयकेतु राक्षस से कहता है कि उसके कथन की पुष्टि क्षपणक जीवसिद्धि से कर ली जाए। तब राक्षस को पता चलता है कि जिस पर वह अत्यन्त विश्वास करता था वह क्षपणक जीवसिद्धि भी चाणक्य का ही गुप्तचर था।

इस प्रकार राक्षस के ऊपर एक के बाद एक वज्रपात होता है और चाणक्य की सुनियोजित योजनाओं में फँसता चला जाता है। अब स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए उसके द्वारा दिया गया कोई भी उत्तर मलयकेतु को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। अतः उसके ऊपर जो भी दोषारोपण किया गया है, उसको स्वीकार कर लेने में ही वह अपना भला समझता है। मलयकेतु राक्षस को चन्द्रगुप्त का आश्रय लेने को कह कर उसे निकाल देता है। भागुरायण मलयकेतु को शीघ्र ही कुसुमपुर पर आक्रमण करने का सुझाव देता है और राक्षस सब तरफ से निराश होकर चन्दनदास को ही बचाने का कोई उपाय सोचता हुआ बाहर चला जाता है। इसी के साथ पञ्चम-अङ्क की समाप्ति होती है।

1.8.6 षष्ठ-अङ्क का सार :-

इस अङ्क के प्रारम्भ में सुसिद्धार्थक तथा सिद्धार्थक का वार्तालाप होता है। उनके वार्तालाप से मालूम होता है कि मलयकेतु को चन्द्रगुप्त के सैनिकों ने पकड़ लिया है तथा राक्षस कुसुमपुर की ओर गया है। कुसुमपुर व राजा नन्दों की पुरानी स्मृतियाँ राक्षस के

मानसपटल पर पुनः नवीन हो जाती है। साथ ही मलयकेतु की विवेकशून्यता तथा भाग्य की विपरीतता पर भी वह आँसू बहाता है। तभी उसे अपने सामने एक पुरुष स्वयं को फाँसी लगाता हुआ दिखाई देता है, वस्तुतः वह चाणक्य का ही व्यक्ति है। राक्षस द्वारा स्वयं को फाँसी लगाए जाने का कारण पूछे जाने पर वह बतलाता है कि वह कुसुमपुर में रहने वाला मणिकार श्रेष्ठी विष्णुदास का मित्र है और विष्णुदास चन्दनदास नामक मणिकार श्रेष्ठी का परम मित्र है। विष्णुदास अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान में देकर अग्नि में प्रवेश करने जा रहा है क्योंकि उसके मित्र चन्दनदास को उसके द्वारा राक्षस का परिवार न सौंपे जाने पर मृत्युदण्ड दिया जा रहा है और चूँकि विष्णुदास आग में प्रवेश कर रहा है अतः उसकी मृत्यु के विषय में सुनने से पूर्व ही वह आत्महत्या कर लेना चाहता है।

यह सुनकर राक्षस उसे बताता है कि मैं ही राक्षस हूँ। राक्षस उस पुरुष को विष्णुदास को मरने से रोकने के लिये भेजता है और स्वयं चन्दनदास की रक्षा के लिए निकल जाता है।

1.8.7 सप्तम-अङ्क का सार :-

सप्तम-अङ्क में दो चाण्डाल (जल्लाद) चन्दनदास को वध्यस्थान की ओर ले जाते हैं। चन्दनदास की पत्नी तथा पुत्र विलाप करते हैं। चन्दनदास उन दोनों को सान्त्वना देता है। तभी राक्षस वहाँ उपस्थित होकर आत्मसमर्पण कर देता है। चाणक्य भी वहाँ उपस्थित हो जाता है और राक्षस का अभिवादन करता है। चाणक्य राक्षस से कहता है कि आपको चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने के लिए यह लीला मैंने रची है। चन्द्रगुप्त सामने आकर राक्षस का अभिवादन करता है। राक्षस भी अन्ततः मित्र चन्दनदास की रक्षा के लिए चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार करता है। राक्षस की प्रार्थना पर मलयकेतु को उसके पिता का राज्य दे दिया जाता है। चन्दनदास को नगर का सेठ बना दिया जाता है। इस प्रकार चाणक्य द्वारा की गई नन्दवंश के वध की प्रतिज्ञा राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाकर पूर्ण हो जाती है। चाणक्य अपनी खुली हुई शिखा बाँध लेता है और भरतवाक्य के साथ नाटक की सुखद समाप्ति हो जाती है।

1.9 चरित्र-चित्रण :-

नाटक में कथावस्तु के बाद दूसरा स्थान है चरित्र-चित्रण का। चरित्र-चित्रण का मूल आधार है पात्रों का चरित्र चरित्र हो किसी व्यक्ति की रुचि अरुचि का प्रदर्शन करता हुआ उसके नैतिक प्रयोजन को अभिव्यक्त करता है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मुद्राराक्षस संस्कृत साहित्य में अनोखा नाटक है, जिसमें विशाखादत्त ने मौलिक रूप से चरित्रों के विकास को बढ़ाने का सफल प्रयास किया है। अन्य विशेषताओं को छोड़कर यदि इस नाटक के चरित्रों

पर ही सूक्ष्म-पर्यालोचन किया जाय तो इसकी उपयुक्त विशिष्टता झलक उठेगी। इसके सभी पात्र द्वन्द्वरूप से चित्रित हैं। प्रत्येक पात्र के चरित्र का विकास प्रतिद्वन्द्व की पृष्ठभूमि पर विरोध और संघर्ष में हुआ है। चाणक्य और राक्षस, चन्द्रगुप्त और मलयकेतु परस्पर के भयंकर प्रतिद्वन्द्वी के रूप में चित्रित हुये हैं। इनका चारित्रिक परस्पर के संघर्ष पर ही आश्रित है। यदि चाणक्य नन्दवंश का भयंकर शत्रु है तो राक्षस नन्दवंश का अनन्य भक्त । मुद्राराक्षस नाटक में वर्णित प्रमुख पात्रों का परिचय इस प्रकार है-

1.9.1 चाणक्य :-

‘मुद्राराक्षस’ में चाणक्य सर्वाधिक क्रियाशील पात्र है। इसकी विचारधारा चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व पर आच्छादित है। यह अपने प्रतिद्वन्द्वी राक्षस के साथ राजनीतिक घात-प्रतिघात में भाग लेकर नाट्यवस्तु का पोषण करता है। इसका नाटक के रंगमञ्च पर सर्वप्रथम नन्दवंश विनाश के लिए एक दृढप्रतिज्ञा ब्राह्मण के रूप में उदय हुआ है। नाटक के अन्त में भी इसने राक्षस को अपने पक्ष में करके प्रतिज्ञा का सफल निर्वाह किया है। यह व्यवहारकुशल शास्त्र-ज्ञानी तथा राजनीति विशारद ब्राह्मण है। शास्त्रीय दृष्टि से यह ‘धीरोदात्त’ नायक है। इसके व्यक्तित्व में धीरशान्त एवं धीरोद्धत का मिश्रण है।

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः। (दशरूपक.2:114-10)

धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः।। (दशरूपक.2-5:120-3)

यह महान् चरित विशाखादत्त की महती कल्पना है। मुद्राराक्षस की तो बात ही क्या? संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रायः सभी नायकों में सर्वाधिक प्रभावोत्पादक यह चरित्र है। इस नाटक के सम्पूर्ण घटनाचक्र का एकमात्र नियन्ता चाणक्य ही है। अर्थशास्त्र और प्राचीन कथा-परम्परा का चाणक्य भले ही एक महत्वाकांक्षी, महाक्रोधी या शास्त्रज्ञ ब्राह्मण रहा हो, किन्तु विशाखादत्त का चाणक्य निरीहता, निःस्वार्थमयता और लोकसंग्रह की महती भावना का महान् चरित है। ‘निरीहणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः’ (मुद्रा.२.१६)। वह राजनीतिज्ञ है, उसकी सारी कर्तव्य बुद्धि मौर्य साम्राज्य की दृढ सम्पन्नता के लिए संचालित है। वह मौर्य चन्द्रगुप्त का अभेद्य कवच है। अपने आश्रितों का आधारस्तम्भ है। उसका तेजस्वी व्यक्तित्व चाणक्य के पराभव से तमतमा उठता है- आः! क एष मयि स्थिते चन्द्रमभिभवतुमिच्छति? (मुद्रा.1)। वह भावुक और भाग्यवादी नहीं होकर परम पुरुषार्थी है। अपने अनन्या सक्त अनुचरों पर भी अखण्ड विश्वास न कर उसे अपनी प्रखर बुद्धि पर दृढ आस्था है -

एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेऽभ्योधिका।

नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु भागान्मम।।(मुद्रा.1.26)

चाणक्य की यह उक्ति ही उसके समग्र व्यक्तित्व का आकलन है। उसकी सम्मति में मूर्ख व्यक्ति ही दैव में विश्वास करते हैं- 'दैवमविद्वान्सः प्रमाणयति' (मुद्रा.3)। कौटिल्य का अर्थ- शास्त्र गुप्तचरों और गूढ़ प्रणिधियों के सम्बन्ध में जिन शास्त्रीय सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। मुद्राराक्षस साम्राज्यवाद के इन देवदूतों की व्यावहारिक रूपरेखा तैयार कर देता है। शार्ङ्गरव शिष्य रूप में, व्जीवसिद्धि तापस रूप में तथा सिद्धार्थक कर्मकर रूप में चाणक्य की विभिन्न भावनाओं के प्रतिरूप हैं। चाणक्य प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का अवतार है। वह अपने शत्रुओं के अपराध को क्षणभर के लिए भी सह्य नहीं करता। प्रतिपक्षियों के नाम की चर्चा आते ही वह क्रोध से तिलमिला उठता है। वह अपने शत्रुओं की निन्दामात्र करने में अपनी शक्ति का द्वास नहीं करना चाहता। अपने शत्रुओं के प्रति अत्यन्त उग्र एवं क्रूर होता हुआ भी वह राक्षस के गुणों का प्रशंसक है। उसकी दृष्टि में राक्षस एक स्वामिभक्त, बुद्धिमान, साहसी एवं सुदक्ष मन्त्री है। इसी गुणग्राहीता के कारण वह राक्षस के गुणों का प्रशंसक भी है। उसकी दक्षता को जितना चाणक्य समझता है, संभवतः राक्षस स्वयं भी अपने गुणों को उतना अधिक नहीं समझता। तभी तो वह कहता है- 'अत एव अस्माकं त्वयि संग्रहे यत्नः'।

चाणक्य स्पष्टवादी, आत्मविश्वासी, दृढप्रतिज्ञ, फूटनीतिज्ञ, कठोर राजनीतिवेत्ता एवं सर्वात्मना अपने लक्ष्य प्राप्त करने वाला व्यक्ति है। कर्तव्य की वेदी पर अपने मन की सारी मधुर भावनाओं की आहुति चढ़ानेवाला यह चरित इस नाटक में प्रत्यक्ष धैर्य की मूर्ति है। इसका व्यक्तित्व निरन्तर आत्मनिरीक्षण में संलग्न है- जागर्ति खलु कौटिल्यः (मुद्रा.3)। लोकहित के लिए आत्मशुद्धि की भावना से भरा यह व्यक्तित्व एक स्वतंत्र नायक चरित्र है। इसके नीतिकौशल की सराहना चन्द्रगुप्त के कञ्चुकी, भागुरायण, सिद्धार्थक आदि स्वपक्ष के पात्रों ने तो की ही है। परपक्ष के राक्षस, चन्दनदास आदि पात्र भी उसके बुद्धिबल से अभिभूत हैं। मुद्राराक्षस का चाणक्य बल प्रयोग की अपेक्षा हृदय-परिवर्तन पर अधिक विश्वास रखता है। रक्तपात के बाद शत्रु पर विजय पाने की अपेक्षा अपने निस्वार्थ व्यक्तित्व से उसे अभिभूत करने की क्षमता रखता है। चाणक्य मूर्तिमान् आत्मविश्वासी है। उसका अन्तर्बल, उसकी आत्मप्रेरणा अपने आगे किसी प्रबल शक्ति की प्रतिस्पर्द्धा स्वीकार नहीं करती। इसके नश-नश से आत्मोत्साह की भावना भरी है। यह महात्मात्य राक्षस की प्रज्ञा, पराक्रमशक्ति और राजभक्ति को स्वीकार करता है, किन्तु फिर भी उसे अपने समर्थ व्यक्तित्व का प्रतिस्पर्द्धा कभी नहीं मानता। मौर्य साम्राज्य की सुदृढ-स्थापना, हितसाधन और पुरुषार्थ-साधन का साधक बनने का दृढ-निश्चय कर चुका है -

चाणक्यस्त्वमपि च नैव, केवलं ते साधर्म्यं मदनुकृतेः प्रधानवैरम्। (मुद्रा.3.12)

वह शिष्यवत्सल है, अतः चन्द्रगुप्त के राज्य को निष्कण्टक बनाने की चिन्ता उसे निरन्तर रहती है। पर्वतेश्वर के प्रति विषकन्या का प्रयोग करके उसने जिस कुटिलता का परिचय दिया है, नाटक के अन्त में मलयकेतु को बन्धनमुक्त करके तथा चन्दनदास को नगर-सेठ का पद देकर उतनी ही उदारता व्यक्त की है। यह परम्परागत कथा पुराणों का चाणक्य नहीं है। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र का भी चाणक्य नहीं है। यह तो 'मुद्राराक्षस' का वह चाणक्य है, जो अपने व्यक्तिस्त की महत्ता स्वयं ही नहीं समझता, प्रत्युत अपने आदर्शों पर चलने के लिए अपने प्रतिपक्ष को भी दूरदर्शिता से, बुद्धि वैभव से विवश कर देता है।

चन्द्रगुप्त को सम्राट बना करके उसने अपने को सफल राजनीतिज्ञ होने का प्रबल प्रमाण दिया है। उसकी राजनीति दैव की गति के समान अश्रुतगति है। वह गुणग्राही है, इसलिए राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने के दृढ-संकल्प को पूर्ण करता है। चन्द्रगुप्त को सकल समृद्धि प्रदानकर भी वह निस्पृह है और राजभवन में रहकर भी कुटी में यती का जीवन व्यतीत करता है। सहज क्रोध और आत्मप्रशंसा उसके दो सहज उल्लेखनीय दुर्गुण हैं। किन्तु एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति में इनका भी होना उतना ही स्वाभाविक है। चाणक्य सर्वप्रथम एक अनासक्त योगी है, फिर कर्मयोगी। इसका व्यक्तित्व किसी भी राजनीतिज्ञ के लिए किसी भी काल में किसी भी देश में सर्वथा आदर्श एवं अनुकरणीय है।

इस नाटक में चाणक्य का चरित्र इतना अधिक सशक्त बन गया है कि वही नायक प्रतीत होता है। इसका कारण स्पष्टतः उसकी अतुल प्रज्ञा, कर्मनिष्ठता एवं कर्तव्यनिष्ठता है। उसके समस्त कार्य त्याग की पृष्ठभूमि में चन्द्रगुप्त की विरोधिनी शक्तियों को एक सूत्र में बाँधकर चन्द्रगुप्त के एकछत्र राष्ट्र की स्थापना के लिए होती है। अतः वह सहज ही सामाजिकों की समवेदना प्राप्त कर लेता है। वह मेधा, त्याग, तेजस्विता, दृढता एवं पुरुषार्थ का प्रबल प्रतीक है। शरीर में जो स्थिति मेरुदण्ड की होती है, वही स्थिति मुद्राराक्षस में चाणक्य के चरित्र की है। यह चरित्र अत्यन्त घटनापूर्ण गौरवशाली है। इसका मूल उद्देश्य है- नन्दवंश का मूलोच्छेद एवं चन्द्रगुप्त को भारत का सार्वभौम सम्राट बनाना। अपने इस उद्देश्य की पूति वह अपनी राजनीतिज्ञ प्रतिभा के बल पर करता है। उसके चरित में दृढता, आत्मत्याग, कर्मनिष्ठा, निर्भीकता, साहस एवं विद्वता आदि गुण कूट-कूट कर भरे पड़े हैं। साम-दाम आदि कूटनीतिक चालों में वह पारङ्गत है और उनके प्रयोग करने में कभी भी नहीं हिचकता। साहसी होने के साथ-साथ वह कठोर सिद्धान्तवादी भी है। वह विशुद्ध परिणामदर्शी है। वह सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसा भी हो। छल से उसने राक्षस की मुद्रा से ही राक्षस को अधिकृत कर लिया। चन्द्रगुप्त की रक्षा के लिये गुप्तरूप से वह

पर्वतेश्वर की हत्या कराने में भी संकोच नहीं करता। यह क्रूर है, पर उसकी क्रूरता परिस्थितिजन्य है। संक्षेप में हम कह सकते हैं- मुद्राराक्षस में चाणक्य का चरित्र समग्र रूप से अत्यन्त प्रभावोत्पादक, आकर्षक एवं प्रतिष्ठासम्पन्न है। वह ब्राह्मण धर्म की साकार प्रतिमा है। निर्भीकता, स्पष्टवादिता, इड़ता, कठोरता, कष्टसाहिष्णुता, उद्योगशीलता आदि विशेषताएँ उसके चरित्र को गौरवपूर्ण एवं महान् बना देती हैं। चाणक्य कूटनीति में पारंगत होने पर भी शेर-चीते की तरह खूंखार नहीं है। चन्द्रगुप्त उसका परम प्रिय है उसके साथ उसका व्यवहार पुत्र या शिष्य की तरह रूक्ष या कोमल है, अप्रिय तो किसी स्थिति में नहीं। पर चन्दनदास प्रभृति साधारण व्यक्तियों से लेकर राक्षस तक से भी उसका व्यवहार अशिष्ट या अभद्रतापूर्ण नहीं है। राजनीति के साथ-साथ यह उसकी नैतिक विशेषता है। वह इतना सूक्ष्मदर्शी या दूरदर्शी है कि राक्षस जैसे राजनीतिज्ञ को भी उसकी कूटनीति के आगे बार-बार मुँह की खानी पड़ती है। असफलता शब्द से तो उसे परिचय ही नहीं है। उसका एकमात्र कारण उसकी असाधारण योग्यता के अतिरिक्त उसका वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन भी है। लोग मगध सम्राट् चन्द्रगुप्त के गुरु एवं प्रधान सचिव की जब यह विभूति देखते हैं-

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां

बटुभिरुपहतानां बर्हिषां स्तोम एषः ।

शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-

र्विनमितपटलानां दृश्यते जीर्णकुड्याम्॥ (मुद्रा.3.15)

तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं। हमारे मन-वीणा के समस्त संवेदनशील तार इस दृश्य को देखकर झेंत हो उठते हैं। उन तारों से ऐसी करुण-शान्त रागिणी फूट पड़ती है कि चाणक्य की सारी कूटनीति की उच्छृङ्खलता उसी में धीरे धीरे विलीन हो जाती है। जैसे हम आँखें बन्दकर ज्योतिश्चक्र से घिरे हुए चाणक्य को त्यागी तपस्वी के रूप में देखकर अपना माथा झुका देते हैं। वह हमारी सारी श्रद्धा का पात्र होता है। फिर नायकत्व का प्रश्न ही क्या?

1.9.2 चन्द्रगुप्त (नाटक का नायक) :-

मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से मुद्राराक्षस का नायक है। वह मनस्वी एवं अदम्य उत्साही है। मौर्य साम्राज्य के भार वहन करने के लिए सदैव तत्पर रहता है और लोकव्यवहार से पूर्ण परिचित है- 'अभिज्ञः खल्वसि लोकव्यवहाराणाम्' (मुद्रा.3)। इसके राज्य में छल-कपट का कहीं अस्तित्व नहीं है। अपराधियों एवं विद्रोहियों के प्रति यह अत्यन्त कठोर है- 'एवमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा....' (मुद्रा.1)। यह व्यक्त मानावलेप एवं प्रकृतिप्रेमी है। इसमें प्रायः नायक के सभी गुण पाये जाते हैं। धनञ्जय ने लिखा है-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः,
रक्तलोका शुचिर्वाग्मी रूढवंशस्थिरो युवा।

बुध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञा कलामानसमन्वितः,

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥ (दशरूपक.2.1)

अर्थात् नायक तरुण, विनम्र, मधुरमाषी, त्यागी, चतुर एवं प्रियवादी, लोकरञ्जक, कुलीन वंशोत्पन्न इत्यादि गुणों से युक्त होता है। चन्द्रगुप्त में प्रायः ये सभी गुण वर्तमान हैं। सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य का आधिपत्य हस्तगत कर लेने पर भी उसे थोड़ा भी अहंकार नहीं है। वह सर्वतोभावेन विनत स्वभाव का है। उसके इस स्वभाव से ही विमुग्ध होकर राक्षस ने कहा है- ‘बाल एव हि लोकेऽस्मिन् संभावित महोदयः (मुद्रा.7.12.)’। चन्द्रगुप्त प्रियदर्शी तथा त्यागी भी है। उसके सन्मुख जो कुछ भी कार्य उपस्थित होता है दक्षतापूर्वक उसका निर्वाह करता है। किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति उसका कहीं भी मोह परिलक्षित नहीं होता। प्रकृतिप्रेमी होने के कारण कौमुदीमहोत्सव के प्रति उसका सामान्य आकर्षण प्रतीत होता है। इतिहासकारों का कहना है कि यह महाराज नन्द की एक दासी मुरा नामक शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। अतः यह शूद्र था। यही कारण है कि चाणक्य ने नाटक में इसे ‘वृषल’ नाम से ही सम्बोधित किया है। इसी आधार पर कुछ आलोचक उसे शुद्रकुलोत्पन्न मानते हैं। राक्षस भी उसे कुछ इसी प्रकार समझता है-

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चौरभिजनम्।

गता छिद्रेण श्रीवृषलमविनीतेव वृषली। (मुद्रा.6.6)

चन्द्रगुप्त प्रजानुरञ्जक राजा तथा योग्य गुरु का योग्यतम शिष्य है। इसकी प्रकृति धार्मिक है। लोकव्यवहार का यह पूर्ण ज्ञाता है। अपरिमित योद्धा है। यह अपने गुरु के नियन्त्रण में रहते हुए प्रत्येक कार्य को सहर्ष स्वीकार करना चाहता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त को पाकर गर्वित है और चन्द्रगुप्त चाणक्य को पाकर निश्चिन्त है। चाणक्य मनस्वी है तथा विचारशील शासक रूप में भी चित्रित है। इसकी प्रत्येक गतिविधि में विचारों की प्रौढ़ता एवं यौवन का उत्साह परिलक्षित है। कञ्चुकी के शब्दों में-

सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता,

चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यस्य गुरुणा।

पुरं तामेवोच्चैः नववयसि बोद्धुं व्यवसितो

मनस्वी दम्यत्वात् स्खलित च न दुःखं वहति च॥ (मुद्रा.3.3)

विशाखादत्त ने चन्द्रगुप्त का चरित-चित्रण नाटक की सहजता के अनुकूल किया है, अर्थात् उसमें साधारण मनुष्य की तरह गुण और अवगुण दोनों विद्यमान हैं। वह आरम्भ से

अन्त तक केवल मौर्य सम्राट् के आदर्श का ही निर्भर नहीं करता है। इसका चरित्र नाटकीय स्थितियों के अनुरूप गतिशील है।

इतना ही नहीं, चाणक्य ने भी सब कुछ चन्द्रगुप्त की हितकामना से ही किया है। अतः फल सिद्धि अर्थात् नन्दवंश के उन्मूलन द्वारा राज्य की प्राप्ति और राक्षस द्वारा मन्त्रित्व की स्वीकृति- चन्द्रगुप्त को दी हुई है। चाणक्य ने फलसिद्धि के लिए अपेक्षित कारणरूप सामग्री की योजना भले हो की है। किन्तु फल के प्रति आसक्ति उसके मन में नहीं है। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व उत्तरोत्तर विकासशील रहा है। अतः उसी को मुद्राराक्षस का नायक मानना समीचीन होगा।

1.9.3 राक्षस :-

पाश्चात्य समीक्षकों ने इस नाटक के शीर्षक को ध्यान में रखते हुए राक्षस को ही नायक माना है। वह अत्यन्त वैभवशाली, प्रभावपूर्ण, यशस्वी एवं कुलीन मन्त्री है। उसके चरित में सत् के साथ कुछ असत् का भी सम्मिश्रण है। वह मूलतः सज्जन होने पर भी सर्वथा निर्दुष्ट नहीं कहा जा सकता है। उसके स्वभाव में कहीं न कहीं ऐसी कमजोरी करने की प्रवृत्ति है, जिसके कारण अपनी विपत्ति के दायित्व से वह सर्वथा मुक्त नहीं कहा जा सकता। अपने किसी न किसी स्वभावदोष या भूल के कारण ही वह दुर्भाग्य का शिकार बनता रहता है। सम्पूर्ण नाटक में उसका चरित्र विरोधों के बीच ही विकसित हुआ है। उसकी भावुकता ही उसकी पराजय के कारण है। उसकी सबसे उल्लेखनीय विशेषता स्वामी के प्रति निष्ठा का निर्वाह है- पहले नन्दवंश के प्रति तदनन्तर मलयकेतु के प्रति और अन्त में आशीर्वादरूप में चन्द्रगुप्त के प्रति इसका अनेकशः प्रमाण मिलता है। इसकी इस भक्ति को देखकर ही चाणक्य कहता है-

अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः।

नन्द के प्रति एकान्त निष्ठा और राक्षस की महत्वाकांक्षा इन दोनों को एक ही माना जा सकता है। वह कूटनीति का मर्मज्ञ तथा मेधावी है। शस्त्रविद्या में भी निपुण है। उसमें सैन्यसंचालन की पूरी क्षमता है। वह शूर वीर है-

यत्रैषा मेघनीला चरतिगजघटा राक्षसस्तत्र यायात्। (मुद्रा.2.14)

राजनीति और षडयन्त्र की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं के व्यापक आधार पर राक्षस का चरित्र चित्रण किया गया है। यह आवेश एवं त्वरा में आकर अपनी प्रकृति से लाचार होकर अपने निर्णयसम्बन्धी भूल के कारण दुर्भाग्य का शिकार बन जाता है। सहज मानवीय दुर्बलता के कारण यह निर्णय लेने में भूल कर जाता है, जिससे प्रेक्षक के हृदय में स्वतः सहानुभूति का उद्रेक होने लगता है। चूंकि इसकी विपत्ति इसके दोष की अपेक्षा अनुपात

से कहीं अधिक है। अतः प्रेक्षक के मन में चन्द्रगुप्त या चाणक्य की अपेक्षा इसके प्रति अधिक करुण आकर्षण उत्पन्न होता है। इसकी पराजय सर्वत्र निर्णय-सम्बन्धी दोष के कारण ही होती है। किन्तु इस दोष के लिए इसके कहीं स्वभाव, कहीं आवेश की प्रधानता, कहीं त्वरा की प्रवृत्ति, कहीं महत्वाकांक्षा और कहीं अतिशय विश्वास ही उत्तरदायी है। यह अपने स्वभाव के कारण ही किसी भी अनजान या नवीन व्यक्ति पर सहसा विश्वास कर लेता है, यथा- सिद्धार्थक। उसने इसी भूल के कारण जीवसिद्धि और सिद्धार्थक जैसे व्यक्ति पर विश्वास कर अपनी पराजय को आमन्त्रित कर लिया है। वे दोनों ही चाणक्य के गुप्तचर हैं और घटनाचक्र को बदल देने की सामर्थ्य रखते हैं। इन दोनों पर विश्वास करना ही उसके पतन का मूल कारण बन गया है। राक्षस स्वार्थरहित है। उसको एकमात्र प्रबल इच्छा है नन्दसाम्राज्य का पुनरुद्धार करना। इसीलिए उसने मलयकेतु का आश्रय ग्रहण किया है-

देवः स्वर्गतोऽपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति॥ (मुद्रा.2.5)

राक्षस एक सच्चा मित्र है। विशाखादत्त ने इसकी मैत्रीभावना का जो चित्रण किया है वह भारतीय नाट्य साहित्य की अपूर्व देन है। अपने मित्र चन्दनदास के जीवन की रक्षा वह अपने आपको बन्धन में डालकर करता है। चन्दनदास उसका अभिन्न मित्र है- 'द्वितीयमिव हृदयम्'। इसका सारा जीवन निराशा और दुर्भाग्य से उद्वेलित रहा है। यह पुरुषार्थों की अपेक्षा अधिक भावुक और भाग्यवादी है। स्वामी नन्द के प्रति अनन्य भक्ति एवं चन्दनदास के प्रति लोकोत्तर स्नेह उसके चरित्र के दो अविस्मरणीय गुण हैं। इसकी सबसे बड़ी निर्बलता यह है कि इसने किस गुप्तचर को किस कार्य के लिए नियुक्त किया है, यहाँ तक कि यह उनके नाम तक को भी भूल जाता है- "कस्मिन् प्रयोजने ममायं प्रहित इति प्रयोजनानां बाहुल्यान्न खलु अवधारयामि"। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति में निष्णात होते हुए भी राक्षस की पराजय होती है। किन्तु पराजित राक्षस भी हमारे सामने महान् बना रहता है।

इतना ही नहीं राक्षस अपनी प्रभुभक्ति एवं राजनीतिक शक्ति का इतना सुन्दर स्वरूप प्रकट करता है कि चाणक्य जैसा कूटनीतिज्ञ भी उसे शावासी देता है -

गुरुभिः कल्पनाक्लेशैर्दीर्घजागर हेतुभिः।

चिमायासितासेना वृषलस्य मतिश्च मे॥ (मुद्रा.7.8)

राक्षस के मानव स्वभाव की विभिन्न भङ्गियों का चित्रण है। मानव मन की आशा और निराशाओं के घात-प्रतिघात में राक्षस का व्यक्तित्व अपनी स्वाभाविक महत्ता के कारण अजेय दिखाई देता है। विशाखादत्त ने चाणक्य के हाथों में राक्षस की मुद्रा के पड़ जाने की, चाणक्य की वश में राक्षस के आ जाने से जो तुलना की है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राक्षस की हार उसके जीवन की एक आकस्मिक घटना है, एक अनहोनी है और राक्षस

की महत्ता घटाने की अपेक्षा बढ़ाने वाली है। अतः पाश्चात्य विद्वान अरस्तू, रिचर्ड और बूचर के सिद्धान्तों के अनुसार राक्षस ही इस नाटक का नायक तथा यह नाटक दुःखान्त है।

1.9.4 मलयकेतु :-

मलयकेतु पर्वतीय राजकुमार है। मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त की अपेक्षा मलयकेतु का चरित्र अधिक विकसित है। इसके पिता पर्वतक के मृत्यु में चाणक्य का हाथ है। चाणक्य के द्वारा सर्वप्रथम इसके विषय में यह सूचना मिलती है कि उसने भागुरायण के द्वारा तुम्हारे पिता को मरवाया है। ऐसा भय दिखलाकर कुसुमपुर से भगा दिया गया है। राक्षस ने यही सोचकर इसका आश्रय ग्रहण किया है कि पितृवध से प्रकुपित मलयकेतु इसका प्रतिशोध अवश्य लेगा। क्योंकि वह पराक्रमी है, विजगिषु है। किन्तु विशाखादत्त ने इस पात्र को भी सशक्त व्यक्तित्व प्रदान नहीं किया है। चाणक्य के प्रति चन्द्रगुप्त के मन में जैसा विश्वास था, वैसा विश्वास राक्षस के प्रति मलयकेतु के मन में उदित नहीं हो सका। चंचल और अविवेकी प्रकृति के होने के कारण उसने राक्षस के प्रति अविश्वास किया और चाणक्य के गुप्तचर भागुरायण को अपना विश्वस्त विचारक समझा और वही पराजय का मूल कारण बन गया। राक्षस के विरुद्ध वह उसे जैसे-जैसे समझाता है, वह उसे उसी प्रकार समझता है। वह अपनी बुद्धि का विल्कुल प्रयोग नहीं करना चाहता। राक्षस की निष्कपट बातों को भी नई कपटपूर्ण समझने लगता है। सत्य में उसे असत्य की गन्ध आती है। अयथार्थ को यथार्थ मानकर ही वह तुष्ट है। हित-अहित को पहचानने की उसमें क्षमता है ही नहीं अपनी ही अविवेकितता के कारण वह सोचकर परम प्रसन्न है- “दृष्ट्या न सचिवायत्ततन्त्रोऽस्मि” (मुद्रा.4)।

मलयकेतु धीरोद्धत प्रकृति का नायक है। महत्वाकांक्षा, अस्थिरता, अहंकार आदि प्रवृत्तियों उसके व्यक्तित्व में सहज प्राप्य है। विवेक के अभाव में वह भागुरायण के द्वारा ठगा गया है। भागुरायण ने राक्षस के विरुद्ध उसे इतना अधिक भर दिया है कि राक्षस की प्रत्येक गतिविधि में उसे दोष के ही दिखाई देते हैं। वह राक्षस के प्रति अपशब्दों प्रयोग करता है-

तातं निपात्य सहबन्धुजनाक्षितोयैः।

अन्वर्थकोऽपि ननु राक्षस राक्षसोऽसि।। (मुद्रा.5.4)

वह राक्षस को नाम्ना नहीं कर्मणा भी राक्षस ही मानता है। तभी तो उसे राक्षस का इतना तिरस्कार करके भी संतोष जब प्राप्त नहीं हुआ, तब उसने कहा-

चन्द्रगुप्तस्य विक्रेतुरधिकं लाभमिच्छतः।

कल्पिता मूल्यमेतेषां क्रूरेण भवता वयम्।। (मुद्रा.5.17)

अविवेकितता, गंभीरता, दूरदर्शिता आदि सद्गुणों के अभाव के कारण वह अपने विश्वस्त राजाओं का बध करा देता है। वह इतना भी नहीं सोच पाता कि राक्षस अपने

स्वामी नन्द के कट्टर शत्रु चन्द्रगुप्त से कैसे सन्धि कर सकता है। चतुर्थ और पंचम अङ्क में मलयकेतु के चरित्र का विकास जिस प्रकार हुआ है, उसका निर्वाह आगे तक नहीं किया जा सका। इसका कारण है वह राक्षस के आश्रय का उपयुक्त पात्र नहीं है। उसने अपनी ही सेना की केन्द्रबिन्दु का अपने ही हाथों विनाश कर दिया है। वह कृतघ्न है तथा लोगों को पहचानने में सर्वथा असमर्थ है। उसके पास समर्थ सैन्य शक्ति थी, पराक्रमी योद्धा थे, किन्तु अपनी ही अयोग्यता, अधीरता और दुर्नीति के कारण उसका उपयोग नहीं कर सका। मौर्य सम्राट् को परराजित करने की अपेक्षा से अपने ही कुबुद्धि की जाल में फँस कर अपनी पराजय को आहुत कर लेता है।

1.9.5 भागुरायण :-

भागुरायण गुप्त साम्राज्य का प्रमुख योद्धा तथा सेनापति सिंहबल का छोटा भाई है। यह चाणक्य का अत्यन्त विश्वासपात्र गुप्तचर है। वह स्वामिभक्ति, शूरता, साहस, धैर्य और कर्तव्यपरायणता का श्रेष्ठतम उदाहरण है। चाणक्य की मर्यादा की रक्षा के लिए वह सदैव चिन्तित और प्रयत्नशील रहता है। भागुरायण उन पात्रों में है जो नाटक में सीमित समय के लिए सहृदयों के समक्ष आकर अपने कर्तव्यपरायणता से प्रेक्षक का मन मोह लेते हैं। वह वीर तथा उत्साही तो है ही, साथ ही आत्मविश्वासी भी है। चाणक्य की कूटनीति और अपनी बुद्धि पर उसे पूरा भरोसा है। मलयकेतु उसके हाथों का पुतला है। भागुरायण जैसे चाहता है, उससे वैसा ही करवा लेता है। उसका चरित आदर्श गुणों का सन्निधान है। मलयकेतु को वह ठग लेता है, उसके साथ विश्वासघात करता है पर स्वेच्छा से नहीं, आर्य विष्णुगुप्त की आज्ञा से। इस विश्वासघात के लिए उसे पश्चात्ताप होता है। उसकी आत्मा उसे धिक्कार देती है- “कष्टमेवमप्यस्मासु स्नेहवान् कुमारी मलयकेतुरतिसंधातव्य इत्यहो दुष्करम्” इसे इस बात का कष्ट है कि वह धन के लिए आत्मा को चाणक्य के हाथों में बेच दिया है। फिर भी उसने जिस तत्परता, गंभीरता एवं स्वाभिमान के साथ अपने दायित्व का निर्वहन किया है, उसके लिए उसका चरित्र महान है।

1.9.6 सिद्धार्थक :-

सिद्धार्थक चाणक्य का गुप्तचर तथा विश्वसनीय पात्र है। राक्षस के गुप्तचर के रूप में नियुक्त शकटदास की गतिविधि के परीक्षणार्थ चाणक्य ने सिद्धार्थक को प्रतिनियोजित किया था। यह स्पष्टवादी, स्वाभिमानी, महत्वाकांक्षी, बुद्धिमान् तथा विश्वस्त गुप्तचर है। चाणक्य की कूटनीति से सदैव आशंकित रहता है। अपनी भावनाओं का हनन करके भी उसकी आज्ञा का पालन इमानदारी से करता है। यह सप्तम अंक में चाणक्य की आज्ञा से चाण्डाल के रूप में प्रेक्षकों के समक्ष उपस्थित होता है- “तदेहि चाण्डालवेषधारिणौ भूत्वा चन्दनदासं

वध्यस्थानं नयावः”। विस्तार की दृष्टि से इसका चरित्र महत्वपूर्ण नहीं है, फिर भी इसका चरित्र इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि यह चाणक्य की आज्ञा का ही प्रतिमूर्त है—
“वयस्य को जीवलोके जीवितुकाम आर्य चाणक्यस्याज्ञाप्तिं प्रतिकूलयति”। यह सदैव अपने आपको चाणक्य की कार्यसिद्धि के लिए परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेता है।

1.9.7 चन्दनदास :-

इस सम्पूर्ण नाटक में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी एवं करुण चरित्र चन्दनदास का ही है। वह प्रतिभावान्, सहृदय, भावुक और कोमल वृत्ति का नगरसेठ है। यह वैश्य जाति का रत्न, लक्ष्मी का वरदपुत्र तथा कुसुमपुर का प्रस्फुट पुष्प है। यह राक्षस का परम मित्र है। अपने प्रवास काल में राक्षस ने अपना परिवार इसी के घर धरोहर के रूप में रख दिया था। यह राक्षस एवं उसके परिवार के प्रति अनन्य स्नेह रखता है। उसके जीवन का यह प्रेय और श्रेय उसकी व्यक्तिगत विशेषता के रूप में हमारे सामने आता है। राजनीतिक विप्लव के समय, अपना सर्वनाश के समय भी आपसी मित्रता का उसे ध्यान है।

राक्षस परिवार की ओर यदि किसी का ध्यान जाता है तो प्रयत्नपूर्वक वह अत्यन्त व्यवहार कुशलता के साथ उसकी रक्षा का मार्ग ढूँड निकालता है। चाणक्य के द्वार राक्षस के परिवार को मांगने पर तथा नहीं सौंपने पर प्राणदण्ड की धमकी देने पर कहता है—
“आर्य! किं मे भयं दर्शयसि सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि कि पुनरसंतम्”।।

चन्दनदास ने राक्षस के परिवार की रक्षा करके अपनी अनन्य मित्रता का परिचय दिया है। उसका आत्मत्याग इतना प्रबल है कि धन सम्पत्ति और परिवार की चिन्ता का त्याग करने के साथ ही उसने राक्षस के हितार्थ अपने प्राणों का भी मोह छोड़ दिया है। उसका आत्म-त्याग इतना प्रबल है कि चाणक्य को भी आश्चर्यचकित होना पड़ता है। इसके इस गुण की प्रशंसा चाणक्य और राक्षस एक साथ करते हैं—

सुलभेष्वर्यलाभेषु परसंवेदने जनः।

क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना।।

चन्दनदास सरलता, आदर्शवादिता, व्यावहारिकता, आत्मबलिदान, संवेदनशीलता तथा सदाचारिता का श्रेष्ठतम दृष्टान्त है। यह चरित्र इस नाटक का वह आदर्श है, जो मित्रता के नाम पर अपने व्यवहार और त्याग के प्रति सर्वाधिक सचेत है। उसे प्रसन्नता है, कि उसका विनाश वैयक्तिक दोष के कारण नहीं, बल्कि मित्र के कार्य से हो रहा है— “आर्य! अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण”। उसने अपने इस त्याग और विनाश के लिए पश्चात्ताप कभी नहीं किया। उसे तो कष्ट केवल इस बात के लिए है, कि सदैव चरित्र

शुद्धता की ओर ध्यान देने पर भी उसका विनाश चोरों की तरह हो रहा है। जात्या बणिक् होने के कारण चन्दनदास ने जो कुछ भी किया अपनी मित्रता और त्याग के तराजू पर तौलकर। चन्दनदास निःस्वार्थ, दृढप्रतिज्ञ, मित्रत्वविशारद एवं आदर्श चरितसम्पन्न है। वह राक्षस का मित्र, सहयोगी, सहायक एवं अनन्य हृदय है। उसकी कर्तव्य बुद्धि स्पष्ट है, आत्मविश्वास दृढ़ है तथा उसका कार्य अप्रमत्त है। सर्वतोभावेन चन्दनदास का चरित्र अनुकरणीय है।

1.10 मुद्राराक्षक नाटक के महत्त्वपूर्ण पद्यांश :-

श्लोक-1.1

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किं नु नामैतदस्या
नामेवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः।

नारी पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-
देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः॥

अन्वय- का इयम् धन्या ते शिरसि स्थिता? शशिकला। एतत् अस्या नाम नु किम्? अस्या नाम एव। तदेतत् ते परिचितमपि कस्य हेतोः विस्मृतम्। नारी पृच्छामि इन्दुं न, यदि इन्दुः प्रमाणं न, विजया कथयतु। इति देव्याः, सुरसरितम् निह्नोतुम् इच्छोः विभोः शाठ्यं वः अव्यात्।

शब्दार्थ- का = किं नामधेया, इयम् = दृष्टिगोचरीभूता, धन्या = श्राध्या, ते = तव, शिरसि = उत्तमाङ्गे, स्थिता = विद्यमाना, शशिकला = चन्द्रस्य भागविशेषः। एतत् = एषः, अस्याः = स्त्रियः, नाम = संज्ञा, नु = अव्यय, किम् = प्रश्नवाचकः, अस्याः = मन्मस्तकालङ्करणभूतायाः, नाम एव = संज्ञा एव, तदेतत् = एष, ते = तव, परिचितमपि = विदितमपि, कस्य हेतोः = केन हेतुना, विस्मृतम् = अपरिचितमिव, नारीम् = स्त्रियम्, पृच्छामि = ज्ञातुमिच्छामि, इन्दुम् = चन्द्रम्, न = नहि, यदि = यद्वा, इन्दुः = चन्द्रः, प्रमाणम् = विश्वासावहम्, न = नहि, विजया कथयतु = भवत्सखी विजयैव वदतु, इति देव्याः = पावीयाः, सुरसरितम् = गङ्गाम्, निह्नोतुम् = गोपायितुम्, इच्छोः = अभिलषितः, विभोः = व्यापकस्य, शाठ्यम् = चातुर्यम्, वः = युष्मान्, अव्यात् = पायात्।

श्लोकार्थ- (पार्वती) आपके सिर पर बैठी यह कौन भाग्यवती है? (शिव)- चन्द्रकला। (पार्वती)- क्या यही उसका नाम है? (शिव) नाम ही तो, और इससे तो तुम परिचित भी थी- पता नहीं इसे भुला कैसे गई? मैं इस चन्द्रमा को नहीं पूछती। उस औरत को पूछती हूँ। (शिव) औरत ! अगर तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं, तो तुम्हारी सखी विजया ही बोलें। इस प्रकार देवी पार्वती के सन्देहकटाक्षों से गङ्गा की रक्षा में आकुल भगवान् शङ्कर की चातुर्य तुम्हारी रक्षा करें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी परिचितम् = परि+चि+क्त (वर्तमानार्थक 'क्त' प्रत्यय), कस्य हेतोः = 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम्' की नियामकता से हेतोः में ष्ठी विभक्ती हुई है। निह्नोतुम् = निह्+तुमुन्, अव्यात् = अव्+लिङ्(आशिषि)+यात् से रक्षा के अर्थ में अव्यात् प्रयुक्त है। मुद्राक्षसम् = "मुद्रया गृहीतं राक्षसमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्"। यहाँ उक्त विग्रह में 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र से अण् प्रत्यय तथा 'यधढ्यगजण् वुञ् छाश्च' सूत्र से नपुसंकान्त कर 'मुद्राराक्षसम्' बना।

श्लोक-13

चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।

न शालेः स्तम्बकरिता वपुर्गुणमपेक्षते।।

अन्वय- बालिशस्यापि कृषिः सत्क्षेत्रपतिता चीयते। शालेः स्तम्बकरिता वपुः गुणं न अपेक्षते।

शब्दार्थ - बालिशस्यापि = अज्ञातकृषिवद्यस्य, कृषिः = कर्षणकर्म, सत्क्षेत्रपतिता = उकृष्टभूमौ प्रयुक्ता, चीयते = वर्धते, शालेः = धान्यस्य, स्तम्बकरिता = प्राचुर्यम्, वपुः = बीजरोपकस्य, गुणं = चातुर्यादिकम्, न = नहि अपेक्षते = इच्छति।

श्लोकार्थ- उर्वरा भूमि में कृषिकर्म में अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा बोये गये बीज मी लह-लहा उठता है। सघन बालियों में फूटकर निकलने वाला धान, बीज बोने वाले किसान की योग्यता की अपेक्षा नहीं रखता।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- चीयते = कर्मकर्त्ता में यहाँ लट् लकार का प्रयोग है। चीयते का अर्थ है अत्यन्त मात्रा में। बालिशस्य = 'वारि शेते' इस विग्रह में 'ड' प्रत्यय से 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (६-३-१४) इस सूत्र से सप्तमी का अतुक् 'र' और 'ल' की एकता से बालिश पद की सिद्धि हुई। 'बालिशश्च शिशौ मूर्खे' इस मेदिनी कोष के अनुसार बालिश का अर्थ हे मूर्ख। स्तम्बकरिता = 'स्तम्बं करोतीति' इस विग्रह में 'स्तम्बेतोः' सूत्र से इन् प्रत्यय करके स्तम्बकरि बना। इसके बाद भाव में तल् प्रत्यय का रूप 'स्तम्बकरिता' बना।

श्लोक-1.7

कौटिल्यः कुटिलमतिः स एष येन क्रोधाग्नौ प्रसभमदाहि नन्दवंशः।

चन्द्रस्य ग्रहणमिति श्रुतेः सनाम्नो मौर्येन्दोर्द्विषदभियोग इत्यवैति।।

अन्वय- येन क्रोधाग्नौ नन्दवंशः प्रसभमदाहि, स एष कुटिलमतिः कौटिल्यः चन्द्रस्य ग्रहणम् इति श्रुतेः, सनाम्नः, मौर्येन्दोः द्विषदभियोग इति अवैति।।

शब्दार्थ- येन = कृतसत्यप्रतिज्ञेन ब्राह्मणेन, क्रोधाग्नौ = कोपानले, नन्दवंशः = योगानन्दकूलम्, प्रसभम् = हठात्, अदादि = अग्निंसात् कृतः, सः एषः = नेपथ्यगतो जनः, कुटिलमतिः = क्रूरस्वभावः, कौटिल्य = चाणक्यः, चन्द्रस्य ग्रहणम् इति श्रुतेः = चन्द्रग्रहणशब्दश्रवणात्, सनाम्नः = तुल्याख्यस्य, मौर्येन्दोः = इन्दुतुल्यचन्द्रगुप्तस्य, द्विषदभियोगः = शत्रुणा आक्रमणम्, अवैति = जानाति।

श्लोकार्थ- हाँ, हाँ, वही कुटिलमति कौटिल्य, जिसने सम्पूर्ण नन्दवंश को बलात् अपनी क्रोध की ज्वाला में भस्म कर डाला, अभी 'चन्द्र के ग्रहण' सम्बन्धी मेरी बात सुनते ही नामसाम्य के कारण 'चन्द्रगुप्तमौर्य' पर शत्रु का आक्रमण समझकर बिगड़ उठा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- 'प्रसभम्' का कुछ लोग 'झटिति' भी अर्थ करते हैं, किन्तु व्युत्पत्ति के अनुसार 'प्रगता सभा विचारो यस्मिन् कर्मणि' यही होना चाहिए। अदाहि- 'दट्' धातु से लुङ् लकार 'त' प्रत्यय कर्म में अदाहि। मौर्येन्दोः - मुराया अपत्यं पुमान् मौर्यः- 'मुरा' शब्द से ण्यत् प्रत्यय करने से मौर्य बना, फिर 'मौर्यः इन्दुरिव' मौर्येन्दुः। राजा नन्द को मुरा नामक एक शूद्रा दासी थी, उसी से उत्पन्न होने के कारण चन्द्रगुप्त को मौर्य कहा जाता है। यह एक पौराणिक कथा है। सनाम्नः- समानम् नाम यस्य स सनामा तस्य, 'समानस्य छन्दसि' सूत्र से सिद्ध यह शब्द है। श्रुतेः- यहाँ 'हेतौ' से पञ्चमी विभक्ति हुई है। अवैति- अव+इ लट् लकार 'ति' प्रत्यय से 'अवैति'।

श्लोक-1.9

नन्दकुलकालभुजगीं कोपानलबहुलनीलधूमलताम्।

अद्यापि वध्यमानां वध्यः को नेच्छति शिखां मे॥

अन्वय- वध्यः कः नन्दकुलकालभुजङ्गी, कोपानलबहुलनीलधूमलताम्, मे शिखां अद्यापि वध्यमानां न इच्छति।

शब्दार्थ- वध्यः = हन्तुम् योग्यः, कः = जनः, नन्दकुलकालभुजङ्गीम् = नन्दान्वयस्य कालसर्पिणीम्, कोपानलबहुलनीलधूमलताम् = कोप एव अनलः कोपानलः = क्रोधवह्निः इव तस्य बहुला = अधिका, नीला = कृष्णवर्णा, धूमलता = धूमरेखाम्, मे = मम, शिखाम् = चूडाम्, अद्यापि = नन्दवंशध्वंसेऽपि, वध्यमानाम् = संयन्तुमारभ्यमाणाम्, नेच्छति = नाभिलष्यति।

श्लोकार्थ- और भी वह कौन मरना चाहता है। जो सम्पूर्ण नन्दवंश के लिए कालसर्पिणी बनी हुई मेरी क्रोधाग्नि से निकली काले धुएँ की रेखा की तरह अब तक बँध जाने वाली मेरी इस शिखा को अभी भी खुली देखना चाहता है?

व्याकरणात्मक टिप्पणी- वध्यः- वधमर्हतीति वध्यः 'अर्हे कृत्यतृतश्च' इस सूत्र में वध धातु से यत् प्रत्यय कर रूप बना। अथवा 'हन्तुम् योग्यः' इस अर्थ में 'हनो वा यद्वधश्च'

इस वार्तिक से 'हन्' धातु से यत् प्रत्यय करने के बाद वधादेश कर रूप सम्पन्न हुआ। नन्दकुलकालभुजङ्गीम्- नन्दस्य कुलम् 'नन्दकुलस्य कालभुजङ्गीम्' यहाँ नित्य समास हुआ तथा जात्यर्थक डीप् प्रत्यय है। कोप एव अनलः = कोपानलः अर्थात् कोपोऽनल इव तस्य बहुला अधिका नीला कृष्णा धूमलता तामिव इति = 'कोपानलबहुलनीलधूमताम्' यहाँ शिखा में कालभुजङ्गीत्व एवं धूमलतात्व के आरोप से तथा क्रोध में अनलत्व के आरोप से एवं शिखा में धूमलतात्व के आरोप से श्लिष्ट शब्द निबन्धनमालारूपपरम्परित रूपकालङ्कार है। यहाँ गौड़ी रीति है तथा आर्यावृत्त है।

श्लोक-1.10

उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं

कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः।

सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढः

कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम्॥

अन्वय- परात्मपरिमाणविवेकमूढः कः मम समुज्ज्वलतः नन्दकुलकाननधूमकेतोः कोपस्य प्रतापं शालभेन विधिना उल्लङ्घयन् सद्यः विनाशम् लभताम्।

शब्दार्थ- परस्य = शत्रोः, आत्मनः = स्वस्य, यत् परिमाणम् = मात्रा, विवेके = विविच्य ग्रहणे, मूढः = ज्ञानशून्यः, कः = जनः, मम = मामकीनस्य, समुज्ज्वलतः = दीप्तस्य, नन्दकुलकाननधूमकेतोः = नन्दवंशवनवह्नेः, कोपस्य = अमर्षस्य, प्रतापं = तेजः शालभेन विधिना = पतङ्गरीत्या, उल्लङ्घयन् = अतिक्रामन्, सद्यः = तत्क्षण एव, विनाशम् = क्षयम्, लभताम् = प्राप्नोतु।

श्लोकार्थ- वह कौन है ? जो अपनी और परायी शक्ति को सोचने में असमर्थ है, तथा नन्दवंश रूपी जंगल के लिए दावाग्नि बनी मेरी क्रोधाग्नि की अवहेलना करता हुआ पतङ्गों की तरह मरने को उद्यत है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- नन्दकुलकाननधूमकेतोः- नन्दस्य कुलम् नन्दकुलम्, षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ। तदेव काननं वनं तस्य धूमकेतुः वह्निः, यहाँ भी षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ। परात्मपरिमाणविवेकमूढः- परस्यशत्रोः आत्मनः स्वस्य यः परिमाणः उन्नत्यवनत्योरन्यतररूपस्तारतम्यरूपो वा तस्य विवेको तस्य विशिष्टज्ञानम् तत्र मूढः अर्थात् ज्ञानशून्यः यः जनः। शालभेन- शालभस्यायम् शालभः तेन शालभेन। यहाँ 'इदमर्थेऽण्' से अण् प्रत्यय करके रूप सम्पन्न हुआ है।

यहाँ नन्दकुल में काननत्वारोप हेतुभूत क्रोध में वहित्व के आरोप से श्लिष्ट शब्दनिबन्धन परम्परित रूपकालंकार है। साथ ही वद्धि में प्रविष्ट शलभ की तरह कोपरूपी अग्नि में प्रविष्ट होते हुए विनष्ट होगा यह बिम्बप्रतिबिम्बभाव बोध होने से निदर्शनालंकार है। फिर एक ही श्लोक में दोनों अलङ्कार की उपस्थिति रहने के कारण संसृष्टि नामक अलङ्कार हुआ। यहाँ भी गौड़ी रीति है। ओज गुण है तथा वीर रस है। इसमें वसन्ततिलका वृत्त है। इसका लक्षण है- “उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः”।

श्लोक-1.12

शोचन्तोऽवनतैर्नराधिपभयाद्धिक् शब्दगर्भैर्मुखै-

ममग्रासनतोऽवैष्टमवशं ये दृष्टवन्तः पुरा।

ते पश्यन्ति तथैव सम्प्रति जना नन्दं मया सान्वयम्

सिंहेनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात् सिंहासनात्पातितम्॥

अन्वय- पुरा ये नराधिपभयात् अवनतैः धिक्शब्दगर्भैः मुखैः शोचन्तः अवशम् माम् अग्रासनतः अवकृष्टं दृष्टवन्तः, सम्प्रति ते जनाः सिंहेन गजेन्द्रम् अद्रिशिखरादिव मया सान्वयम् नन्दम् सिंहासनात् तथैव पातितम् पश्यन्ति।

शब्दार्थ- अपि च = अन्यपि, पुरा = प्राक्काले, ये = जनाः, नराधिपभयात् = भोगानन्दत्रासात्, अवनतैः = नम्रीकृतैः, धिक्शब्दगर्भैः = धिङ् नृपतिमिति शब्दो गर्भेऽभ्यन्तरे येषाम् तैः तथोक्तैः, मुखैः = आननैः, शोचन्तः = शोकं कुर्वन्तः, अवशम् = प्रतिकर्तुमशक्तम्, माम् = चाणक्यम्, अग्रासनतः = प्रशस्तश्राद्धीय ब्राह्मणासनात्, अवकृष्टम् = दूरीकृतम्, दृष्टवन्तः = अवलोकितवन्तः, ते जनाः = लोकाः, सम्प्रति = अधुना, सिंहेन = मृगाधिपेन, गजेन्द्रं = गजराजम्, अद्रिशिखरादिव = पर्वतश्रृंगादिव, मया = चाणक्येन, सान्वयम् = पुत्रपौत्रादिसहितम्, नन्दम् = नृपम्, सिंहासनात् = नृपासनात्, तथैव = तेन प्रकारेण, पातितम् = भ्रंशितम्, पश्यन्ति = समवलोकन्ते, सः = पूर्वोक्तकार्यसम्पादकः अहम्, इदानीम् = साम्प्रतम्, अवसितप्रतिज्ञाभारोऽपि = समुत्तीर्णप्रतिश्रुति भारोऽपि, वृषलापेक्षया = चन्द्रगुप्तानुरोधेन, शस्त्रं = नीतिरूपम्, धारयामि = धारणम् करोमि।

श्लोकार्थ- और भी वे लोग जिन्होंने महाराज के लिए मुँह में आये ‘धिक्कार’ शब्द को भय के मारे मुँह में ही दवाए, कुछ सोचते हुए विवश स्थिति में मुझे प्रशस्तश्राद्धीय ब्राह्मण के आसन से हटाये जाते देखा, वे आज यह भी देखें- जैसे पहाड़ की चोटी से गजराज को धक्का देकर सिंह गिरा देता है, उसी प्रकार मेरे द्वारा सपरिवार नन्द सम्राट् को राजसिंहासन से कैसे नीचे गिरा दिया जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- नराधिपः नराणाम् अधिपः नराधिपः, यहाँ पछी तत्पुरुष समास है। इसमें 'पञ्चमी भयेन' से पञ्चमीविभक्ति हुई। इसी प्रकार धिक्शब्दगर्भैर्मुखैः = धिक् नृपतिमिति शब्दोगर्भोऽभ्यन्तरे येषाम् तैः तथोक्तैः मुखैः उपलक्षिताः- इत्यंभूतलक्षणे से यहाँ तुतीयाविभक्ति हुई। यहाँ उपमानभूत सिंह का उपमेयभूत अस्मद् शब्द के पतनरूप सामान्य धर्म का औपम्यवाचक इव शब्द के प्रतिपादन से श्रौतीपूर्णोपमा अलङ्कार है। इसमें वीररस, गौड़ी रीति, ओजगुण तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है। वृत्तरत्नाकर में इसका लक्षण है- "सूर्यश्वैर्मसजस्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"।

श्लोक-1.13

समुत्खाता नन्दा नव हृदयरोगा इवः भुवः

कृता मौर्ये लक्ष्मीः सरसि नलिनीव स्थिरपदाः।

द्वयोः सारं तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा

फलं कोपप्रीत्योद्विषति च विभक्तं सुहृदि च॥

अन्वय- (सोऽहम् शस्त्रं धारयामि येन मया) भुवः हृदयरोगाः इव नव नन्दाः समुत्खाताः सरसि नलिनीव मौर्यलक्ष्मीः स्थिरपदकृता कोपप्रीत्योः द्वयोः सारं द्वितयम् फलम् अभियुक्तेन मनसा द्विषति च सुहृदि च तुल्यम् विभक्तम्।

शब्दार्थ- येन मया = चाणक्येन, हृदयस्य = चित्तस्य, रोगाः = अन्तर्गता व्याधयः, इव = यथा, भुवः = पृथिव्याः, नवनन्दाः = सपुत्रपौत्राः, समुत्खाताः = समुन्मूलिताः, सरसि = कासारे, नलिनी = कमलिनी, इव = यथा, मौर्यलक्ष्मीः = चन्द्रगुप्ते राज्यश्रीः, स्थिरपदकृता = निश्चलस्थानसम्पादिता, कोपप्रीत्योः = अमर्षस्नेहयोः, द्वयोः = उभयोः, सारं = न्याय्यम्, द्वितयम् = द्विविधम्, फलम् = निग्रहाऽनुग्रहरूपपरिणामम्, द्विषति च सुहृदि = शत्रु च मित्रे च, तुल्यम् = समानम्, विभक्तम् = विभज्य उपस्थापितम्, अभियुक्तेन = आग्रहवता, मनसा = हृदयेन।

श्लोकार्थ- मैं वही हूँ, जिसने इस धरती से हृदय के रोगों की तरह नौ नन्दों को उखाड़ फेंका। मौर्य मैं राज्यलक्ष्मी को उसी तरह स्थिर कर दिया जैसे किसी सरोवर में कमलिनीबद्ध मूल हो, और मैं पूरे मनोयोग के साथ क्रोध का फल शत्रुओं के बीच एवं प्रेम का परिणाम मित्रों के बीच समान रूप से वितरित कर चुका हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- नवनन्दाः- नवनन्दा से तात्पर्य है, राजा नन्द और उनके आठ पुत्र। हृद्रोगाः- हृदयस्य रोगः हृद्रोगः 'वा शोकष्यञ्' रोगेषु से यह रूप सिद्ध है। द्वितयम्- द्वौ अवयवौ अस्य इति, द्वि+तयप् प्रत्यय लगाकर द्वितयम् रूप बना। तात्पर्य यह कि निग्रह एवं अनुग्रह रूप दो फल। इस श्लोक के प्रथम चरण में 'हृदयरोगा इव' में इव शब्द

के उपादान से नन्दों के हृद्रोग की संभावना से गुणोत्प्रेक्षालङ्कार है। इस प्रकार उपमानभूत नलिनी शब्द का, उपमेयभूत मौर्य शब्द का औपम्यवाचक श्व शब्द का, स्थिरपदत्वरूप सामान्य धर्म के अभिधान से श्रौतीपूर्णोपमा अलङ्कार है। तृतीय एवं चतुर्थ पाद के नन्दसमुन्मूलन से उसमें निग्रहात्मक कोप फल का मौर्यश्री के स्थिरीकरण के द्वारा उसमें अनुग्रहात्मकानुराग फल का क्रम से निर्देश होने के कारण यथासंख्य नाम अलङ्कार है। अतः इस श्लोक में इन सबों के सम्मिश्रण के कारण 'संसृष्टि' नामक अलङ्कार है। इसमें वैदर्भीरीति, ओजगुण तथा शिखरिणी छन्द है। शिखरिणी का लक्षण वृत्तरत्नाकर में इसप्रकार उल्लिखित है - "रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।"

श्लोक- 1.15

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः

प्रज्ञाविक्रमशालिनोपि हि भवेत्किं भक्तिहीनात्फलम्

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये

ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु चः।।

अन्वय- अप्राज्ञेन च कातरेण सानुरागेण कः गुणः स्यात्, प्रज्ञाविक्रमशालिनोपि भक्तिहीनात् किं फलम् भवेत्, येषां प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता गुणाः ते भृत्याः नृपतेः सम्पत्सु आपत्सु च भूतये इतरे कलत्रम्।

शब्दार्थ- अप्राज्ञेन = बुद्धिहीनेन, कातरेण = अपराक्रमिणा, सानुरागेण = भक्तियुक्तेन, भृत्येन = सेवकेन, कः गुणः = किं प्रयोजनम्, स्यात् = भवेत्, प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि = बुद्धिपराक्रम युक्तादपि, भक्तिहीनात् = पूज्यविषयकानुरागरहितात्, किम् फलम् = किम् प्रयोजनम्, भवेत् = स्यात्, येषाम् = भृत्यानाम्, प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिताः गुणाः = सकलाः गुणाः सन्ति, ते भृत्याः = ते सेवकाः, नृपतेः = राज्ञः, सम्पत्सु = अभ्युदयेषु, च = पुनः, आपत्सु = विपत्तिकालेषु, भूतये = कल्याणाय भवन्ति, इतरे = अन्ये, कलत्रम् = धनप्राप्तिकामनया वनिता।

श्लोकार्थ- बुद्धिहीन एवं कातर किन्तु स्वामिभक्त सेवक से क्या प्रयोजन? इसी प्रकार बुद्धिमान एवं शौर्यसम्पन्न किन्तु राज्यभक्ति से हीन सेवक से भी क्या प्रयोजन? असली सेवक तो वे हैं, जिनमें बुद्धि, विक्रम और भक्ति तीनों का समन्वय हो। वैसे तो वे सभी राजसेवक ही कहलाते हैं, जिनका भरण-पोषण अच्छे और बुरे दिनों में औरत की तरह राजा को ही करना पड़ता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अप्राज्ञेन = प्रकृष्टं जानातीति प्रज्ञः प्रपूर्वक ज्ञा धातु से 'प्रे दा ज्ञः' सूत्र से 'क' प्रत्यय का यह रूप है। प्रज्ञ एव प्राज्ञः, स्वार्थेऽण्, न प्राज्ञोऽप्राज्ञस्तेन

अप्राज्ञेन। प्रज्ञाविक्रमशालिनः = प्रज्ञा च विक्रमश्च प्रज्ञाविक्रमौ ताभ्यां शालन्ते इति प्रज्ञाविक्रमशालिनः 'सुप्यजातौ' इत्यादि सूत्र से 'णिनिः' प्रत्यय कर यह रूप बना। भूतये- भूतिम् कर्तुम् इस विग्रह में 'तादर्थ्ये चतुर्थी' से चतुर्थी विभक्ति हुई। उपरोक्त श्लोक में भी उपमेयभूत अनुरक्त बुद्धिहीन विक्रमशून्य की अपेक्षा वैसी भक्तिरहित बुद्धि पराक्रम की तरह कथन से 'व्यतिरेक' अलङ्कार है। वैदर्भी रीति, प्रसाद गुण तथा 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है। वृत्तरत्नाकर में इसका लक्षण है- "सूर्याश्वैर्मसजस्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।"

श्लोक- 2.7

पृथिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः

पति पापे मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती।

प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला

पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।

अन्वय- हे पापे! पृथिव्याम् प्रथितकुलजाः भूमिपतयः दग्धाः किं यत् स्वं कुलहीनम् मौर्यम् पतिम् वृतवती असि वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला पुरन्ध्रीणाम् प्रज्ञा प्रकृत्या पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।

शब्दार्थ- पापे = पापिनि, किमिति = प्रश्ने, पृथिव्याम् = भूमौ, प्रथितकुलजाः = प्रख्यातवंशोत्पन्नाः, भूमिपतयः = नृपतयः, दग्धाः = अग्नौ भस्मीभूताः, यत् = यस्मात् कारणात्, स्वम् = आत्मानम्, कुलहीनम् = नीच-कुलोत्पन्नम्, मौर्यम् = मुरापुरम्, पतिम् = बल्लभम्, वृतवती = स्वीकृतवती, वा = अथवा, काशप्रभवम् = काशतृणजातम् यत् कुसुमम् पुष्पम् तस्य प्रान्तः अग्रभागः तद्वत्, चपला = चञ्चला, पुरन्ध्रीणाम् = कामिनीनाम्, प्रज्ञा = बुद्धिः, प्रकृत्या = स्वभावेन, पुरुषाणाम् = आश्रयभूतानाम् जनानाम्, गुणाः = शौर्यादयः गुणाः, तेषां विज्ञाने = परिज्ञाने, विमुखी = वामा अर्थात् आग्रहशून्या पराङ्गमुखी भवतीति।

श्लोकार्थ- अरे पापिनि, क्या पृथ्वी पर प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न सभी राजे मर गये थे कि तुमने अकुलीन मौर्य को पति के रूप में वरण किया। अथवा (इसमें तुम्हारा क्या दोष) काशकुसुम के छोर के समान चंचल स्त्रियों की बुद्धि हो स्वभावतः पुरुषों के गुणों को पहचान में असमर्थ होती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- कुलहीनम् मुरा नामक शुद्रा दासी के गर्भ से चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ था, अतः उसका नाम 'मुरायाः उत्पन्नः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'मौर्य' हुआ। अतः वह राजा होते हुए भी अकुलीन है। पुरन्ध्रीणाम्- पुरम् गेहम् धारयतीति धरतीति वा पुरन्ध्री = सुन्दर स्त्री। पुर+धृ+णिच्+डीष्+विभक्ति कार्य। काशप्रभवः- काशः प्रभवत्यस्मात् इति, प्र+भू +अप् अपादाने प्रभवः। विमुखी- विवृत्तम् मुखम् अस्या इति विमुखी।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। भगवति कमलालये इत्यादि राक्षस के वितर्क प्रतिपादनरूप नामाङ्ग है। प्रकृत्येत्यादि परार्द्धक सामान्य से पृथिव्याम् इत्यादि पूर्वाद्धात्मक विशेष के समर्थन से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इसका लक्षण साहित्यदर्पण में- “सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि। कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते। “साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः।”

श्लोक- 2.17

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः

प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः

प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति।।

अन्वय- नीचैः विघ्नभयेन, न खलु प्रारभ्यते मध्याः प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्त उत्तमगुणाः, विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमानाः अपि प्रारब्धम् न परित्यजन्ति।

शब्दार्थ- नीचैः = अधमैः, विघ्न भयेन = अन्तरायभीत्या, न = नहि, खलु = निश्चयेन, प्रारभ्यते = आरभ्यते, मध्याः = मध्यमाः, प्रारभ्य = आरम्भम् कृत्वा, विघ्नविहताः = अन्तराय प्रताडिता, विरमन्ति = कार्यम् त्यजन्ति, उत्तमगुणाः = श्रेष्ठाः, विघ्नैः = अन्तरायैः, पुनः पुनः = मुहुर्मुहुः, प्रतिहन्यमानाः = प्रताडिताः सन्तोऽपि, प्रारब्धम् = आरम्भम्, न परित्यजन्ति = न त्यजन्ति।

श्लोकार्थ- नीचजन विघ्नों के भय से किसी भी कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते। प्रारम्भ करके विघ्नों के द्वारा प्रताडित होने पर मध्यम लोग रुक जाते हैं, किन्तु विघ्नों से बार-बार प्रताडित होते हुए भी आरम्भित कार्य को उत्तमजन नहीं छोड़ते।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- परित्याज्यम्- परि+त्यज्+ण्यत् कर्मणि परित्याज्य। विघ्नभयेन- वि+हन्+क करणे घञर्थे विघ्नः तस्मात् भयम्, ‘हेतौ’ से तृतीया विभक्ति। ‘विरमन्ति’ में परस्मैपद ‘व्याङ् परिभ्योरमः’ से हुआ है। इस श्लोक में पूर्णोपमालङ्कार है। कुछ लोग इसमें व्यतिरेक एवं कुछ लोग अप्रस्तुतप्रशंसा-अलङ्कार मानते हैं। इसमें वैदर्भी रीति, प्रसादगुण एवं वसन्ततिलका वृत्त है। लक्षण है:- “उक्तावसन्ततिलकातभजाजगौगः।”

श्लोक-2.18

किं शेषस्य भवत्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्

किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।

किं त्वङ्गी तमुत्सृजन्कृपणवत् श्लाघ्यो जनो लज्जते

निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतत् हि गोत्रव्रतम्।।

अन्वय- शेषस्य वपुषि किम् ? भवत्यथा न यत् एषः क्षमाम् न क्षिपति वा किम् ? दिनपतेः परिश्रमः न अस्ति, यतः निश्चलः न अस्ति, किन्तु श्लाघ्यः जनः अङ्गीकृतम् कृपणवत् उत्सृजन् लज्जते, हि निर्व्यूढम् एतत् सताम् गोत्र व्रतम्।

शब्दार्थ- शेषस्य = शेषनागस्य, वपुषि = शरीरे, भवत्यथा = भारपीडा, न = नहि, एषः = शेषनागः, क्षमाम् = पृथिवीम्, न = नहि, क्षिपति = पातयति, वा = अथवा, दिनपतेः = सूर्यस्य, परिश्रमः = श्रान्तिः, अस्ति = भवति, निश्चलः = स्थिरः, आस्ते = अस्ति, श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः, जनः = लोकः, अङ्गीकृतम् = स्वीकृतम्, कृपणवत् = दीनवत्, उत्सृजन् = परित्यजन्, लज्जते = त्रपामनुभवति, हि = यतः, निर्व्यूढम् = निर्वाहः, सताम् = सज्जनानाम्, गोत्रव्रतम् = कुलव्रतम्।

श्लोकार्थ- शेषनाग के शरीर पर क्या भार की पीड़ा नहीं है, जो इसे फेंक नहीं देता है, अथवा क्या सूर्य को परिश्रम नहीं होता, जो वह स्थिर नहीं होता? किन्तु प्रशंसनीय व्यक्ति स्वोंत की हुई वस्तु को कायर की तरह छोड़ता हुआ लज्जित नहीं होता, क्योंकि प्रारम्भित कार्यो का निर्वाह करना सज्जनों का कुलधर्म है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- उत्सृजन् - उद्+सृज्+शतृ+नुमादि कार्य से रूपसिद्धि। निर्व्यूढम्- निर्+वि+वह्+क्त (भावे) विभक्ति कार्य। श्लाघ्यः - श्लाघ्+ण्यत् (कर्मणि) विभक्ति आदिकार्य से रूपसिद्धि।

श्लोक-2.22

अक्षीणभक्तिः क्षीणेऽपि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन्।

पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः।।

अन्वय- नन्दे क्षीणे अपि अक्षीणभक्तिः स्वाम्यर्थम् उद्वहन् पृथिव्याम् स्वामिभक्तानाम् परमे प्रमाणे स्थितः।

शब्दार्थ- नन्दे = अस्माकम्, क्षीणे = सान्वयं विनष्टे, अक्षीणभक्तिः = अमन्दश्रद्धः, स्वाम्यर्थम् = प्रभोः प्रयोजनम्, उद्वहन् = धारयन्, पृथिव्याम् = भूतले, स्वामिभक्तानाम् = भर्तुः श्रद्धासमन्वितानाम्, परमे = उत्कृष्टे, प्रमाणे = दृष्टान्ते, स्थितः = वर्तमानः, उपसृत्य = समीपं गत्वा।

श्लोकार्थ- नन्द के विनष्ट हो जाने पर भी अमन्द भक्तिवाला, स्वामी के कार्य को धारण करता हुआ, पृथ्वी पर स्वामिभक्तों के अनुपम दृष्टान्त के रूप में स्थित है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- क्षीणः- क्षि+क्त दीर्घ विभक्त्यादि कार्य से सम्पन्न। उद्वहन्- उत्+वह्+शतृ प्रत्यय विभक्त्यादि से सम्पन्न रूप। स्थितः- स्था+क्त विभक्ति कार्य से सम्पन्न।

नन्दान्वयरूपी कारण के नहीं रहने पर भी राक्षस की भक्ति की अक्षीणतारूपी कार्योत्पत्ति के कारण इस श्लोक में विभावना अलङ्कार है। यथा- “विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।”

श्लोक-2.23

मौर्यस्तेजसि सर्वभूतभुजामाज्ञापको वर्तते

चाणक्योऽपि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः।

राज्यप्राप्तिकृतार्थमेकमपरं तीर्णप्रतिज्ञार्णवं

सौहार्दात् कृतकृत्यैव नियतं लब्धान्तरा भेत्स्यति॥

अन्वय- मौर्यः सर्वभूततनुजाम् आज्ञापकः तेजसि वर्तते, चाणक्यः अपि मदाश्रयात् अयं राजा अभूत् इति जातस्मयः, राज्यप्राप्तिकृतार्थं एकं तीर्णप्रतिज्ञार्णवं अपरं लब्धान्तरा कृतकृत्यता एव नियतं सौहार्दात्, भेत्स्यति।

शब्दार्थ- मौर्यः = चन्द्रगुप्तः, सर्वभूतलभुजाम् आज्ञापक = सकलभूपतीनाम् शासनकर्ता, तेजसि = प्रतापे, वर्तते = आस्ते, मदाश्रयात् = मम साहाय्यात्, अयम् = असौ, राजा = नृपः, अभूत् = जातः, इति जातस्मयः = सञ्जातगर्वः, राज्यप्राप्तिकृतार्थम् = राज्यलाभेन सफलम्, एकम् = चन्द्रगुप्तम्, तीर्णप्रतिज्ञार्णवम् = पूर्णप्रतिज्ञमिति, अपरम् = द्वितीयम्, लब्धान्तरा = प्राप्तावकाशः, कृतकृत्यता एव = चरितार्थता एव, नियतम् = अवश्यम्, सौहार्दात् = मित्रभावात्, भेत्स्यति = विघटयिष्यति।

श्लोकार्थ- चन्द्र सभी राजाओं को आशा देने वाला तेजस्वी है। चाणक्य भी- “मेरा आश्रय पाकर यह शासक हुआ है” ऐसा सोचकर गर्बीला बना है। एक राज्य मिल जाने से सफल, दूसरा प्रतिज्ञासागर को पार कर लेने से सन्तुष्ट अब दोनों ओर सफलता ही है, जो अवसर आने पर दोनों की मित्रता भङ्ग कर सकती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- इस श्लोक में यथासंख्य अलङ्कार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

श्लोक-3.3

सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेप्यचलता

चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुयो याऽस्य गुरुणा।

धुरं तामेवोच्चौर्नववयसि वोढुं व्यवसितो

मनस्वी दम्यत्वात् स्थलति च न दुःखं वहति च॥

अन्वय- विषमेषु अपि पथिषु अचलता धूर्येण अस्य गुरुणा सुविश्रब्धैः अङ्गैः गुरुः अपि या चिरं ऊढा तामेव उच्चैः भुवो धुरम् नववयसि बोद्धुम् व्यवसितः य एषः मनस्वी दम्यत्वात् दुःखम् वहति च, न स्वलति च।

शब्दार्थ- विषमेषु = जटिलेषु, पथिषु = मार्गेषु, पक्षे राज्य संचालनेषु, अचलता = धैर्यवत्ता, पक्षे भारोवहनकुशलेन, धूर्येण = राज्यभार संचालनकुशलेन, पक्षे धुरिसंयोजितेन, अस्य = चन्द्रगुप्तस्य, पक्षे वृषभस्य, गुरुणा = पित्रा नन्देन, पक्षे वयःश्रेष्ठेन, सुविश्रब्धैः = विश्वसनीयैः, पक्षे दृढैः, अङ्गैः = राज्यावयवैः अमात्यादिभिः, पक्षे अवयवैः, गुरुः = महती अपि, या = धूः, चिरम् = बहुकालम्, ऊढा = संचालिता, तामेव = पूर्वधृतामेव, उच्चैः = महतीम्, धुरम् = भारम्, नववयसि = नवीनावस्थाम्, बोद्धुम् = धारयितुम्, व्यवसितः = तत्परः, य = एष, मनस्वी = महोत्साह, पक्षे वलदर्पितः, दम्यत्वात् = अनतिप्रौढत्वात्, स्वलति = त्रुटिम् करोति, पक्षे भ्रश्यति, च = किन्तु, न = नहि, दुःखम् = क्लेशम्, वहति = प्राप्नोति।

श्लोकार्थ- कठिन कार्यपद्धतियों (पक्षान्तर में ऊंचेनीचे मार्गी) में विचलित न होते हुए भार वहन करने में समर्थ (पक्षान्तर में वृषभ) इस (चन्द्रगुप्त) के पिता ने विश्वासपात्र (पक्षान्तर में सुदृढ) मन्त्री आदि (पक्षान्तर में अवयवों) से जो पृथ्वी का महान् भार चिरकाल तक वहन किया, उसी महान् भार को नवीन अवस्था में वहन करने के लिए उद्यत मनस्वी (चन्द्रगुप्त) भार वहन करने में अनभ्यस्त होन के कारण क्लेश अनुभव करता है किन्तु गिरता नहीं है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अचलता = चल+शतृ = चलन्। न चलन् = अचलन्, तेन। धूर्येण = धुरि साधुता वहति वा इति, धुर+यत् = धुर्य, तेन। सुविश्रब्धैः = वि+श्रम्भ्+क्त कर्तरि = विश्रब्धा वा विम्रब्धा। अतिशयेन विश्रब्धा इति सुविश्रब्धा, तैः। व्यवसितः = वि+अव+सो+क्त कर्तरि। दम्यः = दम्य+यत् कर्मणि, तस्य भावः इति दम्यत्व, तस्मात् हेतौ पञ्चमी। इस श्लोक में समासोक्ति अलंकार तथा शिखरणी छन्द है। छन्द का लक्षण यया-“रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसलभाः गः शिखरिणी।”

श्लोक-3.4

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता

परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।

परार्थश्चेत् स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्

परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः॥

अन्वय- परार्थानुष्ठाने स्वार्थपरता नृपं रहयति। परित्यक्तस्वार्थः क्षितिपतिः नियतम् अयथार्थः। परार्थः स्वार्थात् अभिमततरः चेत् हन्त परवान्। परायत्तः पुरुषः प्रीतेः रस कथमिव वेत्ति।

शब्दार्थ- परार्थानुष्ठाने = परप्रयोजनसम्पादने, स्वार्थपरता = स्वप्रयोजनसाधनप्रवृत्तिः, नृपम् = राजानम्, रहयति = त्यजति, परित्यक्तस्वार्थः = परिहृतस्वसुखादिप्रयोजनम्, नियतम् = निश्चितम्, अयथार्थः = असत्यभूतः, क्षितिपतिः = भूपालः, परार्थः = परप्रयोजनम्, स्वार्थात् = स्वप्रयोजनात्, अभिमततरः = प्रियतरः, हन्त = हतवान्, परवान् = पराधीनः, परायत्तः = पराधीनः, पुरुषः = जनः, प्रीतेः = सुखस्य, रसम् = आनन्दम्, कथमिव = केन प्रकारेण, वेत्ति = जानाति।

श्लोकार्थ- राजा यदि परोपकार में ही दिन रात तत्पर रहे तो वह अपने स्वार्थ की पूर्ति से वञ्चित रह जायेगा और यदि वह स्वार्थ की भावना से रहित हो जाय तो वह भूमि का पति ही रह जाय और यदि मनुष्य पराक्रम की वृत्ति को सचमुच स्वार्थसाधना से श्रेयस्कर मान ले फिर तो वह सर्वथा पराधीन, पराश्रित हो गया और पराधीन को क्या मालूम जीवन में प्रेम नाम की कोई वस्तु है भी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- परार्थानुष्ठाने = परस्य अनुष्ठानं परानुष्ठानम्, तस्मिन् परानुष्ठाने, सप्तमीतत्पुरुष समास। अयथार्थः = न यथार्थः, नञ् तत्पुरुष समास। स्वार्थात् = स्वस्य अर्थ स्वार्थम्, तस्मात् स्वार्थात्, पञ्चमी तत्पुरुष समास। हन्तः = दुःख सूचक अव्यय। वेत्ति = विद्+क्विप्।

श्लोक-3.5

तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान् संतिष्ठते

मूर्खं द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।

शूरेभ्योऽप्यधिकं विभेत्युपहसत्येकान्तभीरून्हो

श्रीलब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम्॥

अन्वय- तीक्ष्णात् उद्विजते मृदौ परिभवत्रासात् न संतिष्ठते। मूर्खान् द्वेष्टि अत्यन्तविद्वत्सु अपि प्रणयितां न गच्छति। शूरेभ्यः अप्यधिकं विभेति। एकान्त भीरून् उपहसति। अहो! लब्धप्रसरा वेशवनिता इव श्रीः मृषां दुःखोपचर्या।

शब्दार्थ- तीक्ष्णात् = उग्रस्वभावात्, उद्विजते = उद्विग्ना भवति, मृदौ = कोमलस्वभावे राजनि, परिभवत्रासात् = अन्यकृतानादरभयात्, न = नहि, संतिष्ठते = स्थितिम् लभते, मूर्खान् = अज्ञान्, द्वेष्टि = दूरतः एव जहाति, अत्यन्तविद्वत्सु = भूरिविद्याशालिषु, प्रणयिताम् =

अनुरागभावम्, न गच्छति = न प्राप्नोति, शूरेभ्यः = वीरेभ्यः, अभ्यधिकम् = अत्यधिकम्, विभेति = भयं करोति, एकान्त भीरून् = अतिभयशीलान्, उपहसति = तिरस्करोति, अहो = आश्चर्यम्, लब्धप्रसरा = प्राप्तधृष्टता, वेशवनिता = वेश्या, इव = यथा, श्रीः = राज्यलक्ष्मीः, भृशम् = अत्यर्थम्, दुःखोपचर्या = कष्टसेव्या।

श्लोकार्थ- समाहित चित्त वाले राजाओं के लिए भी राजलक्ष्मी कष्ट से आराध्य है। क्योंकि लक्ष्मी उग्र स्वभाव वाले राजा से उद्विग्न होती है। कोमल स्वभाव वाले के पास तिरस्कार के भय से अच्छी तरह नहीं टिकती है। मूर्खों से द्वेष करती है। अति विद्वान् से भी प्रेमभाव नहीं करती है। अत्यन्त वीरों से भी घबड़ाती है। अधिक डरपोक का उपहास करती है। आश्चर्य है, अति धृष्टा वेश्या के समान राजलक्ष्मी कष्ट से प्रसन्न होनेवाली है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- दुराराध्या- आ+राध्+णिच् (स्वार्थे) ण्यत् कर्मणि, आराध्या - दुःखेन आराध्या। सन्तिष्ठते- सम्+स्था- 'समवप्रविभ्यः स्थः' से आत्मनेपद हुआ है। इस श्लोक में काव्यलिंग एवं उपमा अलङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

श्लोक-3.14

भेतव्यं नृपतेस्ततः सचिवतो राज्ञस्ततो वल्लभा

दन्येभ्यश्च वसन्ति येऽस्य भवने लब्धप्रसादा विटाः।

दैन्यादुन्मुखदर्शनापलपनैः पिण्डार्थमायस्यतः

सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः॥

अन्वय- नृपतेः भेतव्यम्, ततः सचिवतः, ततः राज्ञः, वल्लभात्, अन्येभ्यः च ये लब्धप्रसादाः विटा अस्य भवने वसन्ति। स्थाने कृतधियः दैन्यात् उन्मुखदर्शनापलपनैः पिण्डार्थम् आयस्यतः लाघवकारिणीं सेवां श्ववृत्तिम् विदुः।

शब्दार्थ- नृपतेः = राज्ञः, भेतव्यम् = शङ्कितव्यम्, ततः = तदनन्तरम्, सचिवतः = अमात्यात्, ततः = तदनन्तरम्, राज्ञः = नृपतेः, वल्लभात् = प्रियजनात्, अन्येभ्यः = एतद्व्यतिरिक्तेभ्यः, च = अपि, ये लब्धप्रसादाः = प्राप्तानुग्रहाः, विटाः = धूर्ताः, अस्य = राज्ञः, भवने = गृहे, वसन्ति = निवसन्ति, दैन्यात् = दीनभावात्, उन्मुखदर्शनापलपनैः = उन्मुखम् = उद्गतमुखं यस्मिन् तत्, दर्शनानि = अवलोकनानि, अपलपनानि = चाटुवचनानि, पिण्डार्थम् = ग्रासार्थम्, आयस्यतः = क्लेशं कुर्वतः, लाघवकारिणीम् = नीचत्वविधायिनीम्, सेवाम् = शुश्रूषाम्, कृतधियः = विद्वांसः, स्थाने = युक्तमेव, श्ववृत्तिम् = कुक्कुरस्य जीविकाम्, विदुः = कथयन्ति।

श्लोकार्थ- सर्वप्रथम राजा से डरना चाहिए, उसके बाद मन्त्री से, उसके बाद राजा के प्रियजनों से तदनन्तर दूसरे लोगों से भी जो धूर्त है, राजा के कृपापात्र है तथा राजभवन में निवास करते हैं। दीनतावश ऊपर मुख करके देखने तथा चाटुकारिताओं से उदरपूर्ति के लिए कष्ट उठाते हुए अनुचर को तुच्छ करने वाली सेवा को विद्वानों ने उचित ही कुत्ते की वृत्ति कहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- उन्मुखदर्शनापलपनैः = उद्गतं मुखं यस्मिन् तत् उन्मुखम्, उन्मुखं यथा स्यात् तथा दर्शनम्, तैः, तृतीया तत्पुरुष समास। अपलपनम् = अप्+आ+ल्युट् भावे।

श्लोक-3.16

स्तुवन्ति श्रान्तास्याः क्षितिपतिमभूतैरपि गुणेः

प्रवाचः कार्पण्याद्यदवितथवाचोऽपि पुरुषाः।

प्रभावमृष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा

निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः।।

अन्वय- अवितथवाचः अपि पुरुषाः यत् कार्पण्यात् प्रवाचः, श्रान्तास्याः अभूतैः अपि तद्गुणैः क्षितिपतिं स्तुवन्ति, सः खलु सकलः तृष्णायाः प्रभावः, इतरथा निरीहाणाम् ईशः तृणम् इव तिरस्कार विषयः स्यात्।

शब्दार्थ- अवितथवाचः = सत्यवचनशीलाः, पुरुषाः = जनाः यत् कार्पण्यात् = दैन्यात्, प्रवाचः = वाचालाः श्रान्तम् = श्रमयुक्तम्, आस्यम् = मुखम्, येषाम् = तादृशाः, अभूतैः = अविद्यमानैः, तद्गुणैः = भूपतिविशिष्टाभिः, क्षितिपतिम् = भूपतिम्, स्तुवन्ति = प्रशंसन्ति, खलु = निश्चितम्, सकलः = सम्पूर्णः, तृष्णायाः = धनलिप्सायाः, प्रभावः = महिमा, इतरथा = अन्यथा, निरीहाणाम् = धनतृष्णारहितानाम्, ईशः = राजा, तृणम् = शष्पम्, इव = यथा, तिरस्कारस्य = अनादरस्य, विषयः = पात्रम्, स्यात् = भवेत्।

श्लोकार्थ- अतः इसके द्वारा महाराज चन्द्रगुप्त को वृषल कहा जाना उचित ही है, क्योंकि जो इतना निःस्पृह है उसके लिए कोई भी राजा-महाराज तृण के समान है। अन्यत्र तो सर्वत्र तृष्णा का प्रभाव परिलक्षित होता ही है, क्योंकि बड़े-बड़े सत्यवादी और यशस्वी लोग मुँह की थकान तक का अनुभव नहीं करते प्रत्युत दीनतावश वाचाल बने हुए राजाओं की झूठी प्रशंसा के पुल बाँधते रहा करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- वृषलोद्यः- वृषल+वद् 'वदः सुषि क्यप् च' सूत्र से क्यप् प्रत्यय लगाकर बना सिद्ध रूप है। निःस्पृह होने के कारण चन्द्रगुप्त को चाणक्य वृषल अर्थात् मुरा नामक दासी गर्भ से उत्पन्न होने के नाते 'शूद्र' सम्बोधन करता है। अवितथवाचः - तथ या

तथा = सत्य, विभतं तथा अस्याः वितथा = असत्या, नवितथा = सत्य, तादृशी वाक् येषाम्, बहुव्रीहि समास। प्रभावः = प्रकृष्टो भावः प्रभावः, प्रादि तत्पुरुष समास, प्र+भू+घञ्। निरीहाणाम् = ईहायाः निष्क्रान्ता इति निरीहाः, तेषां निरीहाणाम्, षष्ठी तत्पुरुष समास। तिरस्कारः - तिरस्+घञ्। तिरस्कारविषयः- तिरस्कारस्य विषयः, षष्ठी तत्पुरुष समास।

श्लोक-4.7

सोत्सेधैः स्कन्धदेशैः खरतरकविकाकर्षणात्यर्थभुग्नै

रश्वाः कैश्चिनिरुद्धाः खमिव खुरपुटैः खण्डयन्तः पुरस्तात्।

केचिन्मातङ्गमुख्यैर्विहतजवतया मूकघण्टैर्निवृत्ता

मर्यादां भूमिपाला जलधय इव ते देव नोल्लङ्घयन्ति॥

अन्वय- कैश्चित् खुरपुटैः पुरस्तात् खं खण्डयन्तः इव अश्वाः खरतरकविकाकर्षणात्यर्थभुग्नैः स्कन्धदेशैः निरुद्धाः। केचित् विहतजवतया मूकघण्टैः मातङ्गमुख्यैः निवृत्ताः। देव! जलधय इव भूमिपालाः ते मर्यादां उल्लङ्घयन्ति।

शब्दार्थ- कैश्चित् = कतिपयैः नृपैः, खुरपुटैः = शफैः, पुरस्तात् = अग्रतः, खम् = आकाशम्, खण्डयन्तः = विदारयन्तः, इव = यथा, खरतराः = तीक्ष्णाः, या कविका = खलीना, तासाम् आकर्षणम् = संग्रहः, तेन अत्यर्थम् = पर्याप्तम्, भुग्नैः = वक्रैः, अत एव सोत्सेधैः = मध्यभागोन्नतैः, स्कन्धदेशैः = ग्रीवाप्रदेशैः, अश्वाः = वाजिनः, निरुद्धाः = अवरुद्धाः, केचित् = कतिपये राजानः, विहतजवतया = निरुद्धवेगहेतुना, मूकघण्टैः = निःशब्दघण्टैः, मातङ्गमुख्यैः = गजराजैः, निवृत्ताः = प्रतिगताः, देव = हे महाराज, जलधयः = सागराः, इव = यथा, भूमिपालाः = नृपाः, ते = तव, मर्यादाम् = आज्ञाम्, न = नहि, उलङ्घयन्ति = अतिक्रामन्ति।

श्लोकार्थ- हमारी ओर से अनुगमन करने वाले राजाओं से कहो कि मैं अकेला ही अमात्य राक्षस के पास सहसा उपस्थित होकर प्रीति को उत्पन्न करना चाहता हूँ। इसलिए पीछे-पीछे चलने का कष्ट करना व्यर्थ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सोत्सेधैः- उद्+सिध्+घञ् भावे उत्सेधः अर्थात् उन्नतः तेन सह सोत्सेधैः। स्कन्धदेशैः- स्कन्धः ग्रीवा तस्य देशाः, तैः स्कन्धदेशैः, तृतीया तत्पुरुष समास। निरुद्धाः- नि+रुध्+क्त कर्मणि। निवृत्ताः- नि+वृ+क्तः कर्तरि। पुरस्तात्- पूर्वस्मिन् देशे इति पूर्व+ङि+अस्ताति स्वार्थे अव्यय। मातङ्गमुख्याः- मातङ्गेषु मातङ्गानाम् वा मुख्याः, 'सुप्सुपा' से समास हुआ।

श्लोक-4.15

त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तारि नृपे नन्दानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि।

स्वाधीने मयिमार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे

त्वद्वाञ्छान्तरितानि संप्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि नः॥

अन्वय- विभो सम्प्रति उत्कृष्टबले नृपे त्वयि अभियोक्तारि पुरे नन्दानुरक्ते चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे राजनि मौर्ये नवे स्वाधीने मयि मार्गमात्रकथन व्यापारयोगोद्यमो नः साध्यानि त्वद्वाञ्छान्तरितानि तिष्ठन्ति।

शब्दार्थ- विभो = राजन्, सम्प्रति = अधुना, उत्कृष्टबले = उत्कृष्टानि बलानि यस्य स उत्कृष्टबलस्तस्मिन् उत्कृष्टबले = उत्तमसैन्ये, नृपे = राजनि सति, त्वयि = भवति, अभियोक्तारि = योद्धुमुद्यते सति, पुरे = कुसुमपुरे, नन्दानुरक्ते = नन्दस्नेहिनि सति, चाणक्ये = कौटिल्ये, चलिताधिकारविमुखे = चलितश्च असौ अधिकारः चलिताधिकारश्चलिताधिकारस्तस्माद्विमुखस्तस्मिन् चलिताधिकारविमुखे, सप्तमी तत्पुरुष समास। चलिताधिकारविमुखे = मन्त्रिपदच्युते सति, राजनि मौर्ये = नृपे चन्द्रगुप्ते, नवे = नूतने, स्वाधीने = स्वतन्त्रे, मयि = राक्षसे, नः = अस्माकम्, साध्यानि = कार्याणि, स्वद्वाञ्छान्तरितानि = त्वदिच्छामात्रान्तर्हितानि, तिष्ठन्ति = वर्तन्ते।

श्लोकार्थ- ओ! शक्तिशाली राजकुमार, आक्रमण के लिए आपकी तरह उत्कृष्ट, सेनाओं से युक्त नायक उपस्थित है। सारा कुसुमपुर आज भी नन्द का अनुरक्त है। अधिकारच्युत होने के कारण चाणक्य भी अब चन्द्रगुप्त से विमुख हो चुका है, चन्द्रगुप्त स्वयं अनुभवहीन है, और मैं भी किसी का दास नहीं हूँ (इतना आधा कहने पर स्वयं जैसे लज्जित होते हुए) और केवल मार्ग-निर्देशन ही जिसकी उपयोगिता रह गयी है, हमारे अभीप्सित कार्य की सिद्धि मात्र केवल आपकी इच्छा से ही रुकी है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सचिवायत्ततन्त्रः- सचिवे आयत्तम्, सुप्सुपा समास, तादृश तन्त्रम् अस्य बहुव्रीहि समास। अभियुञ्जानस्य- अनुसन्दधानस्य अन्विष्येत्यर्थः। अभियोक्तुः- अभिषेणयतः इत्यर्थः। ऐकान्तिकी- एकः अन्तः स्वरूपम् एकान्तः, तत्र भवा इति, एकान्त+ठन् अध्यात्मादित्वात्। स्वाधीने- अधिगतः इनः प्रभुः अनेन इति अधीनः। स्वस्य अधीनः स्वाधीनः। व्यापारयोगः- वि+आ+पृ+घञ् भावे व्यापारः, तस्य योगः। अन्तरितानि- अन्तरं सञ्जातमेषाम् इति, अन्तर+इतच् = अन्तरितानि। साध्यानि- सिध्+णिच्+यत् कर्मणि वा साध्+ण्यत् कर्मणि।

श्लोक-4.21

आविर्भूतानुरागाः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः

पर्णच्छायैः पुरस्तादुपवनतरवो दूरमाश्वेव गत्वा।

एते तस्मिन्निवृत्ताः पुनरपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे

प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः।।

अन्वय- क्षणम् आविर्भूतानुरागाः एते उपवनतरवः उदयगिरेः उज्जिहानस्य भानोः पुरस्तात् पर्णच्छायैः आशु एव दूरम् गत्वा पुनस्तस्मिन् अपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे निवृत्ताः प्रायः सेवमानाः भृत्याः प्रचलितविभवम् स्वामिनं त्यजन्ति।

शब्दार्थ- क्षणम् = मुहूर्तमात्रम्, आविर्भूतानुरागाः = आविर्भूतोऽनुरागो येषां ते, बहुव्रीहि समास। आविर्भूतानुरागाः = सञ्जातप्रीतयः, एते = इमे, उपवनतरवः = आरामवृक्षाः, उदयगिरेः = उदय पर्वतात्, उज्जिहानस्य = उद्गच्छतः, भानोः = सूर्यस्य, पुरस्तात् = समक्षम्, पर्णच्छायैः = पत्रच्छायारूपेण, आशु एव = शीघ्रमेव, दूरम् गत्वा = विप्रकृष्टं ब्रजित्वा, तस्मिन् = भानौ, निवृत्ताः = परावृत्ताः, प्रायः = बाहुल्येन, सेवमानाः = सेवां कुर्वन्तः, प्रचलितविभवम् = विनष्टैश्वर्यम्, स्वामिनम् = प्रभुम्, त्यजन्ति = विहाय अन्यत्र व्रजन्तीति।

श्लोकार्थ- जब सूर्य उदयाचल पर आरूढ़ थे, उस समय उपवन के वृक्षों में कितना क्षणिक अनुराग(रक्तिमा) था, सूर्य के स्वागत में इनके पत्तों की छायाएँ कितनी दूर तक आगे बढ़ आई थीं। वही सूर्य इस समय जब अस्ताचलोन्मुख हो गया, तो फिर वही उपवन की छायाएँ अब उससे कितनी दूर खिसक गई हैं। बहुधा सेवा करते हुए सेवक भी सम्पत्तिविहीन स्वामी को छोड़ ही देते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- संवाधतान् - सम्+वद्+णिच्+लोट्+ताम्+भावे। उज्जिहानस्य- उद्+ हा+शानच्+कर्तरि+षष्ठ्येकवचने विभक्तिकार्य। इस श्लोक के चतुर्थ पाद में प्रतिपाद्य सामान्य अर्थ के द्वारा अवशिष्ट पादत्रय में प्रतिपाद्य विशेषार्थ के समर्थन से यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष समर्थनात्मक अर्थान्तरन्यास अलंकार है। वही अर्थान्तरन्यास सूर्य के अस्ताचल शिखरावलम्बी होने पर उपवन तरुछाया की प्रतिनिवृत्ति 'इव' शब्द के उत्प्रेक्षण से 'इव' शब्द के अप्रयुक्त स्थिति में भी प्रतीयमान होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसमें स्रग्धरा छन्द एवं नियतापि प्रकरी रूप विमर्श सन्धि है।

श्लोक-5.4

कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुखः

शरीरं विक्रीय क्षणिकमपि लोभाद्धनवति।

तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना

विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।।

अन्वय- क्षणिकधनलोभात् कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुखः धनवति शरीरं विक्रीय तदा कुर्वाणः विचारातिक्रान्तः परतन्त्रः अधुना एतत् हितम् अहितम् इति किमिति विमृशति।

शब्दार्थ- क्षणिकधनलोभात् = अल्पकालिकवित्तप्राप्त्याशया, कुले = वंशे, लज्जायाम् = त्रपायाम्, च = पुनः स्वयशसि = आत्मकीर्त्ती, माने = प्रतिष्ठायाम्, विमुखः = विरक्तः, धनवति = वित्तशालिनि, शरीरम् = कायम्, विक्रीय = तदायत्तं कृत्वा, तदाज्ञाम् कुर्वाणः = तन्नियोगम् सम्पादयन्, विचारातिक्रान्तः = परित्यक्तसदसद्विवेकः, परतन्त्रः = अन्यायतः, अधुना = इदानीम्, एतद् = इदम्, हितम् = पथ्यम्, अहितम् = अपथ्यम्, इति = एतत्, किं = कथं, विमृशति = विचारयति।

श्लोकार्थ- नश्वर धन के लोभ से कुलीनता, लज्जा, कीर्त्ति, अपकीर्त्ति, मान और अपमान के प्रश्न से एकवार विमुख होकर किसी धनी के हाथ अपने आप को बेचकर और उसी का आदेश पालन करते हुए, एक परतन्त्र व्यक्ति के पास भला और बुरा का विचार करने के लिए अवकाश ही कहाँ रह जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- आस्थानम्- आ+स्था+ल्युट् भावे, आस्थानमण्डप- आस्थानस्य मण्डपः, षष्ठी तत्पुरुष समास। इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार, प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा शिखरिणी छन्द है।

श्लोक-5.8

मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।

नीतिर्नयत्यस्मृतपूर्ववृत्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः॥

अन्वय- नीतिः अर्थस्य वशात् मित्राणि शत्रुत्वं च शत्रून् मित्रत्वम् उपनयन्ती। जीवतः एव पुंसः अस्मृतपूर्ववृत्तं जन्मान्तरं नयति।

शब्दार्थ- नीतिः = नयः, अर्थस्य = प्रयोजनस्य, वशात् = अनुरोधात्, मित्राणि = सुहृदः, शत्रुत्वम् = रिपुत्वम्, च = पुनः, शत्रून् = विपक्षान्, मित्रत्वम् = बन्धुत्वम्, उपनयन्तीम् = प्रापयन्तीम्, जीवतः = मृत्युमनधिगतान्, पुंसः = जनान्, अस्मृतपूर्ववृत्तम् = अचिन्तितपूर्ववृत्तान्तम्, जन्मान्तरम् = अन्यज्जन्म नयति = प्रापयति।

श्लोकार्थ- यह स्वार्थ है, जो राजनीतिज्ञ में मित्रों के प्रति शत्रुता का और शत्रुओं के प्रति मित्रता का व्यवहार करा देता है। जीवितावस्था में ही व्यक्ति अपने अतीत को बिलकुल भुलाकर एक और ही जीवन जन्मान्तर की तरह व्यतीत करने लग जाता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अर्थशास्त्रव्यवहारिणाम्- अर्थशास्त्रेण व्यवहर्तुं शीलमेषाम् इति, षष्ठी तत्पुरुष समास। व्यवहर्तु- वि+अव+हृ+णिनि। अर्थवशात्- अर्थस्य प्रयोजनस्य वशम् आयत्तम्, तस्मात्, पञ्चमी तत्पुरुष समास। व्यवस्था- वि+अव+स्था+अङ् भावे। अरिमित्रोदासीनव्यवस्था- अरयश्च मित्राणि च उदासीनश्च इति, तेषां व्यवस्था, द्वन्द्व समास। इस श्लोक के पूर्वार्ध में नीति के द्वारा मित्रों में शत्रुता और शत्रुओं में मित्रता की प्राप्तिरूप असंभाव्यता एवं उत्तरार्ध में भी जीवितावस्था में ही जन्मान्तरत्व की प्राप्ति संघटन से विषमालङ्कार है। मित्रत्व एवं शत्रुत्व के अन्योन्य विरोध से जीवित पुरुष के जन्मान्तर के विरोध से विरोधालङ्कार की संभावना है। अतः सन्देहोदय के कारण इसे कुछ लोग संदेह-संकरालङ्कार मानते हैं। कुछ लोग- “मित्राणि शत्रुत्वमिवानयन्ती” पाठ के आधार पर उत्प्रेक्षा-अतिशयोक्ति की संसृष्टि मानते हैं तथा इसमें इन्द्रवज्रा छन्द है।

श्लोक-5.12

भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनं
ततः प्रत्यासन्नाद्भवति हृदये चैव निहितम्।
ततोऽध्यारूढानां पदमसुजनद्वेषजननं
गतिः सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति॥

अन्वय- सेवकजनं तावत् भयं सेव्यात् अभिनिविशते। ततः च प्रत्यासन्नात् हृदये निहितम् एव भवति। ततः अध्यारूढानाम् पदम् असुजनद्वेषजननं सोच्छ्रायाणां गतिः अनुकूल पतनं कलयति।

शब्दार्थ- सेवकजनम् = अनुचरम्, तावत् = प्रथमम्, भयम् = साध्यवसम्, सेव्यात् = स्वामिनः, अभिनिविशते = सर्वतः प्राप्नोति, ततः = तदनन्तरम्, च = पुनः, प्रत्यासन्नात् = राजनिकटवर्तिनो जनात्, हृदये = चित्ते, निहितम् = स्थिरम् एव भवति, ततः = तदनन्तरम्, अध्यारूढानाम् = उच्चपदप्राप्तानाम् भृत्यानाम्, पदम् = स्थानम्, असुजनद्वेषजननम् = दुर्जनक्रोधवर्धकम् भवति, सोच्छ्रायाणाम् = अत्युन्नतानाम् पुरुषाणाम्, गतिः = स्थितिः, अनुकूलम् = उचितम्, पतनम् = अधोगमनम्, कलयति = अवगच्छति।

श्लोकार्थ- सर्वप्रथम सेवक को अपने स्वामी से मय लगा रहता है, फिर निकट सम्बन्धियों से, पुनः उच्चपदस्थ व्यक्तियों का पद दुष्ट व्यक्तियों के द्वेष को उत्पन्न करता है। यही कारण है कि समुन्नत व्यक्तियों की अवस्था सदैव अपने पतन को ही सोचती रहती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अभिनिविशते- अभि+नि+विश्+ते, आत्मनेपद। पतनम्- पत्+ल्युट्। अनुकूलम्- कूलं अनुकृत्य, अव्ययीभाव समास। निहितम्- नि+धा+क्त। इस श्लोक में काव्यलिङ्ग एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार है तथा शिखरिणी छन्द है।

श्लोक-5.18

लेखोऽयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः

सौहार्द शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम्।

मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावये-

तस्मात्संप्रतिपत्तिरेव द्वि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम्॥

अन्वय- अयं लेखः मम न इति, इदम् न उत्तरम्, यतः मुद्रा मदीया शकटेन सौहार्द खण्डितम् इति एतत् कथं श्रद्धेयं नरपतौ मौर्ये भूषण-विक्रयम्, को नाम संभावयेत्, तस्मात् अन्न सम्प्रतिपत्तिः एव हि वरं ग्राम्यम्, उत्तरम् न।

शब्दार्थ- अयम् = एषः कूटप्रयोगाश्रयः, लेखः = पत्रम्, मम न = नैतत्पत्रम् मया लिखितमिति, इति = इत्थम्, इदम् = एतत्, न = अयुक्तम्, उत्तरम् = प्रतिवचनम्, यतः = यस्मात्, मुद्रा = लेखे प्रदत्ता अङ्गुलिमुद्रा, मदीया = मामकीना, शकटेन = शकटदासेन, सौहार्दम् = मित्रत्वम्, खण्डितम् = भग्नम्, एतत् = वचः, कथम् = केन प्रकारेण, श्रद्धेयम् = विश्वासयोग्यम्, नरपती = राज्ञि, मौर्ये = चन्द्रगुप्ते, भूषणविक्रयम् = अलङ्करणमूल्यग्रहणम्, कः = को जनः, संभावयेत् = विश्वसेत्, तस्मात् = अतः, अत्र = अस्मिन्विषये, सम्प्रतिपत्तिः = स्वीकरणमेव, एव = इति निश्चये, हि = यतः, वरम् = श्रेष्ठम्, ग्राम्यम् = अयुक्तम्, उत्तरम् = आलापः, न = न वरम्।

श्लोकार्थ- यह लेख मेरा नहीं है, यह उत्तर बन नहीं पाता क्योंकि इस पर मुद्रा मेरी है। शकटदास ने मित्रता तोड़ दी है, यह कैसे विश्वास के योग्य हो सकता है? राजा चन्द्रगुप्त के विषय में आभूषणों का बेचना कौन संभावना कर सकता है। अतः इस विषय में अयुक्त उत्तर की अपेक्षा स्वीकार कर लेना ही श्रेष्ठ है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- शास्त्रों में उत्तर चार प्रकार के माने गये हैं। (१) मिथ्या उत्तर (२) प्रत्यवस्कन्दन (३) सम्प्रतिपत्ति एवं (४) प्राङ्मया। यहाँ राक्षस ने मलयकेतु द्वारा पूछे गये प्रश्नों के विषय में विधिसम्मत विचार कर शसम्प्रतिपत्ति उत्तर का ही सहारा लिया है। सम्प्रतिपत्ति का लक्षण है- “श्रुत्वाभियोगं प्रत्यर्थी यदिदं प्रतिपद्यते। सा तु सम्प्रतिपत्तिः स्यात् शास्त्रवद्भिरुदाहृता”॥ इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार, शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा प्रसाद गुण एवं वैदर्भी रीति है।

श्लोक-6.5

उच्छिन्नाश्रयकातरेव कुलटा गोत्रान्तरे श्रीर्गता

तामेवानुगता गतानुगतिकास्त्यक्तानुरागाः प्रजाः।

आप्तैरप्यनवाप्तपौरुषफलैः कार्यस्य धूरुज्जिता

किं कुर्वन्त्वथवोत्तमाङ्गरहितैरङ्गैरिव स्थीयते॥

अन्वय- श्रीः उच्छिन्नाश्रयकातरा कुलटा इव गोत्रान्तरे गता गतानुगतिकाः व्यक्तानुरागाः प्रजा तामेव अनुगताः अनवाप्तपौरुषफलैः आप्तैः अपि कार्यस्य धूः उज्झिता अथवा किं कुर्वन्तु उत्तमाङ्गरहितैः अङ्गैः इव स्थीयते।

शब्दार्थ- श्रीः = राजलक्ष्मीः, उच्छिन्नाश्रयकातराः = विनष्टाऽवलम्बन व्याकुला, कुलटा इव = पुंश्चलीव, गोत्रान्तरे = अन्य कुले, गता = समाश्रिता, गतानुगतिकाः = पूर्वप्रस्थितानुसरणशीलाः, त्यक्ताऽनुरागाः = परिहृत स्वामिस्नेहाः, प्रजाः = प्रकृतयः, आप्तैरपि = विश्वस्तैरपि, कार्यस्य = अभीप्सितकृत्यस्य, धूः = भारः, उज्झिताः = त्यक्ताः, अथवा = वा, उत्तमाङ्गरहितैः = शीर्षविरहितैः, अङ्गैरिव = शरीरैरिव, स्थीयते = वर्तते।

श्लोकार्थ- राज्यश्री आश्रयविहीन होकर, दुखी वेश्या की तरह, अन्य कुल में चली गयी, अन्धानुकरण करनेवाली प्रजाएँ भी अनुराग शिमिल हो जाने के कारण उसी के पीछे-पीछे चली गयीं। और जो इमारे विश्वस्त व्यक्ति थे, उन्हें भी अब अपने पौरुष का पुरष्कार मिलता दृष्टिगत नहीं हुआ, वे भी कार्यभार छोड़ बैठे। अथवा वे भी क्या करते? शरीर से शीर्ष यदि पृथक् हो जाय तो शेष शरीर क्या कर सकता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- उच्छिन्ना- उद्+सद्+क्त कर्तरि। कुलटा- अटति परित्यज्य गच्छतीति अटा, कुलस्य अटा कुलटा, षष्ठी तत्पुरुष समास। गतानुगतिक- गतानुगत+ठन्+इक मत्वर्थे। गतानुगतिकाः- गतानामनुगतिर्वासा ताः गतानुगतिकाः, तत्पुरुष समास। उच्छिन्नाश्रयकातराः- उच्छिन्नः विनष्टः आश्रयोऽवलम्बनम् यस्या सा उच्छिन्नाश्रय सा चासौ कातरा उच्छिन्नाश्रयकातराः, कर्मधाराय समास। त्यक्तानुरागाः- त्यक्तोऽनुरागो याभि स्तास्त्यक्ताऽनुरागाः, बहुव्रीहि समास। प्रथम चरण में 'कुलटा इव' में स्थित 'इव' के कारण पूर्वोपमा अलङ्कार है। द्वितीय ओर तृतीयचरण में स्थित त्याग किया का गतानुगतिकत्व एवं अनवाप्त पौरुष फलत्व का कार्यकारणसम्बन्ध रहने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। इसी प्रकार चतुर्थचरण में श्लेष के कारण कुल मिलाकर संसृष्टि अलङ्कार है। इस श्लोक में शार्दूलविकीर्ण छन्द है।

श्लोक-6.6

पतित्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चौरभिजनं

गता छिद्रेण श्रीवृषलमविनीतेव वृषली।

स्थिरीभूता चास्मिन् किमिह करवाम स्थिरमपि

प्रयत्नं नो येषां विफलयति देवं द्विषदिव।।

अन्वय- श्रीः उच्चैः अभिजनं भुवनपतिं पतिं देवं त्यक्त्वा अविनीता वृषली इव छिद्रेण वृषलं गता अस्मिन् च स्थिरीभूता इह किं करवाम येषां न स्थिरमपि प्रयत्न द्विषदिव देवं विफलयति।

शब्दार्थ- श्रीः = राज्यलक्ष्मीः उच्चैः = उन्नतः अभिजनम् = वंशम्, भुवनपतिम् = क्षितीशम्, पतिम् = स्वामिनम्, त्यक्त्वा = परित्यज्य, देवम् = नन्दम्, अविनीता = दुश्चरित्रा, वृषली = शूद्री, इव = यथा, छिद्रेण = छलेन, वृषलम् = शूद्रम् गता = समाश्रिता, च = पुनः, अस्मिन् = वृषले, स्थिरीभूत्वा = अचलासंवृता, इह = अस्मिन् विषये, किं करवावः = विदधाम वयमिति, येषाम् = अस्माकम्, स्थिरमपि = दृढमपि, प्रयत्नम् = उद्योगम्, देवम् = भाग्यम्, द्विषदिव = शत्रुमिव, विफलयति = विनाशयति।

श्लोकार्थ- राज्यलक्ष्मी, अभिजात वंश में उत्पन्न पृथ्वीपति राजा नन्द अपने पति को छल से छोड़कर शूद्री की तरह शूद्र (वृषल) के पास पहुँच कर स्थिर हो गयी। इस विषय में हम भी क्या करें? हमारे दृढ़ प्रयास को भी भाग्य शत्रु की तरह विफल कर देता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- उच्चैरभिजनम्- अभिजायते अस्मिन् इति अभिजन, उच्चौ अभिजनो यस्य स, तम्, बहुव्रीहि समास। अभि+जन्+क घञर्थे। विफल्यति- विफलं करोति इति, विफल+णिच्+लट्-तिप्। भुवनपतिम्- भुवनस्य पतिः भुवनपतिस्तम्, तत्पुरुष समास। इस इलोक में एक ही राज्यलक्ष्मीरूप कर्ता के आश्रित त्याग एवं स्थिरीमवन प्रभृति अनेक क्रियाओं के होने से दीपक अलङ्कार है। अविनीता इव, में 'इव' शब्द के प्रयोग से पूर्णोपमा अलङ्कार है। राज्यलक्ष्मी की चंचलता में भी स्थिरता का वर्णन रहने के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार है। इस श्लोक में दीपक, उपमा तथा अतिशयोक्ति अलंकार का संकर है।

श्लोक-6.8

यो नष्टानपि बीजनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिन-

स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संधास्यते राक्षसः।

एतावद्धि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितं

दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।।

अन्वय- य अधुना अपि बीजनाशं नष्टान् स्वामिनः शुश्रूषते असौ राक्षसः अक्षतः तेषां वैरिभिः कथम् सन्धास्यते। एतावत् हि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन न आलोचितं अथवा देवेन उपहतस्य सर्वा बुद्धिः विपर्यस्यति।

शब्दार्थ- यः = राक्षसः, अधुना = सम्प्रति, बीजनाशम् = समूलनष्टम्, नष्टान् = मृतान्, स्वामिनः = नन्दान्, शुश्रूषते = सेवते, असौ = एषः राक्षसः, अक्षतः = अभिन्नशरीरः सन्, तेषाम् = स्वामिनाम्, वैरिभिः = शत्रुभिः, संधास्यते = सन्धिम् करिष्यति, एतावत् = इत्थम्, हि = निश्चये, विवेकशून्यमनसा = सदसद्विचारशून्यबुद्धिना, न = नहि, आलोचितम् =

विचारितम्, अथवा = वा, दैवेन = भाग्येन, उपहतस्य = पराभूतस्य, बुद्धिः = मतिः, विपर्यस्यति = विपरीता भवति।।

श्लोकार्थ- आजतक समूल नष्ट अपने स्वामियों को भी सेवा करता आ रहा है, वही राक्षस स्वस्थ रहते हुए किसी भी स्थिति में उनके शत्रुओं के साथ क्या समझौता कर सकता है? विमूढ म्लेच्छ ने इतना तक भी न विचारा संभवतः, जब भाग्य साथ छोड़ देता है, व्यक्ति की बुद्धि भी साथ छोड़ देती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- जीवनाशम्- जीव+नश्+णमुल्। शुश्रूषते- अत्र 'ज्ञाश्रुस्मृद्शां सनः' इत्यनेन आत्मनेपदम्। विपर्यस्यति- वि+परि+अस्+लट्+तिप्। इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार और शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

श्लोक- 6.12

क्षताङ्गानां तीक्ष्णैः परशुभिरुदग्रैः क्षितिरुहां

रुजा कूजन्तीनामविरतकपोतोपरुदितैः।

स्वनिर्मोकच्छेदैः परिचितपरिकलेशोपया

श्वसन्तः शाखानां व्रणमिव निबध्नन्ति फणिनः।।

अन्वय- तीक्ष्णैः उदग्रैः परशुभिः क्षताङ्गानां, क्षितिरुहां रुजा अविरत कपोतोपरुदितैः कूजन्तीनां शाखानां व्रणं फणिनः परिचितपरिकलेशोपया श्वसन्तः स्वनिर्मोकच्छेदैः निबध्नन्ति इव।

शब्दार्थ- अपि च = अन्यदपि, तीक्ष्णैः = निशितैः, उदग्रैः = उन्नताग्रभागैः, परशुभिः = कुठारैः, क्षताङ्गानाम् = छिन्नावयवानाम्, क्षितिरुहाम् = तरुणाम्, रुजा = पीडया, कूजन्तीनाम् = शब्दं कुर्वन्तीनाम्, शाखानाम् = विटपानाम्, व्रणम् = क्षतम्, फणिनः = सर्पाः, परिचितानाम् = सहवासिनाम्, परिकलेशः = परिचित परिकलेशः, या कृपा = दया, परिचित परिकलेशकृपया = सहवासिदुःखदर्शनजन्यानुकम्पया, श्वसन्तः = दीर्घनिःश्वासम् त्यजन्तः, स्वनिर्मोकच्छेदैः = आत्मानं ये कञ्चुकरूपवस्त्राणि तेषां छेदैः खण्डैः, निबध्नन्ति = वेष्टयन्ति, इव = यथ।

श्लोकार्थ- और भी तीक्ष्ण धारवाले कठोर कुठारों से क्षत-विक्षत बने शरीरवाले पेड़ों की पीड़ा से अनवरत कबूतरों के करुण कूजन के माध्यम से विलाप करती हुई शाखाओं के घाव को इनके कोटराश्रित सर्प मानो पुराने परिचय के कारण इनकी यह व्यथा सह्य न करते हुए फूंक मारकर, अपनी केचुलों के टुकड़ों से मरहम पट्टी कर रहे हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- उदग्रक्लभृताः- उदग्र कठोर यः क्लमः क्लान्तिः तं बिभ्रति याः तादृशीनाम्, बहुव्रीहि समास। परशुभिः- परान् अन्यान् शृणन्ति हिंसन्ति इति परशवः, तैः-

तत्पुरुष समास। रुजा- रुज्+क्विप् भावे। स्वनिर्मोक्छेदैः- स्वेषां निर्मोकाः स्वनिर्मोकाः, तेषां छेदाः, तैः, तत्पुरुष समास। इस श्लोक में उपमा एवं काव्यलिङ्ग अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

श्लोक-6.17

पितृन् पुत्राः पुत्रान् परवदभिहिंसन्ति पितरो

यदर्थं सौहार्दं सुहृदि च विमुञ्चन्ति सुहृदः।

प्रियं मोक्तुं तद्यो व्यसनमिव सद्यो व्यवसितः

कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिक्त्वेऽपि वणिजः॥

अन्वय- यदर्थम् पुत्राः पितृन्, पितरः पुत्रान् परवत् अभिहिंसन्ति, सुहृदः सौहार्दं च विमुञ्चन्ति, तत् प्रियं यः व्यसनमिव सद्यः मोक्तुम् व्यवसितम्, सः अयम् अर्थः वणिजः, तव वणिक्त्वे सति अपि कृतार्थः॥

शब्दार्थ- यदर्थम् = यस्मै अर्थाय, पुत्राः = सुताः, पितृन् = जनकान्, पितरः = जनकाः, पुत्रान् = सुतान्, परवत् = शत्रुवत्, अभिहिंसन्ति = घ्नन्ति, सुहृदः = मित्राणि, सुहृदि = मित्रे, सौहार्दम् = अनुरागम्, च = पुनः, विमुञ्चन्ति स्वजन्ति, तत् प्रियम् = प्राणादपीष्टम्, यः = विष्णुदासः, व्यसनमिव = दुःख मिव, सद्यः = तत्क्षणम्, मोक्तुम् = व्यक्तम्, व्यवसितः = समुद्यतः, सोऽयमर्थः तदेतद्धनम्, वणिजः = वाणिज्यातीयस्य, तव = भवतः, व मोक्तुम् वणिक्त्वे = वणिज्यातीयनैसर्गिककार्पण्यराहित्ये, सत्यपि कृतार्थः = सफलो जात इति शेषः॥

श्लोकार्थ- जिस धन के लिये पुत्र पिता के और पिता पुत्र के शत्रु की तरह प्राण हर लेते हैं और जिसके लिये मित्र अपनी मित्रता तक त्याग देते हैं। उसी सम्पत्ति को तुमने आज अपने एक मित्र को बचाने के लिये पाप की तरह फेंक दिया। वही यह धन तुम्हारी आज वैश्यवृत्ति का उद्धार कर तुम्हें सफल बना दिया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सौहार्दम्- सुहृदो भाव इति, सुहृत्+अण्। इस श्लोक में उपमा एवं काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है।

श्लोक-7.5

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षता

नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः।

बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना

पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतः शत्रुत्वमेषोऽस्मि सः॥

अन्वय- असज्जनरुचौ दुष्काले कलौ अपि प्राणः परं रक्षता येन यशस्विना औशीनरीयं यशः अतिलघुताम् नीतं विद्युद्धात्मना सुचरितः बुद्धानामपि चेष्टितं क्लिष्टं पूजार्हं अपि सः यत्कृते तव शत्रुत्वम् गतः, स एषः अहम् अस्मि।

शब्दार्थ- असज्जनरुचौ = दुर्जनानुरागे, दुष्काले = पापिन्यपि, कलौ = कलियुगे, प्राणः = असुभिः, परम् = अन्यम्, रक्षता = पालयता, येन = चन्दनदासेन, यशस्विना = कीर्तिशालिना, औशीनरीयम् = शिविनृपतिगतम्, यशः = कीर्तिः, अतिलघुताम् = अत्यन्तानादरास्पदताम्, नीतम् = प्रापितम्, विशुद्धात्मना = पवित्रहृदयेन सुचरितैः = साधुचरित्रैः, बुद्धानामपि = तुगतानामपि, चेष्टितम् = व्यापारः, क्लिष्टम् = तिरस्कृतम्, पूजार्हः अपि = अर्च्योऽपि, सः = असौ, यत्कृते = यस्य कृते, तव = भवतः, शत्रुत्वम् = रिपुत्वम्, गतः = नीतः, सः = असौ, एषः = अहमस्मि।

श्लोकार्थ- यह कि मैं वह राक्षस आ गया हूँ, जिसके लिये वे पूजा के योग्य, दुष्टों के मनोभिलषित पापमय इस घोर कलिकाल में भी अपने प्राणों से दूसरों के प्राण बचानेवाले, अपने शरणागत की रक्षाजन्य सुकीर्ति से महाशरण्य महाराज शिवि की भी कीर्ति को नीचा दिखा देनेवाले और अपने विशुद्धाचरण के बल पर भगवान बुद्ध के भी सत्कर्मों से बढ़े चढ़े सत्कर्म करनेवाले ये महात्मा चन्दनदास मारे जा रहे थे।।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- स्वार्थप्रधान- स्वस्य अर्थ स्वार्थः, स प्रधान मुख्य यस्मिन् स स्वार्थप्रधानः, बहुब्रीहि समास। असज्जनरुचौ- असज्जनानाम् रुचिर्यस्मिन् सोऽसज्जनरुचिस्तस्मिन्, बहुब्रीहि समास। औशीनरीयम्- औशीन+छ(ईय), उशीनरस्य देशस्यायम् अधिपतिः औशीनरः तस्येदमौशीनरीयम्। विशुद्ध आत्मा यस्य स विशुद्धात्मा तेन विशुद्धात्मना, बहुब्रीहि समास इस श्लोक में एक ही यत् शब्दवाच्य का चन्दनदासरूप कर्तृकारक का मी क्लिश् गम् धातुवाच्य क्रियाओं में सम्बन्ध रहने के कारण दीपक अलङ्कार है। फिर शिवि और बुद्ध दोनों की अपेक्षा आधिक्यकथन के कारण व्यतिरेक अहंकार है। पूजा के योग्य व्यक्ति का बधयोग्य व्यक्तित्व में परिवर्तन से परिवृत्ति अलंकार है। इन तीनों के सम्मिश्रण से संकर अलंकार है। शार्दूलविक्रीडित छन्द भी है।

श्लोक-7.11

विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।

स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।।

अन्वय- स्वपतः अपि मम इव यस्य तन्त्रे कार्यजागरूकाः गुरवः जाग्रति विगुणों तकार्मुकः अपि असौ भुवि जेतव्यम् जेतुं समर्थः एव।

शब्दार्थ- स्वपतोऽपि = शयानस्यापि, यस्य तन्त्रे = राष्ट्रचिन्तने, कार्यजागरूकाः = कर्तव्यकर्मसावधानाः, गुरुवः = मन्त्रिप्रधानाः, जाग्रति = सततम् प्रयत्नम् कुर्वन्ति, विगुणौ तकार्मुकः = मौर्वीहीनशरासनोऽपि सन्, असौ भुवि = पृथिव्याम्, जेतव्यम् = जेतुं योग्यम् शत्रुम् इत्यर्थः, जेतुम् = पराभवितुम्, समर्थः एव = शक्तः एव।

श्लोकार्थ- मेरी तरह जिस राजा के राज्य में राज्य संचालन में सतत सावधान गुरुजन निरन्तर जगरूक रहते हैं। वह राजा प्रत्यञ्चा रहित धनुष वाला होता हुआ भी संसार में जीतने योग्य शत्रु को जीतने में समर्थ ही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीदृ विगुणीकृतम्- विगुण+च्वि, ईत्व- कृ+क्त, विगुणीकृतं कार्मुकम् येन यस्य वा स विगुणीकृतकार्मुकः, बहुव्रीहि समास। इस श्लोक में उपमा अलङ्कार और विभावना अलंकार का अङ्गाङ्गिभाव साङ्कर्य है तथा मालभारिणी छन्द है। छन्द का लक्षण इस प्रकार है- विषमे ससजा गुरुःसमे चेत्भरा येन तु मालभारिणीयम्।

श्लोक-7.16

नन्दस्नेहगुणाः स्पृशन्ति हृदयं भृत्योऽस्मि तद्विद्विषां

ये सिक्ताः स्वयमेव वृद्धिमगमंश्छिन्नास्त एव द्रुमाः।

शस्त्रं मित्रशरीररक्षणकृते व्यापारणीयं मया

कार्याणां गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वं चिरात्॥

अन्वय- नन्दस्नेहगुणाः हृदयं स्पृशन्ति, तद्विद्विषां भृत्यः अस्मि, ये द्रुमाः स्वयं एव सिक्ताः वृद्धिं अगमन्, ते छिन्नाः एव मित्रशरीररक्षणकृते मया शस्त्रं व्यापारणीयम्, कार्याणां गतयः चिरात् विधेः अपि आज्ञाकरत्वम् न यान्ति।

शब्दार्थ- नन्दस्नेहगुणाः = नन्दानुरागगुणाः, इदयम् = चित्तम्, स्पृशन्ति = सम्बध्नुन्ति, तद्विद्विषाम् = नन्दशत्रुणाम्, भृत्योऽस्मि = सेवकत्वं प्राप्तोऽस्मि, ये द्रुमाः = तरवः, स्वयमेव = आत्मनैव, सिक्ताः = जलेन सिक्ताः, ते = द्रुमाः, छिन्नाः = विनष्टाः, मित्रशरीररक्षणकृते = चन्दनदासरक्षणाय, मया = राक्षसेन, शस्त्रम् = आयुधम्, व्यापारणीयम् = ग्राह्यम्, कार्याणाम् = कृत्यानाम्, गतयः = प्रकाराः, चिरात् = बहुकालात्, विधेः = दैवस्य, आज्ञाकरत्वम् = वंशवदवत्वम्, न यान्ति = न गच्छन्ति।

श्लोकार्थ- उधर नन्दों के स्नेह तथा अनुग्रह हृदय को छू रहे हैं और इधर मैं उसी के परम शत्रु की सेवा में संलग्न हो रहा हूँ। वही वृक्ष जिन्हें स्वयं सींच सींचकर बढ़ाया, आज कट चुके हैं। सम्प्रति मित्र की रक्षा के लिए मेरे द्वारा शत्रुग्रहण करना है। कर्मों की गति चिरकाल से विधाता की भी आज्ञाकारिता को नहीं प्राप्त होती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- नन्दस्नेहगुणाः- नन्देषु स्नेहः नन्दस्नेहस्तस्य गुणाः नन्दस्नेहगुणाः, तत्पुरुष समास। तद्विद्विषाम्- तेषां विद्विषस्तद्विद्विषस्तेषाम् तद्विद्विषाम्, तत्पुरुष समास। इस श्लोक में अनुप्रास, काव्यलिङ्ग तथा अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों की संसृष्टी है। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

श्लोक-7.17

विना वाहनहस्तिभ्यो मुच्यतां सर्वबन्धनम्।

पूर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखा।।

अन्वय- वाहनहस्तिभ्यः विना सर्वबन्धनं मुच्यताम् पूर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं शिखा बध्यते।

शब्दार्थ- वाहनहस्तिभ्यः = अश्वगजेभ्यः, सर्वबन्धनम् = सर्वेषाम् संयमनम्, मुच्यताम् = परित्यज्यताम्, पूर्णप्रतिज्ञेन = निस्तीर्णप्रणेन, मया = चाणक्येन, केवलम् = एकमात्रम्, शिखा = चूडा, बध्यते = संयम्यते।

श्लोकार्थ- हाथी और घोड़े को छोड़कर सभी के बन्धन खोल दिये जाँय। पूर्णप्रतिज्ञ मेरे द्वारा मेरी शिखा आज बाँधी जा रही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- पूर्णप्रतिज्ञेन- पूर्णाः प्रतिज्ञाः येन सः, तेन पूर्णप्रतिज्ञेन, बहुव्रीहि समास। सर्वबन्धनम्-सर्वेषु बन्धनम्, सप्तमी तत्पुरुष समास। वाहनहस्तिभ्यो- वाहनश्व हस्तिश्च तेभ्यो, द्वन्द्व समास। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा पूर्व कथित बीज का निर्वहण से निर्वहण सन्धि है।

1.10 कठिन शब्दावली:-

विदूषक = भारतीय नाटकों में एक हँसी कराने वाला पात्र।

निग्रह = पकड़ने के अर्थ में।

अङ्कित = छपा हुआ।

नान्दी = यह मंगलात्मक श्लोक या पद्य जिसका पाठ सूत्रधार नाटक आरंभ करने के पहले करता है।

नेपथ्य = नाटक के पर्दे के पीछे का स्थान।

रंगमंच = रंगमंच वह स्थान है जहाँ नृत्य, नाटक, खेल आदि होते हैं।

लोकापवाद = अफवाह।

गुप्तचर = गुप्त रूप से राजनीतिक या अन्य प्रकार की सूचना देने वाले व्यक्ति को गुप्तचर (चल) या जासूस कहा जाता है।

निष्कासित = दंडस्वरूप घर, विद्यालय, नगर, राज्य, देश आदि से निकाला हुआ

वध्यस्थल = जहाँ प्राणदंड दिया जाता है।

शयनागार = सोने हेतु कमरा।

कञ्चुकी = कञ्चुकी प्रायः बड़े-बूढ़े और अनुभवी ब्राह्मण हुआ करते थे जिन पर राजा का पूरा विश्वास रहता था।

वृत्तान्त = किसी बात या कार्य से संबंध रखने वाली मुख्य बातों का उल्लेख या वर्णन।

वैतालिक = किसी बात या कार्य से संबंध रखने वाली मुख्य बातों उल्लेख या वर्णन स्तुतिपाठ करने वाला व्यक्ति।

कृतक = बनावटी।

अमात्य = मन्त्री

सन्धि = देशों या लोगों के समूहों के बीच एक समझौता।

पैतृक = बाप-दादा तथा अन्य पूर्वजों के समय से चला आया हुआ।

निरतिशय = जिसके आगे या जिससे बढ़कर और कुछ न हो।

प्रयाण = कहीं जाने के लिए यात्रा आरंभ करना।

विवेकशून्य = भले और बुरे का ज्ञान न रखने वाला।

शिखा = चोटी।

1.11 अभ्यास प्रश्नावली :

1.12.1 बहुविकल्पीय प्रश्न-

मुद्राराक्षस का लेखक कौन है?

- (क) कालिदास
- (ख) विशाखादत्त
- (ग) भवभूति
- (घ) भारवि

मुद्राराक्षक नाटक का नायक कौन है?

- (क) दुष्यन्त
- (ख) चाणक्य

(ग) चन्द्रगुप्त

(घ) महापद्मनन्द

मुद्राराक्षस में अंकों की संख्या है?

(क) 4

(ख) 6

(ग) 7

(घ) 8

मुद्राराक्षस का प्रधान रस है?

(क) वीर

(ख) शान्त

(ग) भयानक

(घ) शृंगार

चाणक्य का अपर नाम है?

(क) वृषल

(ख) कौटिल्य

(ग) राक्षस

(घ) चणक

चाणक्य किस वंश को नष्ट करता है?

(क) नन्दवंश

(ख) मौर्य वंश

(ग) चोल वंश

(घ) सर्पवंश

वृषल मैं तुम्हारा और क्या प्रिय कर सकता हूँ। किसका वाक्य है?

(क) राक्षस

(ख) चाणक्य

(ग) चन्द्रगुप्त

(घ) चन्दनदास

1.12.2 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. मुद्राराक्षक नाटक के पञ्चम अंक का सार लिखें।
2. चन्द्रगुप्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. चन्दनदास का चरित्र-चित्रण कीजिए।

1.12.3 निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर-

प्र.1. सिद्धार्थक तथा क्षपणक की बातचीत से ज्ञात होता है कि मलयकेतु पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर चुका है। मार्ग में उसने एक शिविर स्थापित किया है। वहाँ यह नियम बना दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति भागुरायण की मुद्रा से मुद्रित आज्ञापत्र लिए बिना न तो उस शिविर में आ सकता है और न ही शिविर से बाहर जा सकता है।

प्रथम-अङ्क में चाणक्य ने शकटदास से जो पत्र लिखवाकर राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर सिद्धार्थ को दिया था उसी पत्र को लेकर तथा दूसरे अङ्क में शकटदास को वध्यस्थल से बचाकर लाने के कारण प्रसन्न हुए राक्षस द्वारा अपने शरीर से उतार कर जो आभूषण दिए गए थे और सिद्धार्थक ने जिन्हें राक्षस की मुद्रा से मुद्रित करवा कर उसके भाण्डारगार में ही रखवा दिया था, उन्हीं आभूषणों को लेकर सिद्धार्थक के रंगमञ्च पर प्रवेश करने से पञ्चम अङ्क प्रारम्भ होता है। सिद्धार्थक वस्तुतः चाणक्य का विश्वसनीय गुप्तचर है। वह पत्र और आभूषण लेकर पाटलिपुत्र की ओर जाता है परन्तु मार्ग में उसे जीवसिद्धि क्षपणक मिल जाता है। यह भी चाणक्य का ही गुप्तचर है परन्तु राक्षस का कृत्रिम (अवास्तविक या बनावटी) मित्र बना हुआ है। वह सिद्धार्थक को भागुरायण (चाणक्य ही गुप्तचर) की मुद्रा से मुद्रित आज्ञापत्र लेकर ही शिविर से बाहर जाने को कहता है क्योंकि किसी के लिए भी आज्ञापत्र लिए बिना शिविर से आना-जाना निषिद्ध था।

परन्तु सिद्धार्थक स्वयं को राक्षस का व्यक्तिगत सेवक समझते हुए भागुरायण से आज्ञापत्र लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। क्षपणक आज्ञापत्र लेने चला जाता है। मलयकेतु राक्षस के प्रति शङ्कित रहता है। वह भागुरायण से मिलने के लिए उसके पास पहुँचने वाला ही होता है कि तभी क्षपणक आज्ञापत्र लेने के लिए भागुरायण के पास पहुँच जाता है। भागुरायण को पता है कि क्षपणक राक्षस का परम मित्र है, अतः वह उपहास में ही उससे पूछ लेता है कि कहीं राक्षस के कार्य से तो बाहर नहीं जा रहे। वह कहता है कि मैं तो राक्षस से बहुत दूर जा रहा हूँ और प्रसङ्गवश वह यह भी बतला देता है कि राक्षस ने विषकन्या का प्रयोग करके राजा पर्वतक को मारा है जिसके कारण उसे (क्षपणक को) चाणक्य द्वारा निष्कासित कर दिया गया। मलयकेतु छिपकर सब सुन लेता है और उसे

यह निश्चय हो जाता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतक को मरवाया है, चाणक्य ने नहीं। तभी शिविर के अधिकारी पुरुष सिद्धार्थक को पकड़ कर लाते हैं क्योंकि यह बिना आज्ञापत्र लिए शिविर से बाहर जा रहा था। उसके हाथ से राक्षस की मुद्रा से मुद्रित पत्र लेकर पढ़ा जाता है तथा उस पत्र के विषय में उससे पूछताछ की जाती है जब वह इस विषय में उचित जानकारी नहीं दे पाता तो उसे पीटा जाता है और तभी उसकी बगल से राक्षस की मुद्रा से मुद्रित आभूषणों की पेटी भी गिर जाती है। (यह वही पत्र है, जो प्रथम अङ्क में चाणक्य द्वारा शकटदास से लिखवा कर राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया गया था और ये वही आभूषण है, जो द्वितीय अङ्क में मलयकेतु के कञ्चुकी ने राक्षस को पहनाए थे और फिर यही आभूषण राक्षस द्वारा प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिए गए थे, क्योंकि वह शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर लाया था।) उस पत्र से तथा सिद्धार्थक द्वारा जो कुछ बतलाया गया उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धार्थक को राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के पास भेजा जा रहा है। चन्द्रगुप्त राक्षस को अपना अमात्य बनाना चाहता है इसीलिये उसके द्वारा चाणक्य को अमात्यपद से हटाया गया है।

मलयकेतु इस बात से राक्षस को विश्वासघाती समझाने लगता है और तुरन्त राक्षस को बुलवाता है। मलयकेतु का सन्देश प्राप्त होते ही राक्षस उससे मिलने चलता है। राक्षस शकटदास द्वारा खरीदे गए तीन आभूषणों में से एक को पहन कर आता है। ये आभूषण वास्तव में पर्वतक के हैं जो चाणक्य की योजनानुसार विश्वावसु इत्यादि तीन भाइयों को ग्रहण करवा कर राक्षस के पास बिकवा दिए गए थे।

मलयकेतु राक्षस से सीधा प्रश्न करता है कि आपने सिद्धार्थक को यह पत्र तथा आभूषण लेकर चन्द्रगुप्त के पास क्यों भेजा ? तो राक्षस हतप्रभ सा हो जाता है। वह यह नहीं कह सकता कि पत्र और आभूषण उसके नहीं हैं क्योंकि उन पर उसकी मुद्रा अंकित है। शत्रु द्वारा कपटमुद्रा उत्पन्न करने की बात भी निराधार हो जाती है क्योंकि सिद्धार्थक बतलाता है कि यह पत्र शकटदास द्वारा लिखा गया है और राक्षस शकटदास के प्रति अत्यन्त विश्वस्त होने के कारण यह बात अक्सर कह देता था कि यदि पत्र शकटदास द्वारा लिखा गया है तो यह समझ लिया जाए कि यह मेरे द्वारा ही लिखा गया है। भागुरायण शकटदास के लेख की प्रतिलिपि मँगवा लेता है जिससे यह निश्चित हो जाता है कि पत्र शकटदास ने ही लिखा है। तभी मलयकेतु की दृष्टि राक्षस द्वारा पहने गए आभूषण पर पड़ जाती है, जो वास्तव में पर्वतक का है। राक्षस को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि यह सारी योजना चाणक्य की ही थी। मलयकेतु को अब यह निश्चय हो जाता है कि उसका पिता राक्षस द्वारा ही मरवाया गया था और अब राक्षस उसे भी मरवा देना चाहता है। मलयकेतु राक्षस से

कहता है कि उसके कथन की पुष्टि क्षपणक जीवसिद्धि से कर ली जाए। तब राक्षस को पता चलता है कि जिस पर वह अत्यन्त विश्वास करता था वह क्षपणक जीवसिद्धि भी चाणक्य का ही गुप्तचर था।

इस प्रकार राक्षस के ऊपर एक के बाद एक वज्रपात होता है और चाणक्य की सुनियोजित योजनाओं में फँसता चला जाता है। अब स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए उसके द्वारा दिया गया कोई भी उत्तर मलयकेतु को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। अतः उसके ऊपर जो भी दोषारोपण किया गया है, उसको स्वीकार कर लेने में ही वह अपना भला समझता है। मलयकेतु राक्षस को चन्द्रगुप्त का आश्रय लेने को कह कर उसे निकाल देता है। भागुरायण मलयकेतु को शीघ्र ही कुसुमपुर पर आक्रमण करने का सुझाव देता है और राक्षस सब तरफ से निराश होकर चन्दनदास को ही बचाने का कोई उपाय सोचता हुआ बाहर चला जाता है। इसी के साथ पञ्चम-अङ्क की समाप्ति होती है।

प्र.2. मौर्य-सम्राट चन्द्रगुप्त भारतीय नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से मुद्राराक्षस का नायक है। वह मनस्वी एवं अदम्य उत्साही है। मौर्य साम्राज्य के भार वहन करने के लिए सदैव तत्पर रहता है और लोकव्यवहार से पूर्ण परिचित है- ‘अमिज्ञः खल्वसि लोकव्यवहाराणाम्’ (मुद्रा.3.)। इसके राज्य में छल-कपट का कहीं अस्तित्व नहीं है। अपराधियों एवं विद्रोहियों के प्रति यह अत्यन्त कठोर है- ‘एवमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा’ (मुद्रा.1.)। यह व्यक्तमानावलेप एवं प्रकृतिप्रेमी है। इसमें प्रायः नायक के सभी गुण पाये जाते हैं। धनञ्जय ने लिखा है-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः,

रक्तलोका शुचिर्वाग्मी रूढवंशस्थिरो युवा।

बुध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञा कलामानसमन्वितः,

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।। (दशरूपक.2.1)

अर्थात् नायक तरुण, विनम्र, मधुरभाषी, त्यागी, चतुर एवं प्रियवादी, लोकरञ्जक, कुलीन वंशोत्पन्न इत्यादि गुणों से युक्त होता है। चन्द्रगुप्त में प्रायः ये सभी गुण वर्तमान हैं। सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य का आधिपत्य हस्तगत कर लेने पर भी उसे थोड़ा भी अहंकार नहीं है। वह सर्वतोभावेन विनत स्वभाव का है। उसके इस स्वभाव से ही विमुग्ध होकर राक्षस ने कहा है- “बाल एव हि लोकेऽस्मिन् संभावित महोदयः।” (मुद्रा.7.12.)। चन्द्रगुप्त प्रियदर्शी तथा त्यागी भी है। उसके सन्मुख जो कुछ भी कार्य उपस्थित होता है दक्षतापूर्वक उसका निर्वहण करता है। किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति उसका कहीं भी मोह परिलक्षित नहीं होता। प्रकृतिप्रेमी होने के कारण कौमुदीमहोत्सव के प्रति उसका सामान्य आकर्षण प्रतीत होता है। इतिहासकारों का कहना है कि यह महाराज नन्द की एक दासी मुरा नामक शूद्रा के गर्भ से

उत्पन्न हुआ था। अतः यह शूद्र था। यही कारण है कि चाणक्य ने नाटक में इसे शूषलश नाम से ही सम्बोधित किया है। इसी आधार पर कुछ आलोचक उसे शुद्रकुलोत्पन्न मानते हैं। राक्षस भी उसे कुछ इसी प्रकार समझता है-

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चौरभिजनम्।

गता छिद्रेण श्रीवृषलमविनीतेव वृषली॥(मुद्रा.6.6)

चन्द्रगुप्त प्रजानुरञ्जक राजा तथा योग्य गुरु का योग्यतम शिष्य है। इसकी प्रकृति धार्मिक है। लोकव्यवहार का यह पूर्ण ज्ञाता है। अपरिमित योद्धा है। यह अपने गुरु के नियन्त्रण में रहते हुए प्रत्येक कार्य को सहर्ष स्वीकार करना चाहता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त को पाकर गर्वित है और चन्द्रगुप्त चाणक्य को पाकर निश्चिन्त है। चाणक्य मनस्वी है तथा विचारशील शासक रूप में भी चित्रित है। इसकी प्रत्येक गतिविधि में विचारों की प्रौढ़ता एवं यौवन का उत्साह परिलक्षित है। कञ्चुकी के शब्दों में-

सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता,

चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यस्य गुरुणा।

पुरं तामेवोच्चैः नववयसि बोद्धुं व्यवसितो

मनस्वी दम्यत्वात् स्खलित च न दुःखं वहति च॥(मुद्रा.3.3)

विशाखादत्त ने चन्द्रगुप्त का चरित-चित्रण नाटक की सहजता के अनुकूल किया है, अर्थात् उसमें साधारण मनुष्य की तरह गुण और अवगुण दोनों विद्यमान हैं। वह आरम्भ से अन्त तक केवल मौर्य सम्राट् के आदर्श का ही निर्भर नहीं करता है। इसका चरित्र नाटकीय स्थितियों के अनुरूप गतिशील है।

इतना ही नहीं, चाणक्य ने भी सब कुछ चन्द्रगुप्त की हितकामना से ही किया है। अतः फल सिद्धि अर्थात् नन्दवंश के उन्मूलन द्वारा राज्य की प्राप्ति और राक्षस द्वारा मन्त्रित्व की स्वीकृति चन्द्रगुप्त को दी हुई है। चाणक्य ने फलसिद्धि के लिए अपेक्षित कारणरूप सामग्री की योजना भले हो की है। किन्तु फल के प्रति आसक्ति उसके मन में नहीं है। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व उत्तरोत्तर विकासशील रहा है। अतः उसी को मुद्राराक्षस का नायक मानना समीचीन होगा।

प्र.3. इस सम्पूर्ण नाटक में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी एवं करुण चरित्र चन्दनदास का ही है। वह प्रतिभावान्, सहृदय, भावुक और कोमल वृत्ति का नगरसेठ है। यह वैश्य जाति का रत्न, लक्ष्मी का वरदपुत्र तथा कुसुमपुर का प्रस्फुट पुष्प है। यह राक्षस का परम मित्र है। अपने प्रवास काल में राक्षस ने अपना परिवार इसी के घर धरोहर के रूप में रख दिया था। यह राक्षस

एवं उसके परिवार के प्रति अनन्य स्नेह रखता है। उसके जीवन का यह प्रेय और श्रेय उसकी व्यक्तिगत विशेषता के रूप में हमारे सामने आता है। राजनीतिक विप्लव के समय, अपना सर्वनाश के समय भी आपसी मित्रता का उसे ध्यान है।

राक्षस परिवार की ओर यदि किसी का ध्यान जाता है तो प्रयत्नपूर्वक वह अत्यन्त व्यवहार कुशलता के साथ उसकी रक्षा का मार्ग ढूँड निकालता है। चाणक्य के द्वार राक्षस के परिवार को मांगने पर तथा नहीं सौपने पर प्राणदण्ड की धमकी देने पर कहता है- “आर्य! किं मे भयं दर्शयसि सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि कि पुनरसंतम्।”

चन्दनदास ने राक्षस के परिवार की रक्षा करके अपनी अनन्य मित्रता का परिचय दिया है। उसका आत्मत्याग इतना प्रबल है कि धन सम्पत्ति और परिवार की चिन्ता का त्याग करने के साथ ही उसने राक्षस के हितार्थ अपने प्राणों का भी मोह छोड़ दिया है। उसका आत्मत्याग इतना प्रबल है कि चाणक्य को भी आश्चर्यचकित होना पड़ता है। इसके इस गुण की प्रशंसा चाणक्य और राक्षस एक साथ करते हैं-

सुलभेष्वर्यलाभेषु परसंवेदने जनः।

क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना।।

चन्दनदास सरलता, आदर्शवादिता, व्यावहारिकता, आत्मबलिदान, संवेदनशीलता तथा सदाचारिता का श्रेष्ठतम दृष्टान्त है। यह चरित्र इस नाटक का वह आदर्श है, जो मित्रता के नाम पर अपने व्यवहार और त्याग के प्रति सर्वाधिक सचेत है। उसे प्रसन्नता है, कि उसका विनाश वैयक्तिक दोष के कारण नहीं, बल्कि मित्र के कार्य से हो रहा है- “आर्य! अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण।” उसने अपने इस त्याग और विनाश के लिए पश्चात्ताप कभी नहीं किया। उसे तो कष्ट केवल इस बात के लिए है, कि सदैव चरित्र शुद्धता की ओर ध्यान देने पर भी उसका विनाश चोरों की तरह हो रहा है। जात्या बणिक् होने के कारण चन्दनदास ने जो कुछ भी किया अपनी मित्रता और त्याग के तराजू पर तौलकर। चन्दनदास निःस्वार्थ, दृढप्रतिज्ञ, मित्रत्वविशारद एवं आदर्श चरितसम्पन्न है। वह राक्षस का मित्र, सहयोगी, सहायक एवं अनन्य हृदय है। उसकी कर्तव्य बुद्धि स्पष्ट है, आत्मविश्वास दृढ़ है तथा उसका कार्य अप्रमत्त है। सर्वतोभावेन चन्दनदास का चरित्र अनुकरणीय है।



इकाई-2

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक

संरचना

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2. महाकवि भास का परिचय
- 1.3 महाकवि भास की भाषाशैली
- 1.4 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के नामकरण की सार्थकता
- 1.5 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का मूलस्रोत
- 1.6 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का कथानक
- 1.7 स्वप्नवासवदत्तम् की नाटकीय वैशिष्ट्य
- 1.8 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का प्रतिपाद्य रस
- 1.9 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का प्रतिपाद्य विषयवस्तु
- 1.10 प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण
- 1.11 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के महत्वपूर्ण पद्यों की सप्रसङ्ग व्याख्या
- 1.12 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य :-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. महाकवि भास के जीवनवृत्त से परिचित हो सकेंगे।
2. महाकवि भास के कृतियों को जान सकेंगे।
3. महाकवि भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के पात्रों से परिचित हो सकेंगे।
4. स्वप्नवासवदत्तम् की इतिवृत्त या कथासार से परिचित हो सकेंगे।
5. स्वप्नवासवदत्तम् के प्रमुख पुरुष तथा स्त्रीपात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
6. महाकवि भास की भाषाशैली को जान सकेंगे।
7. स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के शोभावर्धकतत्त्व जैसे- छन्द, रस, अलंकार आदि से परिचित हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना :-

संस्कृत कविता कामिनी के हास भास का नाम संस्कृतनाटक के इतिहास में बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। संस्कृतनाटकों के विकास के इतिहास में भास वह जाज्वल्यमान मणि है, जिनकी कीर्ति-कौमुदी की प्रसूति काल के दुर्दम्य प्रभाव से अस्पष्ट रही अथच सुदूर दक्षिण से लेकर ध्रुव उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक सम्पूर्ण भरतखण्ड में चमकती रही। नाटक को पंचम वेद होने का जो गौरव भरत ने प्रदान किया तथा कालिदास ने जो उसे भिन्न रूचि जनों का एकत्र समाराधन कहा, इसकी सम्यक् परिपुष्टि भास के नाटकों से होती है। नाटक कवित्व का चरम परिपाक है “नाटकान्तं कवित्वम्”। उसमें तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन होता है। जब हम इस दृष्टि से विचार करते हैं तो भास की महत्ता और बढ़ जाती है। उस सुदूर अतीत में जब लौकिकसंस्कृत अभी अपनी दिशा निर्माण कर रही थी, भास ने तेरह नाटकों की रचना की और केवल रचना ही नहीं की अपितु सफलता भी अर्जित की। यह नाट्य साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय बात है।

डा. वचनदेव कुमार के मतानुसार अंग्रेजी के विश्ववन्द्य नाटककार शैक्सपीयर के निर्माण की पृष्ठभूमि के रूप में जिस प्रकार मारलो ने कार्य किया ठीक उसी प्रकार कविकुलगुरु कालिदास के विकास की प्रस्तावना भास ने प्रस्तुत की। भास कितने लोकप्रिय नाटककार थे, इसका अनुमान तो कालिदास के “मालविकाग्निमित्रम्” के सूत्रधार के कथन से ही हो जाता है- “प्रथितयशसा भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य क तौ बहुमानः।” अर्थात् भास, सौमिल्ल, कविपुत्र जैसे ख्यातिप्राप्त नाटककारों की कृतियों के रहते हुये इस कालिदास को किस प्रकार समादर प्राप्त होगा।

1.2 महाकवि भास का परिचय :-

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि कालिदास, शूद्रक आदि के समान भास ने भी अपने जीवन चरित्र के विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला है, यहाँ तक कि अपनी रचनाओं में अपना नामोल्लेख भी नहीं किया है। भास को संस्त नाट्य साहित्य का जनक कहा गया है। नाटककार के रूप में इनका नाम अत्यन्त प्राचीनकाल से ही अत्यन्त प्रसिद्ध है। कालिदास के पश्चात् बाणभट्ट ने अपने “हर्षचरित” में भास के नाटकों की उन विशेषताओं को उपन्यस्त किया है, जिनसे उसने यशलाभ प्राप्त किया :-

सूत्रधार कृतारंभैर्नाटकै बहुभूमिकैः।

सपताकैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव।।

यह उल्लेख इस तथ्य को स्पष्ट कर देता है कि संस्कृत नाट्यवाङ्मय में लगभग सातवीं सदी तक के विस्तृत कालखण्ड में भास की कीर्तिपताका छाया रही थी। महाकवि दण्डी ने भी “अवन्तिसुन्दरी कथ” में भास का स्मरण किया है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा में कहा है कि जब नागरिकों ने परीक्षा करने के लिए भास के नाटकचक्र को अग्नि में डाला तो “स्वप्नवासवदत्तम्” नाटक को अग्नि ने नहीं जलाया-

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।।

“प्रसन्नराघव” के कर्ता पीयूषवर्ष जयदेव ने “भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः” कहकर नाट्यकारों में भास को प्रथम उल्लेख किया है।

इन सब प्रसंगों से ज्ञात होता है कि भास बहुत प्राचीन काल से ही लब्धप्रतिष्ठ है। भास का व्यक्तित्व निश्चित रूपसे असंदिग्ध है तथापि खेद का विषय है कि उनके जीवनवृत्त के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है। सन् 1912 से पूर्व इनका नाम एक समस्या सा था। परन्तु 1912 में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री जी ने जब त्रिवेन्द्रम् में भास के तेरह नाटकों का प्रकाशन किया तो विद्वानों के आश्चर्य व आनन्द का ठिकाना न रहा।

इसके बाद इन नाटकों की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में तर्क-वितर्क प्रारंभ हुआ तथा एक भीषण विवाद उड़ खड़ा हुआ। इस नाट्यसमूह का कर्तृत्व एवं साथ ही विभिन्न अन्तरंग एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर भास का समय निर्धारित करने में विद्वानों ने पर्याप्त परिश्रम किया। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि अन्य प्राचीन महाकवियों के समान ही इन रचनाओं में भी लेखक के नाम अथवा स्थितिकाल के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है।

1.2.1 भास का निवासस्थान :-

भास का जीवनवृत्त ज्ञात नहीं है। विद्वानों ने मात्र अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर अनुमान लगाने का प्रयास किया है, जैसे उनकी जाति के सम्बन्ध में विद्वानों का अनुमान है कि वे ब्राह्मण थे। डा. पुसालकर तथा ए.एस.पी. अय्यर आदि विद्वानों ने उनके द्वारा विरचित साहित्य के अध्ययनोपरान्त ऐसा मत व्यक्त किया है। ब्राह्मणीय धर्म तथा समाज व्यवस्था के प्रति उनका महान् आग्रह, अनुकुलीनों का सुरुष न होना (अविमारक) आदि तथ्य उन्हें ब्राह्मण सिद्ध करते हैं।

कालिदास के समान भास के विषय में भी यह ज्ञात नहीं कि वे किस क्षेत्र के रहने वाले थे, उनका कहाँ जन्म हुआ था तथा शिक्षा-दीक्षा कहाँ हुई थी ? विद्वानों की मान्यता है कि वे उत्तरी भारत के निवासी थे। इसका कारण उनके नाटकों में उत्तरी भारत

के नगर, नदी, पर्वत तथा रीति-रिवाजों का बड़ा व्यापक वर्णन होना माना गया है। उज्जैनी, अयोध्या तथा मथुरा में इनकी वृत्ति विशेष रमी है। अतः यह प्रतीत होता है कि भास ने इन स्थानों का आँखों देखा वर्णन किया है। “हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम्” स्पष्ट संकेत करता है कि वे उत्तरी भारत के निवासी थे। उत्तरी भारत की तुलना में भास का दक्षिणी भारत का ज्ञान बहुत ही सीमित प्रतीत होता है। उनका दक्षिणी भारत का ज्ञान रामायण तथा महाभारत तक सीमित प्रतीत होता है। रामकथा वर्णित करने पर भी ‘रामेश्वरम्’ जैसे तीर्थ का उल्लेख न करना इस अनुमान की पुष्टि करता है।

भास का राजकुलों से गहन सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। राजप्रासादों, अन्तःपुरों आदि के वर्णन में इन्होंने विशेष रूचि प्रदर्शित की है। अतः ऐसा लगता है कि किसी राजसभा से इनका सम्बन्ध रहा हो। “राजसिंहः प्रशास्तु नः” की उक्ति इसी का समर्थन करती दिखाई पड़ती है। अमात्यों, सेना, द्वन्द्व आदि का वर्णन इनके नाटकों में सर्वथा दिखाई पड़ता है। राजकुल के अलावा धनी मानी नागरजनों से भी इनका सम्पर्क रहा होगा। चारुदत्त नाटक नागरजनों के जीवन का सच्चा प्रतिनिधि है।

भास के नाटकों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि भास अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। वेद, इतिहास, पुराण लोककथाएँ, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि नाना शास्त्रों का इन्होंने गंभीर अध्ययन किया था। साहित्य शास्त्र में उनकी निपुणता असन्दिग्ध है। जहाँ तक भास के धर्म का सम्बन्ध है, वे वैष्णव धर्म के अनुयायी प्रतीत होते हैं। राम तथा कृष्ण के चरित्रों में उनकी अनुरक्ति इस विषय में प्रमाण है। वैष्णव होने के साथ साथ वैदिक कर्मकाण्ड में भी वे पूर्ण विश्वास रखते थे। गौ-ब्राह्मणों में भी उनकी अत्यधिक अनुरक्ति थी।

1.2.2 महाकवि भास का काल :-

महाकवि भास का स्थितिकाल निर्धारित करना प्रायः एक अत्यन्त जटिल प्रश्न है। फिर भी कुछ तथ्य ऐसे हैं, जिनके आधार पर भास की स्थिति की सीमा निर्धारित की जा सकती है। जैसे- महाकवि कालिदास ने “मालविकाग्निमित्र” की प्रस्तावना में भास का उल्लेख किया है, अतः भास कालिदास के पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। किन्तु कालिदास के स्थितिकाल का प्रश्न विवादास्पद होने से भास के स्थितिकाल का वास्तविक निर्धारण करना कठिन है। अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् कालिदास को गुप्तकालीन अर्थात् चतुर्थ शताब्दी का मानते हैं। इस दृष्टि से भास कालिदास से पूर्व अर्थात् चतुर्थ शताब्दी पूर्व के होते हैं। इसलिए कुछ विद्वान् उन्हें ईसा की दूसरी शताब्दी में मानते हैं।

भारतीय विद्वान् कालिदास का समय ई.पू. 57 ई. के पूर्व मानते हैं। अतः भास उनसे कम से कम सौ वर्ष पहले अवश्य होंगे जबकि उनकी ख्याति पूर्ण रूप से फैल गई होगी। इस विषय पर प्रायः सभी विद्वान् एकमत हैं कि “मृच्छकटिक” की रचना का आधार भास का “चारुदत्त” नाटक है। “मृच्छकटिक” शूद्रक की रचना है, अतः भास शूद्रक के पूर्ववर्ती है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भास रचित प्रतिज्ञायोगन्धरायण का एक श्लोक उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है-

नवं शरावं सलीलस्य पूर्णम्
सुसंस्कृतं दर्भं कृतोत्तरीयम्,
तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न बुध्येत्॥

कौटिल्य जैसे प्रखर राजनीतिज्ञ द्वारा भास का प्रमाण रूप में उद्धृत किया जाना इस बात का सूचक है कि भास कौटिल्य के समय चतुर्थ शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्ध में एक प्रामाणिक ग्रन्थकार के रूप में विख्यात हो चुके थे। भास ने उदयन से सम्बन्धित नाटकों की रचना की है, अतः उनका उदयन के काल से परवर्ती होना सिद्ध होता है। चूंकि उदयन का काल ई.पू. तृतीय शती माना जाता है, अतः भास तृतीय शती ई. पूर्व से अधिक प्राचीन नहीं हो सकते। अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित महाकाव्य में भास का एक श्लोक अविकल रूप से उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है :-

काष्ठं हि मथन् लभते हुताशम्,
भूमिं खनन् विन्दति चापि तोयम्।
निर्बन्धितः किञ्चन, नास्त्यसाध्यम्,
न्यायेन भुक्तं च क तं च सर्वम्॥

इससे स्पष्ट है कि भास अश्वघोष से पर्याप्त पूर्ववर्ती रहे हैं तथा अश्वघोष ने उन्हें प्रामाणिक ग्रन्थकार की श्रेणी प्रदान की है। प्रतिमा नाटक के पंचम अंक के रावण के परिचय में जिन अधीत विद्याओं का उल्लेख है, उनका अध्ययन अध्यापन ई.पू. चतुर्थ शताब्दी के लगभग का था, अतः भास इसके उपरान्त ही हो सकते हैं। इसके पूर्व के नहीं। भास की रचनाओं पर जिस पौराणिक ब्राह्मणधर्म का प्रभाव दिखाई पड़ता है, उसका पुनरुत्थानकाल ई.पू. तृतीय शताब्दी रहा है। अतः भास इस काल में या इसके उत्तरवर्ती काल में ही अवश्य हुये होंगे। भास के नाटकों का आधार रामायण, महाभारत तथा लोककथाएँ हैं। उदयन का आख्यान ऐतिहासिक है। उदयन, प्रद्योत तथा दर्शक छठी सदी ई.

पू. के ऐतिहासिक चरित्र हैं। ई.पू. छठी सदी में रामायण तथा महाभारत भी मूल रूप में विद्यमान थे, अतः भास की उपरितम समय सीमा ई.पू. छठी सदी ठहरती है।

उक्त अन्तरंग एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों ने भास का समय चतुर्थ शतक तथा पंचम शतक के बीच माना है। वही भारतीय विद्वानों की धारणा ई.पू. तृतीय शताब्दी से लेकर ई.पू. द्वितीय शताब्दी के बीच की है।

1.2.3 महाकवि भास की रचनार्ये :-

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भास ने कई रूपक लिखे थे। राजशेखर ने भासनाटकचक्र इस संज्ञा का प्रयोग भास की रचनाओं के लिये किया है। यह संज्ञा तभी सम्भव है, जब भास के कई नाटक मिलते हों। भास के नाम से टी.गणपति शास्त्री ने तेरह रूपक प्रकाशित किए। विषयवस्तु की दृष्टि से इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

1. इनमें चार रूपक लोककथा पर आधारित हैं- स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारकम् तथा चारुदत्तम्।
2. छह रूपक महाभारत की कथा को विषय बनाकर लिखे गए हैं- मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्रम्, दूतवाक्यम्,
3. दूतघटोत्कचम्, कर्णभारम् तथा उरुभंगम्।
4. दो रूपक रामायणाश्रित हैं- प्रतिमानाटकम् तथा अभिषेकनाटकम् ।
5. एक रूपक श्रीकृष्ण को प्रस्तुत करने वाला है- बालचरितम्।

वास्तव में इन रूपकों के कर्तृत्व को लेकर विद्वानों में मतभेद है। मुख्य रूप से इस विषय में चार मत प्रचलित हैं। पहले मत के अनुसार ये तेरहों रूपक भास के रचे हुए ही हैं। टी.गणपति शास्त्री, कीथ, लक्ष्मण स्वरूप, देवधर आदि अनेक विद्वान सभी तेरहों रूपकों का प्रणेता महाकवि भास को ही सिद्ध करते हैं।

1.2.3.1 लोककथा पर आधारित चार रूपकों का संक्षिप्त विवेचन :-

स्वप्नवासवदत्तम् :- “स्वप्नवासवदत्तम्” निःसन्देह विश्व साहित्य में सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से एक है। इस नाटक में छः अंक हैं। यह नाटक राजा उदयन की कथा पर आधारित है। मन्त्री यौगन्धरायण का “वासवदत्ता अग्नौ प्रविष्टा” “वासवदत्ता अग्नि में भस्म हो गई” इस प्रवाद को प्रसारित कर उदयन का पद्मावती से विवाह करने तथा उदयन के अपहृत राज्य का वर्णन है। चरित्र-चित्रण में भास ने अपनी नाट्यकला का अद्भुत चित्र चित्रित किया है। शुद्ध तथा विशद प्रेम का ऐसा वर्णन किया है तथा नाटकीय घटनाओं

की ऐसी मनोहारिणी संगति दिखलाई है कि स्वाभाविकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में यह नाटक संस्कृत साहित्य का एक जाज्वल्यमान रत्न है।

“स्वप्नवासवदत्तम्” का कथा-संविधान कौतुक और नाटकीयता से भरपूर है। नाटकीय विडम्बनाओं और विसंगतियों के अभिप्राय का अत्यन्त मार्मिक प्रयोग नाटक में भास ने किया है। दर्शक तो प्रारम्भ में ही यौगन्धरायण की सारी कूट योजना से अवगत हो जाते हैं और वे अवन्तिका के वेष में नाटक की नायिका वासवदत्ता को आद्यन्त पहचानते रहते हैं पर पद्मावती नहीं जानती कि जिसे साधारण स्त्री बताकर धरोहर के रूप में उसे सौपा जा रहा है वह कौशाम्बी की महारानी वासवदत्ता है। नाटक के चौथे और पाँचवें अंक तो नाट्यकला और भावजगत् की रचना में अद्वितीय ही है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण :- प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में चार अंक हैं। इसमें उदयन और वासवदत्ता के प्रेम और विवाह का वर्णन है। मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को राजा प्रद्योत के यहाँ से छुड़ाने तथा उनकी नीति-वैशारद्य का वर्णन है। नाटकीय संविधान की दृष्टि से “प्रतिज्ञायौगन्धरायण” विश्वनाट्यसाहित्य में अपने ढंग का अनोखा नाटक है। वीर रस की भी इस नाटक में विशिष्ट रूप में ही अवतारणा की गयी है। घटनाक्रम का बार बार अप्रत्याशित रूप में नयी दिशा में मुड़ जाना दर्शकों में कौतूहल बनाये रखता है।

अविमारकम् :- इस नाटक में छः अंक हैं। इसमें राजकुमार अविमारक का राजा कुन्तिभोज की पुत्री राजकुमारी कुरंगी के साथ प्रणय विवाह वर्णित है। लोककथाओं के बहुविध अभिप्राय इसमें संक्रान्त हुए हैं। यह रूपक आद्यन्त विविध घटनाओं के ताने बाने में बुना हुआ है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है जिसके साथ अद्भुत रस ने कथा में चमत्कार ला दिया है।

चारुदत्तम् :- यह चार अंको का अपूर्ण नाटक है। शूद्रक कृत मृच्छकटिक के प्रथम चार अंको के लगभग सभी संवादों और कथायोजना का इस रूपक से साम्य है। इसमें निर्धन किन्तु उदार ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रणय सम्बन्ध का वर्णन है। सम्भवतः यह नाटक माननीय भास की अन्तिम कृति है जिसको वे पूर्ण नहीं कर सके।

1.2.3.2 महाभारत की कथा पर आश्रित छः रूपकों का संक्षिप्त विवेचन :-

मध्यमव्यायोग :- यह एकांकी नाटक है। मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और भीम को पुत्रदर्शन से आनन्दानुभूति तथा हिडिम्बा मिलन का रसास्वाद इस नाटक में वर्णित है।

पञ्चरात्रम् :- इसमें तीन अंक हैं। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन ने कहा कि यदि पाँच रात्रि में पाण्डव मिल जायेंगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्डवों का मिलना तथा आधा राज्य प्राप्त करना इस नाटक में वर्णित है।

दूतवाक्यम् :- यह भी एक एकांकी नाटक है। महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की सभा में जाना और विफल मनोरथ लौटने का इस नाटक में वर्णन है।

दूतघटोत्कच :- यह एकांकी श्रेणी का एक अद्वितीय नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूत रूप से धृतराष्ट्र के पास भेजना, दुर्योधन द्वारा अपमान, अन्त में दुर्योधन का कथन है कि मैं अपने बाणों द्वारा उनका उत्तर दूँगा इत्यादि कथा इस नाटक में वर्णित है। घटोत्कच शान्ति और सन्धि का आवाहन करता है पर कौरवपक्षीय लोग उसका उपहास करते हैं।

कर्णभार :- कर्णभार भी एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को दान में कवच और कुण्डल देने का वर्णन है।

उरुभंग :- यह एक एकांकी नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसके वध का वर्णन है। संस्कृत साहित्य में यह दुखान्त नाटक है। उरुभंग में करुण रस प्रधान है। दुर्योधन के चरित्र का अत्यन्त उज्ज्वल और प्रभावशाली रूप यहाँ अंकित है जो अपनी मृत्यु के समय अपनी उदात्तता और मनुष्य की गरिमा को जिस मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है, वह भारतीय साहित्य में अप्रतिम ही है।

1.2.3.3 रामायण पर आश्रित दो रूपकों का संक्षिप्त विवेचन :-

प्रतिमानाटकम् :- प्रतिमा तथा अभिषेक इन दोनों नाटकों के द्वारा भास ने रामायण की सम्पूर्ण कथा को नाटकीय स्वरूप में विनयस्त किया है। इस नाटक में सात अंक हैं। राम का वनवास, सीताहरण, रावण वध और राम के राज्याभिषेक इस नाटक के प्रतिपाद्य विषय हैं। इस नाटक से प्राचीन भारत में कलाविषयक नवीन वृत्तान्तों का पता चलता है।

अभिषेकनाटकम् :- इस नाटक में भी छः अंक हैं। इसमें रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की सम्पूर्ण कथा संक्षेप में वर्णित है। अन्त में रावण वध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है। यह नाटक वीर रस से परिपूर्ण है।

1.2.3.4 श्रीकृष्ण कथा पर आश्रित रूपक का संक्षिप्त विवेचन :-

बालचरित :- यह रूपक श्रीकृष्णकी बाल लीलाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से कंसवध तक की कथा वर्णित है। इसमें पाँच अंक हैं। वीर और अद्भुत रसों की निरन्तर व्याप्ति तथा असाधारण पराक्रम के चित्रण के कारण भी यह नाटक उल्लेख्य है।

1.3 महाकवि भास की भाषाशैली :-

किसी भी कवि या नाटककार का मूल्यांकन करने की महत्वपूर्ण कसौटी यदि कोई है तो वह उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा व शैली है जिसका कि उसने अपनी कृति में प्रयोग किया है। दृश्य या श्रव्य काव्य की कथावस्तु की सामग्री से हम उसके रचयिता का मूल्यांकन उतना नहीं कर सकते हैं जितना की भाषा शैली से। भाषा व शैली ही उसकी स्वयं की होती है जिसके माध्यम से वह अपने स्वयं व अन्य स्थानों तथा विभिन्न स्रोतों से ग्रहण किये गये भावों व विचारों को अपनी कृति में प्रकट करता है। कथानक कभी भी पूर्णरूप से आविष्कृत नहीं हो सकता। एक ही कथानक को अनेक रूपों में भाषा व शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार एक काव्य में भाषा व शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्यों में भी मूलतः दृश्यकाव्य में भाषा व शैली महत्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि नाटक अथवा एकांकी प्रत्यक्ष दर्शन का साहित्य है, अतः उसकी भाषा व शैली सरल तथा सुबोध होनी चाहिए।

वही नाटक दर्शकों को प्रभावित व आह्लादित कर सकता है जिसकी भाषा सहज बोधगम्य हो। सहज बोधगम्य होने के साथ-साथ भाषा का पात्रानुकूल होना भी आवश्यक है। एक बच्चा न तो प्रौढ भाषा बोले और न एक अशिक्षित साहित्यिक भाषा अथवा विदेशी भाषा। भाषा का महत्व इस दृष्टि से भी है कि भाषा के माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है, क्योंकि बोलचाल से ही किसी का व्यक्तित्व मूल्यांकन किया जा सकता है। अतः भाषा ऐसी होनी चाहिए जोकि प्रथम सहज बोधगम्य हो अर्थात् प्रसाद गुण से युक्त हो, द्वितीय पात्रानुकूल व परिस्थितियों के अनुकूल हो। अधिक आलंकारिक चमत्कारयुक्त भाषा में लिखित नाटक कभी भी दर्शकों को प्रभावित नहीं कर सकता।

भाषा व शैली की कसौटी पर भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक एक खरा व अनुपम नाटक है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रसादगुण युक्त है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह है, जैसे वास्तविक जीवन में बोली जा रही है। कवि ने समास प्रधान भाषा का अधिक प्रयोग नहीं किया है। इस नाटक में भास की भाषा शैली पात्रों के भावों और विचारों के अनुकूल है। सूक्तिपूर्ण वाक्यों के प्रयोग से भाषा-शैली को सशक्त बनाया है।

शास्त्रीय दृष्टि से इनकी शैली में माधुर्य, ओज और प्रसाद इस तीनों गुणों का समावेश पाया जाता है। इनकी शैली के संदर्भ में श्री रामजी मिश्र का निम्न कथन उल्लेखनीय है।

भास ने अपने नाटकों में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। उनकी शैली में प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण का समन्वय देखने को मिलता है, जो इस प्रकार है-

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः।

रामः इत्यक्षरैरल्यैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् (प्रतिमानाटक.5.14)

भास की कविता कामिनी अपने स्वाभाविक पद विन्यास के लिए जितनी प्रसिद्ध है उतनी ही अपने भावों के लिए भी प्रसिद्ध है। पितृभक्ति, पातिव्रत्य, भ्रातृप्रेम, त्याग आदि गुण उनके नाटकों में स्थान स्थान पर परिलक्षित होते हैं। पातिव्रत्य धर्म का निर्वाहन करते हुए ही सीता राम के साथ वन जाती है-

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा

पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।

त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रम्

व्रजतु चरतु धर्म भर्तृनाथा हि नार्यः॥ (प्रतिमानाटक.1.25)

भास मानव हृदय के गुण-दोष आदि विकारों को परखने की पूर्ण योग्यता थी। प्रेति वर्णन, रस योजना, संवाद कौशल, नाटकीय तत्त्वों के प्रयोग, घटना संयोजन में भास अत्यन्त कुशल है। उन्होंने अन्तःकृति और बाह्यकृति दोनों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्रेति वर्णन में प्रसाद गुण का प्रयोग किया है। भास ने प्रतिमानाटक में द्रुत गति से चलते हुए रथ का बड़ा ही स्वाभाविक और सजीव वर्णन किया है -

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया

नदीवोद्धृताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।

अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयम्

रजश्चाश्वोद्धृतं पतति पुरले नानुपतति॥ (प्रतिमानाटक.3.2)

भास के नाटकों में मुख्यतया शृंगार और वीर रस का प्रयोग देखा जाता है। उनके नाटकों में करुण, रौद्र, हास्य आदि रस अंग के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। शृंगार रस का वर्णन पाठकों को जितना सहज, सरस और आकर्षक लगता है तो वीर रस का प्रयोग भी पाठकों में उदात्तता और उत्साह का संचार करता है। अलंकारों के प्रयोग में उपमा और स्वभावोक्ति अलंकार पर इनका विशेष स्नेह सहज ही देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनुप्रास, यमक, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास आदि अलंकारों का भी प्रयोग

किया है। भास संवाद तत्त्व के विशेष मर्मज्ञ हैं इसलिए इनके रूपक शास्त्र की दृष्टि से सरल, सुबोध तथा अभिनेय हैं।

शैली की सारी विशेषताओं से विशिष्ट भास कवि की अभिव्यंजना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। प्रसाद और ओज के साथ साथ माधुर्य की संयोजना सहृदयों को मुग्ध कर देती है। पूरे के पूरे नाटक पर जाइए कहीं भी दूरारूढ़ कल्पना, समास बहुलता का प्रवाह में अवरोध नहीं मिलेगा। इसे कुछ विद्वानों ने रामायण का प्रभाव माना है। इनकी शैली अलंकारों पर नहीं भावनाओं के निखार पर गर्व करती है, जिससे कृत्रिमता की जगह स्वाभाविकता आ गई है। सरलता से समझ में आने वाले उन अलंकारों का प्रयोग भास ने किया है जिनसे वस्तु-चित्र और भी स्पष्ट हो गये हैं। भाषा-शैली में जैसी सफलता इन्हें मिली इनके पूर्ववर्ती किसी भी कवि भास के इस नाटक में एक विचित्र अनूठापन है। लघुविस्तारी वाक्यों में जितना सरल पद न्यास प्रभावित करता है उतने ही भाव भी रसाप्लावित करते हैं। मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावदशाओं का चित्रण इस नाटक में सर्वत्र देखा जा सकता है।

भास की भाषा-शैली को संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. सरल व सरस भाषा
2. प्रभावपूर्ण भाषा
3. अद्भुत वाक्य संघटना
4. पात्रानुकूल भाषा
5. व्यंजकता एवं प्रभावोत्पादकता का समन्वय
6. वाग्विस्तार का परिहार
7. प्रसाद, ओज एवं माधुर्य का अद्भुत समन्वय
8. नाटक व काव्यत्व का संतुलन

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भास सरल पद्धति के जनक हैं। इनके नाटक सामान्य संस्त ज्ञाताओं के लिए भी सहज सुबोध हैं।

1.4 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के नामकरण की सार्थकता :-

प्रस्तुत नाटक की श्रेष्ठता का आधार इसकी कपिपय काव्य सम्बन्धी तथा नाटकीय विशेषतायें हैं जो हमें वस्तु योजना, चरित्र चित्रण, संवाद, रस, भाषा शैली, नाट्य शिल्प, रंगमंच आदि, विविध क्षेत्रों में दीख पड़ती है। नाटक के नामकरण का आधार कथावस्तु का वह अंश है जो स्वप्नदृश्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह दृश्य नाटक का प्रमुख ओर

सम्भवतः सर्वोत्तम अंश है। स्वप्नदृश्य के आधार पर नाटक का नामकरण करना भास की उर्वर नाटकीय कल्पना का सुन्दर निदर्शन है। नाटक के उक्त नामकरण में नाट्य शस्त्रीय धारणा का अनुपालन भी हुआ है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' इस नाम का आधार नाटक के पञ्चम अंक में घटित एक विशेष घटना है, जो इस प्रकार है- समुद्र गृह में रानी पद्मावती की प्रतीक्षा करते करते राजा उदयन को नींद आ जाती है। कुछ देर बाद वहाँ वासवदत्ता जो अवन्तिका के रूप में राजगृह में रह रही है आती है और वही उदयन की शैय्या पर चादर ओढ़े सोये उदयन को पद्मावती समझ कर लेट जाती है। राजा सपने में वासवदत्ता को देखता है और उसे सम्बोधित करता है। साथ लेटी हुई वासवदत्ता उत्सुकतावश स्वप्न में बोल रहे राजा की बातों का उत्तर देने लग जाती है। स्वप्नावस्था में स्थित प्रिय और जागृत अवस्था में विद्यमान प्रेमी के बीच वार्तालाप तथा उनके मिलन का यह दृश्य नाटक का एक मार्मिक प्रसंग है। साहित्य दर्पण के अनुसार नाटक का नाम सन्धि द्वारा सूचित अर्थ की अभिव्यञ्जना करने वाला होना चाहिये। "नामकार्य नाटकस्य गर्भितार्थ प्रकाशकम्"- गर्भसन्धि नाटक में फलागम के मुख्य उपाय के समुद्भव अथवा आविर्भाव को कहते हैं।

प्रस्तुत नाटक में उदयन द्वारा वासवदत्ता की पुनः प्राप्ति फलागम है, उसका मुख्य उपाय यहाँ स्वप्नमिलन के रूप में वर्णित है। नाटक के स्वप्नदृश्य में इस उपाय का समुद्भेद हुआ है, अतः उसके आधार पर नाटक का उक्त नामकरण उपयुक्त ही है।

1.5 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का मूलस्रोत :-

'स्वप्नवासवदत्तम्' का कथानक लोक कथाओं पर आधृत है। उदयन का कथानक लिखित रूप में सर्वप्रथम इसी नाटक में मिलता है। गुणाढ्यकृत पैशाची 'बृहत्कथा' के अनूदित ग्रन्थ 'कथासरितसागर', 'बृहत्कथा मंजरी' और 'बृहत्कथा श्लोक' संग्रह में भी उदयन कथा प्राप्त है, जिससे यह ज्ञात होता है कि मूल 'बृहत्कथा' में भी यह कथा अवश्य रहा है। पर 'बृहत्कथा' के रचयिता गुणाढ्य का समय भास का उत्तर काल है। 'बृहत्कथा' और 'स्वप्नवासवदत्तम्' के कथानक में कई बातों में अन्तर पाया जाता है।

भास के मत से दर्शक मगध का राजा है, किन्तु गुणाढ्य के मत से प्रद्योत, नाटक के अनुसार पद्मावती दर्शक की बहन है, किन्तु गुणाढ्य के मत से प्रद्योत की कन्या। भास के मतानुसार आरुणि द्वारा अपहृत वत्सराजा के उद्धार के लिए यौगन्धरायण ने समस्त योजना तैयार की, किन्तु गुणाढ्य ने लिखा है कि नये राज्य की प्राप्ति के लिए योगन्धरायण ने इतना प्रयास किया है। भास के मत से वासवदत्ता अपने अज्ञातवास के जीवन में यौगन्धरायण की बहन वनी, किन्तु गुणाढ्य के मत से पुत्री। इस प्रकार भास और गुणाढ्य के मत में और भी कई भिन्नताएँ हैं, जिनसे स्पष्ट है कि भास और गुणाढ्य दोनों के कथानक लोककथाओं पर आधृत होने के कारण ही उनमें भिन्नता है।

1.6 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का कथानक :-

‘स्वप्नवासवदत्तम्’ की कथावस्तु का सम्बन्ध छठी शताब्दी ई.पू. के भारत के तीन प्रमुख राज्यों- वत्स, अवन्ति और मगध से है। ये तीनों राज्य उत्तर भारत में थे। इनमें वत्स राज्य प्रयाग (इलाहाबाद) के पश्चिम में गंगा-यमुना का भाग था इनकी राजधानी कौशाम्बी थी। अवन्ति राज नर्मदा नदी के उत्तर में विन्ध्य पर्वत के आंचल में फैला जनपद था, इसकी राजधानी उज्जयिनी (वर्तमान उज्जैन) थी। मगध काशी के पूर्व में गंगा के दक्षिणी भाग में शोण नद के दोनों ओर फैला विशाल राज्य था। इसकी राजधानी राजगीर (पटना थी)। प्रस्तुत नाटक का कथानायक उदयन वत्स का राजा था। अवन्तिका राजा महासेन प्रद्योत उसके साथ अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह करना चाहता था। उसके अमात्य शालङ्कामन के विन्ध्य के जंगल में हाथियों का शिकार कर रहे उदयन को छलपूर्वक बन्दी बना लिया। बन्दी उदयन वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने के लिये नियुक्त हुआ। धीरे धीरे उदयन और वासवदत्ता एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुये। उदयन अपने कुशल मंत्री यौगन्धरायण की सहायता से वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भागने में सफल हुआ, और इस प्रकार दोनों का प्रणय विवाह सम्भव हुआ।

उदयन वासवदत्ता के प्रेम में इतना लीन रहने लगा कि वह राज्य के कार्यों के प्रति उदासीन रहने लगा। फलस्वरूप उसके राज्य को पड़ोसी राजा आरूणि ने हथिया लिया। अपने राज्य को वापिस लेने के लिए उदयन के सचिव यौगन्धरायण और अमात्य रूमण्वान ने एक योजना बनाई राज ज्योतिषियों से उन्हें विदित हुआ था कि मगध के राजा दर्शक की बहिन पद्मावती उदयन की पत्नी बनेगी। पद्मावती के साथ विवाह करने से उदयन का मगध राज की सैनिक सहायता प्राप्त हो सकती थी परन्तु वासवदत्ता से उसका इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि उसके रहते उसके दूसरे विवाह की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यौगन्धरायण ने अपनी योजना के अधीन, वत्स देश में स्थित लावाण ग्राम में (जहाँ उदयन शिकार के सिलसिले में सपरिवार टिका हुआ था) उदयन की अनुपस्थिति में आग लगा दी और यह सिद्ध कर दिया कि वासवदत्ता आग में जलकर मर गई तथा उसे बचाने के प्रयत्न में यौगन्धरायण भी आग की लपेट में आ गया। इस दारुण समाचार को सुनकर विक्षुब्ध हुये उदयन को रूमण्वान ने धीरज बंधाया। इस प्रकार उदयन के द्वितीय विवाह के लिये जो प्रस्तुत नाटक का विषय है उसके लिये पृष्ठभूमि तैयार की गई। लावाणक ग्राम से निकल कर यौगन्धरायण और वासवदत्ता क्रमशः ब्राह्मण, सन्यासी और अवन्तिका के वेष में मगध की राजधानी राजगृह के निकट किसी आश्रम में पहुँचते हैं। यहाँ पद्मावती आश्रम में एकान्तवास कर रही अपनी माता से मिलने आती है। यौगन्धरायण वासवदत्ता

को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में यह कहकर इसका पति विदेश गया रखन के लिये अनुरोध करता है जिसे पद्मावती स्वीकार कर लेती है। कालान्तर में कार्यवश मगध पधारे उदयन ने महाराज दर्शक के अनुरोध पर पद्मावती से विवाह करना स्वीकार कर लिया। अवन्तिका इस समाचार को सुन अपने मन्द भाग्य को कोस रही होती है। इसी बीच एक चेरी फूल लेकर उसके पास पहुँचती है और उसे शीघ्र जयमाला तैयार करने को कहती है। आवन्तिका खिन्न हृदय ये जयमाला गूँथकर उसे पकड़ा देती है।

उदयन विवाहोपरान्त महाराज दर्शक के राज प्रसाद में ही निवास कर रहा होता है। उसे पता चलता है कि पद्मावती तीव्र शिरोवेदना से पीड़ित है और उसकी शैय्या समुद्रगृह में लगा दी गई है। राजा वहाँ पहुँचता है और पद्मावती को वहाँ न पाकर स्वयं उसकी शैय्या पर लेट जाता है और उसे नींद आ जाती है। इसी बीच आवन्तिका भी पद्मावती की शिर पीड़ा का समाचार सुन वहाँ आ जाती है और पद्मावती को सोया जानकर स्वयं भी उसके साथ सो जाती है। राजा स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है और उसे प्रेमपूर्ण शब्दों से सम्बोधित करता है वासवदत्ता भी उत्सुकतावश उत्तर देने लगती है परन्तु कुछ समय बाद इस भय से राजा जागकर उसे पहचान न ले वहाँ से चल पड़ती है। जाते-जाते पलंग से नीचे लटक रहे राजा के हाथ को पलंग पर टिका देती है। इस बीच अचानक राजा की नींद खुल जाती है। वह वासवदत्ता को पकड़ने का प्रयास करते हुये दरवाजे से टकरा जाता और वहीं रूक जाता है। विदूषक राजा के साथ घटी घटना को भ्रम कहकर टाल देता है और कहता है वह तो कब की मर चुकी है। युद्ध में आरुणि को परास्त कर उदयन अपना खोया राज्य प्राप्त कर लेता है। पद्मावती उदयन तथा अवन्तिका कौशाम्बी आ जाते हैं एक दिन राजा को घोषवती वीणा जिसे वासवदत्ता बजाया करती थी की ध्वनि सुनाई पड़ती है। राजा वीणा को देख वासवदत्ता की स्मृति में विहल हो जाता है। इसी बीच प्रद्योत का कञ्चुकी और वासवदत्ता की धात्री उपस्थित होते हैं और वे उदयन को प्रद्योत की ओर से राज्य प्राप्ति पर बधाई देते हैं तथा उसे उसके वासवदत्ता के साथ विवाह का चित्र दिखाते हैं, चित्र को देखकर पद्मावती उदयन को बताती है कि ठीक उसी ओंति की एक स्त्री उसके पास रहती है जिसे कुछ समय पूर्व एक संन्यासी प्रोषित बहन कहकर धरोहर के रूप में उसे सौंप गया था। ठीक उसी समय यौगन्धरायण उपस्थित होता है और अपनी धरोहर (वासवदत्ता) वापिस माँगता है। धात्री देखते ही वासवदत्ता को पहचान जाती है, यौगन्धरायण भी अपने वास्तविक वेश में आ जाता है। उदयन अपनी प्रेयसी वासवदत्ता एवं प्रिय सचिव यौगन्धरायण को पुनः पाकर हर्षित हो उठता है। तदन्तर भरत वाक्य के पश्चात् नाटक सुखान्त रूप में समाप्त होता है। भास द्वारा वर्णित उदयन कथायें बृहत्कथा की उदयन कथा की तुलना में इतिहास की

वास्तविकता अधिक है, क्योंकि गुणाढ्य की अपेक्षा भास काल की दृष्टि में उदयन के अधिक निकट है। भास एक नाटककार थे इतिहास लेखक नहीं अतः उनकी उदयन कथाये यत्र-तत्र नाटकीय कल्पना की सम्भावना का निषेध नहीं किया जा सकता। भास ने निःसन्देह एक कुशल नाटककार की भान्ति मूल कथा को नाटकीय कल्पना से संजोया संवारा है और उसे नवीन रूप में उपस्थित किया है।

1.7 स्वप्नवासवदत्तम् की नाटकीय वैशिष्ट्य :-

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक भास के सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इस संबंध में प्राचीन और आधुनिक आलोचकों में पूर्ण सहमति है। डा.जान्सन इसे सम्पूर्ण संस्कृत नाटक वाङ्मय में अनुपम रचना मानते हैं। प्रस्तुत नाटक की श्रेष्ठता का आधार इसकी काव्य सम्बन्धी तथा नाटकीय विशेषतायें हैं, जो हमें वस्तुयोजना, चरित्र चित्रण, संवाद, रस-संयोजना, प्रकृति-चित्रण, अलंकार-विन्यास तथा छन्द-योजना आदि विविध क्षेत्रों में प्रतीत होती हैं, जो निम्नप्रकार हैं-

1.7.1 कथावस्तु योजना

नाटक की कथावस्तु योजना की प्रमुख विशेषता घटनाओं की गतिशीलता है। घटनायें निर्वाहगति से नाटक के निर्वहण तथा फलागम की ओर बढ़ती हैं। नाटकीय वस्तु के विकास की पांच अवस्थाओं की दृष्टि से कथावस्तु की समीक्षा करते हुये कहा जा सकता है कि इसमें इनका सफल निर्देशन है। प्रथम अंक में पद्मावती, उदयन की पत्नी बनेगी ऐसी आशा से नाटक का शुभारंभ है और 'यत्न' नामक दूसरी कार्यावस्था यौगन्धराण द्वारा वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रखने में परिलक्षित होती है। द्वितीय अंक में पद्मावती का वाग्दान और तृतीय-अंक में विवाह। फलागमन और नियताति में राज्य प्राप्ति और वासवदत्ता प्राप्ति में फलागम है। कार्यावस्थाओं को जोड़ने वाले तत्त्व पाञ्च है और उन्हें संधि कहा जाता है। स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु में इनके योजना क्रम को भी लक्षित किया जा सकता है।

1.7.2 चरित्र चित्रण

चरित्र चित्रण के अपने विशेष कर्म के प्रति भास सर्वथा सजग है। पात्रों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से भास स्वप्नवासवदत्तम् में विशेष सफल हुये हैं। पात्र उदात्त, संयत और गंभीर हैं। उनके चरित्र नाटकीय कार्य को आगे बढ़ाने में सहायक हैं।

1.7.3 संवाद

संवाद नाटक का महत्वपूर्ण तत्त्व है। भास के संवाद स्वाभाविक ओजपूर्ण और पात्र विशेष के सर्वथा अनुकूल हैं। यह संवाद संक्षिप्त, सारगर्भित तथा मुहावरेदार हैं। इनमें कृत्रिमता

का पूर्ण अभाव है। भावों को तीव्रता प्रदान करने, प्रकृतिचित्रण करने तथा किसी चिरन्तन सत्य का उपस्थायन करने के लिये भास ने यथावसर पद्य का भी आश्रय लिया है।

1.7.4 रस संयोजना

भास की नाट्यकृतियों में प्रमुख वीर, श्रृंगार, हास्य, करुण और अद्भूत रस है। स्वप्नवासवदत्तम् में श्रृंगार, करुण और हास्य रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। वीर रस की एक हल्की झलक मात्र मिलती है। श्रृंगार रस की अभि व्यंजना उसके दोनों पक्षों संयोग और वियोग को लेकर हुई है। हास्य रस की अवतारणा नाटक में विदूषक के माध्यम से हुई है।

1.7.5 प्रकृति चित्रण

भाव विशेष के उद्दीपन के रूप में अथवा कहीं कहीं स्वतन्त्र रूप में भास ने प्रकृति के मनोरम चित्र प्रस्तुत नाटक में किये हैं। इनमें यथार्थ का रूप और रंग है। आकाश में पंक्तिबद्ध होकर उड़ रही सारस पंक्ति का धरातल से लिया गया चित्र अति मनोहारी है।

1.7.6 अलंकार विन्यास

भास के नाटकों में स्वभावोक्ति, उपमा, दृष्टान्त, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास एवं अनुप्रास आदि अलंकारों का सजह सुखद विन्यास है।

1.7.7 छन्द योजना

भास के प्रस्तुत नाटक में सबसे अधिक अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया है। भास ने शालिनी, आर्या, शिखरिणी, वसन्ततिलक उपेन्द्रवजा, उपजाति इत्यादि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

1.8 नाटक का प्रतिपाद्य रस :

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का प्रमुख रस कौन सा है ? इस विषय में सुस्पष्ट तथा कुछ भी कह पाना इसलिए संभव नहीं क्योंकि इसमें झलक विभिन्न रसों की मिलने पर भी परिपाक किसी एक रस का दृष्टिगोचर नहीं होता। जैसे नाट्यकलामर्मज्ञ विद्वानों के अनुसार यह शृङ्गाररस का कहा गया है। इसी प्रसंग में 'रस' शीर्षक के अन्तर्गत पहले कहा जा चुका है कि स्वप्नवासवदत्तम् का शृङ्गार 'अर्थ-शृङ्गार' है। क्योंकि शत्रु द्वारा छीने गए राज्य की पुनः प्राप्ति के उद्देश्य से इसमें वासवदत्ता से विच्छेद कराकर पद्मावती से राजा उदयन का विवाह कराया गया है। जहाँ तक वासवदत्ता और उदयन का सम्बन्ध है, वहाँ तक इस नाटक का रस विप्रलम्भ संभोग-शृङ्गार है, परन्तु पद्मावती के सम्बद्ध

शृङ्गार यद्यपि संभोग-शृङ्गार का उदाहरण कहा जा सकता है तथापि उसका पूर्ण परिपाक न दिखाया जाने के कारण संभोग-शृङ्गार को नाटक का प्रमुख या प्रतिपाद्य रस नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यद्यपि वासवदत्ता के सम्बन्ध में शृङ्गार का पद्मावती की अपेक्षा अधिक आस्वाद का अवसर इस नाटक में मिलता है परन्तु वह भी क्योंकि परिपाक को प्राप्त नहीं हो सका है अतः विद्वानों को अंगी रस की दृष्टि से यह नाटक प्रायः शिथिल ही प्रतीत होता है।

यद्यपि इस नाटक का अंगी रस शृङ्गार कहा जाता है तथापि अन्य रसों का यथावसर आभास भी नाटककार ने कराया है। आश्रय के चित्रण (वर्णन) में शान्त, ब्रह्मचारी के दृश्य में करुण, द्वितीय अंक में गेंद खेलती हुई पद्मावती के साथ वासवदत्ता के वार्तालाप में हास्य, तृतीय-अंक में वासवदत्ता की उक्तियों में तथा चतुर्थ-अंक में राजा की प्रमदवनगत उक्तियों में एवं पंचम-अंक में प्रवेशक तक विप्रलम्भ शृङ्गार, चतुर्थ-अंक में विदूषक के कथन में हास्य, पंचम-अंक में राजा एवं कंचुकी की उक्तियों में वीर, षष्ठ-अंक में वीणा-प्रसंग में पुनः विप्रलम्भ-शृङ्गार, यौगन्धरायण के प्रतिवाद में हास्य आदि विभिन्न रसों का यथावसर आकलन हुआ है। सही और तदनुकूल भाव और चेष्टाओं का दिग्दर्शन भी कराया गया है परन्तु सच्चाई यह है कि इस नाटक में किसी भी रस का पूर्णतः परिपाक नहीं हुआ है। अन्य रसों की अपेक्षा विप्रलम्भ-शृङ्गार कुछ विशेष पुष्ट है। अतः उसी की प्रचुरता को परिलक्षित कर इसे शृङ्गाररस का नाटक कहा गया है।

कुछ समालोचकों ने इस नाटक में किसी भी रस की पूर्ण परिणति का अभाव परिलक्षित कर कहा है कि वस्तुतः भास में किसी भी रस का पूर्ण परिपाक दिखाने की क्षमता नहीं थी। परन्तु भासकृत समस्त नाटकों के पर्यालोचन करने पर यह कथन असत्य प्रतीत होता है क्योंकि अन्य नाटकों में कहीं-कहीं रस का अच्छा परिपाक दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त प्रौढावस्था के कारण भी सम्भवतः शृङ्गाररस का परिपाक दिखाने में कविवर भास ने रुचि न ली हो और इसीलिए परिपाकगत शैथिल्य दृष्टिगोचर होता हो, यह भी माना जा सकता है। इसके साथ ही यह ध्यातव्य है कि वे कल्पना को कम और यथार्थ को विशेष महत्व देते थे। अतः सहज रूप में और जितनी जिस रस को दिखाने की जहाँ आवश्यकता थी उतना ही दिखाने का प्रयत्न उन्होंने किया है। जहाँ रस विशेष की झलक मात्र मिलती है वहाँ उनका उद्देश्य मुस्कान की भाँति उसे ओठों तक मर्यादित रख आगे बढ़ जाना ही होता है। अतः अन्यथा कल्पना कर उनके नाटक के सम्बन्ध में यही कहना समीचीन होगा कि वे सभी रसों और भावों के कुशल चित्रकार थे और इसी कुशलता का दिग्दर्शन उन्होंने अपने नाटकों में कराया है।

‘स्वप्नवासवदत्तम्’ में क्योंकि घटना क्रम उत्क्षिप्त सा है, अतः समय समय पर विभिन्न रसों की झलक दिखाते हुए अधिकतर विप्रलम्भ-शृङ्गार का ही ख्यापन वे करते हैं। अतः ‘स्वप्नवासवदत्तम्’ को विप्रलम्भ-शृङ्गार रसप्रधान नाटक कहा जा सकता है। यद्यपि संभोग-शृङ्गार पुष्टि के लिए भी नाटक में पर्याप्त अवसर था परन्तु ‘स्वप्नवासवदत्तम्’ शीर्षक की अन्वर्थकता तथा “न विना विप्रयोगेन शृङ्गारं पुष्टिमश्नुते” कथन की सार्थकता के लिए, विप्रलम्भ के दृश्य ही विशेषतः प्रस्तुत करना उन्हें अधिक उचित प्रतीत हुआ और वही उन्होंने किया भी। रही परिपाक दिखाने की बात, वह इसलिए संभव नहीं थी क्योंकि लेखक विप्रलम्भ का आधिक्य दिखाकर सामाजिकों को न तो खिन्न बनाना चाहता था और न ही स्वप्न में प्रियतमा से राजा का संयोग करा कर तत्कालीन वार्तालाप द्वारा प्राप्त सुख से उसे वंचित ही करना चाहता था। अतः उसने शृङ्गार के दोनों पक्षों को ही वर्णन का विषय बनाया, परन्तु अधिकता स्वतः ही विप्रलम्भ की हो गई। इस प्रकार स्पष्टतः कहा जा सकता है कि ‘स्वप्नवासवदत्तम्’ शृङ्गाररस का ही नाटक है।

1.9 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का प्रतिपाद्य विषयवस्तु :

भासरचित नाटकों में ‘स्वप्नवासवदत्तम्’ नाटक सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है। इस नाटक में वियुक्त वासवदत्ता से राजा का मिलन ‘स्वप्न’ में होता है। इसी मुख्य घटना के आधार पर नाटक का नाम ‘स्वप्नवासवदत्तम्’ रखा गया है।

इस नाटक की कथा इस प्रकार है- उज्जैन के राजा प्रद्योत के महल से वासवदत्ता का हरण कर लाने के पश्चात् राजा उदयन कर्तव्य से भ्रमित होकर कामक्रीड़ा में मग्न हो जाता है। धीरे धीरे सैन्यव्यवस्था दुर्बल हो जाती है और उसके चिरशत्रु आरुणि को उसके राज्य पर आक्रमण करने का अवसर मिल जाता है। राज्य खोकर उदयन लावाणक ग्राम में शिकार आदि कर अपना मन बहलाता हुआ रहने लगता है। इसी समय पुष्पकभद्र आदि दैवज्ञ भविष्यवाणी करते हैं कि मगधराज की पुत्री पद्मावती उदयन की रानी बनेगी। यह सुनते ही राज्यनाश से खिन्न यौगन्धरायण आदि मन्त्रियों को एक मार्ग मिल जाता है और वे वासवदत्ता में आसक्त राजा को अपने अनुकूल बना पुनः राज्य प्राप्ति के लिए उद्योग करने का निर्णय कर एक योजना बनाते हैं। इस योजना के अनुसार आरुणि को परास्त करने के लिए एवं पूर्वोक्त भविष्यवाणी को सत्य बनाने के लिए वासवदत्ता को मिलाकर लावाणक के अग्निकाण्ड में वासवदत्ता और स्वयं के जल मरने का समाचार उड़ाता है और स्वयं सन्यासी का वेश बनाकर आवन्तिका के रूप में वासवदत्ता को पद्मावती के पास इस दृष्टि से धरोहर रूप में रखता है, जिससे यथासमय पद्मावती उसके

चरित्र के विषय में साक्षीभूत रहे। इस घटना के कुछ समय पश्चात् किसी कार्यवश वत्सराज उदयन मगधराज दर्शक के यहाँ जाते हैं और उन्हें रूप, गुण आदि की दृष्टि से अपनी बहन पद्मावती के सर्वथा अनुरूप पाकर महाराज दर्शक पद्मावती का विवाह उनके साथ कर देते हैं। एक दिन दासी द्वारा पद्मावती के सिरदर्द का समाचार पाकर उदयन उसे देखने समुद्रगृह में जाते हैं और उसे वहाँ न पाकर उसके लिए बिछाए गए विस्तर पर लेटकर विदूषक से कहानी सुनते सुनते सो जाते हैं। इसी समय वासवदत्ता वहीं आती है और पद्मावती को सोया हुआ जानकर उसके पास लेट जाती है परन्तु स्वप्न में राजा द्वारा उच्चारित अपना नाम सुनकर तुरन्त उठ बैठती है। राजा स्वप्न में वासवदत्ता को देखकर प्रणयपूर्ण वचनों से उसे सम्बोधित करता है और वासवदत्ता स्पष्टतः उसकी निद्रित अवस्था में कही गई बातों का उत्तर देती है। इसके पश्चात् 'कहीं कोई देख न ले' इस आशंका से वह राजा का नीचे लटकता हुआ हाथ ऊपर रखकर वहाँ से चली जाती है। उसके स्पर्श से जागकर राजा भी पुकारता हुआ उसके पीछे चलता है परन्तु द्वारबन्ध से टकराकर रुक जाता है और सोचने लगता है कि यह सत्य था या स्वप्न । पुनः विदूषक से वह वासवदत्ता के जीवित होने के सम्बन्ध में बताता है परन्तु वह उसे स्वप्न की बात कहकर टाल देता है। इसके पश्चात् कञ्चुकी द्वारा रुमण्वान् के ससम्य वहाँ आने का समाचार पाकर वह तुरन्त अपने शत्रु आरुणि को पराजित करने के लिए प्रस्थान करता है

कुछ काल पश्चात् घोषावती नामक वासवदत्ता की प्रिय वीणा पाकर राजा का दुःख फिर हरा हो जाता है और वह नाना प्रकार से विलाप करता है। इसी समय वासवदत्ता के माता-पिता द्वारा प्रेषित धात्री और कञ्चुकी वहाँ आकर महासेन का संदेश देते हैं कि उन्होंने आप दोनों का विवाह चित्र बनाकर कर दिया है और विवाह का परिचायक चित्र राजा को समर्पित कर देते हैं। चित्र में वासवदत्ता को देखकर पद्मावती कहती है कि ऐसी रूप रेखावाली स्त्री तो यहीं रहती है। राजा उसे लाने का आदेश देते हैं। इतने में यौगन्धरायण आकर अपनी बहन को लौटाने की प्रार्थना करता है। पद्मावती वासवदत्ता को लेकर लौटती है। वासवदत्ता धात्री द्वारा पहचान की जाती है और शीघ्र ही यौगन्धरायण भी पहचान लिया जाता है। सर्वत्र आनन्द छा जाता है और नाटक का सुखमय अन्त होता है।

1.9.1 प्रथम-अङ्क का सार-

प्रथम अंक में बलरामजी की प्रार्थना के बाद प्रस्तावना होती है और उसी समय सूत्रधार हटो-हटो सज्जनों, हटो की आवाज सुनकर कहता है कि पद्मावती के अनुचरों द्वारा तापस वर्ग क्रूरता-पूर्वक हटाया जा रहा है और फिर इसी हटाने के दृश्य से कथा

का श्रीगणेश होता है। इसी समय उदयन का प्रधान मन्त्री यौगन्धरायण स्वयं परिव्राजकवेश में आवन्तिका वेशधारिणी वासवदत्ता के साथ तपोवन में आता है। वासवदत्ता हटो हटो की तिरस्कार पूर्वक घोषणा सुनकर अपमान भय से व्याकुल होती है परन्तु यौगन्धरायण 'चकनेमिक्रम' से भाग्य की परिवर्तन शील दशा का उल्लेख कर उसका समाधान करता है और फिर उसके कहने पर कञ्चुकी का निर्देश पाकर सिपाही भी यह अपमान पूर्व हटाने का कार्य बन्द कर देते हैं। कुछ समय पश्चात् पद्मावती का कञ्चुकी घोषणा करता है कि कौन क्या चाहता है। आकर माँगे। परन्तु कोई भी आश्रमवासी किसी वस्तु की याचना नहीं करता। इसी समय यौगन्धरायण आगे बढ़ कर अपने प्रार्थी होने की बात कहता है और कञ्चुकी के पूछने पर वह अपनी बहन आवन्तिका को पद्मावती के संरक्षण में रखने की प्रार्थना करता है। कञ्चुकी पद्मावती से कहता है कि और सब कुछ तो दिया जा सकता है परन्तु न्यास का रक्षा कठिन है अतः यह प्रार्थना स्वीकार न करें परन्तु पद्मावती कहती है कि कौन क्या चाहता है? यह घोषणा करके अब याचक को खाली लौटाना उचित नहीं। इतना कहकर वह उसे अपने संरक्षण में ले लेती है। यौगन्धरायण यह देखकर कृतज्ञता प्रकट करता है। इसी समय एक ब्रह्मचारी तपोवन में विश्राम करने के लिए रुकता है और प्रसंगवश लावाणक के अग्निकाण्ड में वासवदत्ता तथा उसे बचाने के प्रयास में यौगन्धरायण के जल मरने की घटना सुनाकर राजा के उसके वियोग में दुखी होकर उसी अग्नि में कूदकर मरने की चेष्टा करने तथा मन्त्रियों द्वारा उसकी प्राण-रक्षा करने आदि का विवरण बताता है। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी तथा तदनन्तर पद्मावती की अनुमति लेकर यौगन्धरायण वहाँ से चले जाते हैं। कञ्चुकी द्वारा सन्ध्या होने की सूचना पाकर पद्मावती और वासवदत्ता तापसी से आशीर्वाद लेकर आश्रम (कुटिया) में प्रवेश करती है और प्रथम-अङ्क समाप्त होता है।

1.9.2 द्वितीय-अङ्क का सार-

द्वितीय-अङ्क के प्रारम्भ में चेटी माधवी लताकुञ्ज के निकट पद्मावती के गेंद खेलने का समाचार देती है। तदनन्तर पद्मावती वासवदत्ता के साथ बातें करती हुई प्रविष्ट होती है। इस अवसर पर वासवदत्ता पद्मावती के खेलने के कारण लाल हुए हाथों को देखकर कहती है कि 'तुम्हारे हाथ मानों दूसरे के हो रहे हैं' और फिर आगे चलकर कहती है कि 'तुम्हारा वरमुख आसन्न ही दिखाई पड़ता है'। इस प्रकार नाटककार ने दो सखियों के परिहास पूर्ण वार्तालाप के द्वारा विवाह की दिशा में तीव्रता पूर्वक प्रगति की है। आगे चलकर पद्मावती के विवाह की चर्चा छिड़ती है और चेटी द्वारा बताया जाता है कि राजा महासेन के पुत्र के साथ सम्बन्ध की चर्चा चल तो रही है परन्तु राजकुमारी

पद्मावती उसे म व्याहकर उदयन के गुणों पर अनुरक्त होकर उसी से विवाह की कामना करती है। इसी समय धात्री उनके पास पहुँचकर पद्मावती को वाग्दान द्वारा वत्सराज उदयन को दिए जाने तथा उदयन द्वारा उसे स्वीकार किए जाने की सूचना देती है, और पद्मावती के कौतुक मंगल की तैयारी की सूचना देकर दोनों को शीघ्र ही महल में पहुँचने के लिए वहती है, जिसे सुनकर वासवदत्ता को अपना दिल अन्धकार में डूबता हुआ सा जान पड़ता है और वह खिन्न हो उठती है। धात्री राजकुमारी पद्मावती को कहती है चलिए शीघ्र चलिए और अङ्क समाप्त हो जाता है।

1.9.3 तृतीय-अङ्क का सार-

तृतीय-अङ्क में उदयन के साथ पद्मावती के विवाह से खिन्न वासवदत्ता प्रफुल्लित मन से अपने दुखी मन को सान्त्वना देने के लिए प्रविष्ट होती है और अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहाती हुई कहती है- “आर्यपुत्र भी आज पराये हो गये।” इसी समय एक दासी वासवदत्ता को ढूँडती हुई वहाँ आती है और पूछने पर बताती है कि वर तो शरचाप हीन कामदेव ही है तथा फिर कहती है कि हमारी महारानी ने कहा है कि आप क्योंकि कुलीन और निपुण हैं। अतः यह कौतुक माला गूँथ दें। वासवदत्ता माला बनाने की सामग्री लेकर उसमें से दो औषधियाँ उठाकर उनके सम्बन्ध में पूछती है। चेटी बताती है कि उनमें से एक औषधि का नाम है- अविधवाकरण तथा दूसरी का सपत्नीमर्दन। वासवदत्ता प्रथम की उपयोगिता स्वयं और पद्मावती के लिए स्वीकार कर उसका माला में गूँथना स्वीकार कर लेती है परन्तु दूसरी को न गूँथने के लिये यह बहाना बना देती है, क्योंकि उसकी प्रथम पत्नी दिवंगत हो चुकी है। अतः यह अनावश्यक है। चेटी उसकी बात को स्वीकार कर कहती है कि आप शीघ्र ही माला तैयार कर दें क्योंकि स्वामी मणि भवन में स्नान कर रहे हैं और स्नान के तत्काल पश्चात् इसकी आवश्यकता होगी। वासवदत्ता सुन्दर हार तैयार करती है। दूसरी चेटी आकर हार ले जाती है। उसके जाने के पश्चात् वासवदत्ता अपने दुःख को हल्का बनाने के विचार से शयनागार में जाती है और यह कहती हुई लेट जाती है कि चलो बिस्तर पर ही लेट लिया जाये जिससे यदि नींद आ जाये तो दुःख का भार हल्का हो और इसके साथ ही तृतीय-अङ्क समाप्त होता है।

1.9.4 चतुर्थ-अङ्क का सार-

चतुर्थ-अङ्क के प्रारम्भ में विदूषक राजा उदयन के पद्मावती के विवाह पर प्रसन्नता प्रकट करता हुआ तथा अपच (अजीर्ण) विषयक चिन्ता प्रकट करता हुआ विदूषक रंगमञ्च पर आता है और जबकि वह आहार न पचने की शिकायत लेकर चिन्तामग्न ही रहता है कि एक दासी उसे खोजती हुई वहाँ आती है और पूछती है कि जामाता स्नान

आदि से निवृत्त हो चुके या नहीं? विदूषक इस प्रश्न का कारण पूछता है तो चेटी कहती है कि जिससे चन्दन, हार आदि ले आऊँ। विदूषक उस राजा के स्नान कर चुकने का समाचार देता हुआ भोजन छोड़कर अन्य सब कुछ ले आने के लिये कहता है। दासी यह सुनकर कारण पूछती है और उससे परिहासपूर्वक ऐसा ही हो कहकर चली जाती है।

तदनन्तर पद्मावती वासवदत्ता और चेटी प्रमदवन में पहुँचते हैं और वहाँ शोफालिका के फूलों को देखकर पद्मावती प्रसन्नता व्यक्त करती है। चेटी उसके लिए फूल चुनती है। इस अवसर पर तीनों में जो वार्तालाप होता है, उससे पद्मावती और वासवदत्ता को राजा के प्रति एक दूसरे के प्रेम की गम्भीरता का ज्ञान होता है। इसी अवसर पर राजा और विदूषक भी वहीं जा पहुँचते हैं। उन्हें देखकर उनकी दृष्टि से बचने के लिए वासवदत्ता आदि माधवीलतामण्डप में चली जाती है। दोनों कुछ समय बाहर शिला तल पर ही बैठते हैं और राजा फूलों की दर्शनीयता की प्रशंसा करता है। सहसा विदूषक के यह कहने पर कि शीतकाल का आतप सर्वथा असह्य है, राजा विदूषक सहित माधवीलता मण्डप में प्रवेश करना चाहता है परन्तु बने बनाये खेल को बिगड़ता देखकर पद्मावती के इंगित पर दासी अपनी उस आश्रयभूत लता को हिलाकर भौरों को उड़ाती है और उन्हें बाहर ही रोक देती है। राजा और विदूषक उस संकट से बचने के लिये बाहर ही बैठ जाते हैं। पद्मावती आदि इस संकट को इस प्रकार टलता हुआ देखकर सुख की साँस लेती है। इसी समय विदूषक राजा से पूछता है कि आपको पद्मावती और वासवदत्ता में से कौन अधिक प्रिय है? राजा पहले तो बात को टालने का प्रयत्न करता है परन्तु बाद में विदूषक के अत्यधिक आग्रह को देखकर कहता है कि- यद्यपि रूप, शील, माधुर्य आदि गुणों के कारण पद्मावती मुझे प्रिय है, परन्तु वासवदत्ता में आवद्ध उसके मन को वह उतना और उस रूप में अद्यावधि आकर्षित नहीं कर पाई है। इस कथन को सुनकर वासवदत्ता मन ही मन अपने भाग्य की सराहना, चेटी उसकी अनुदारता के प्रति वितृष्णा तथा पद्मावती उसकी विशाल हृदयता तथा प्रेमपूर्ण भावना की प्रशंसा करती है। इसके पश्चात् राजा विदूषक से वही प्रश्न करता है और यह सुनकर पद्मावती क्रोध से चिल्लाती है। विदूषक भी पहले राजा की भाँति उत्तर देने में बार बार टालने की कौशिश करता है, परन्तु राजा द्वारा सत्य की शपथ देने पर वासवदत्ता के गुणों की प्रशंसा करता हुआ अप्रत्यक्ष रूप से वासवदत्ता की प्रशंसा में कहता है कि उसमें अन्य दूसरे गुणों के साथ साथ यह एक और महान गुण था कि सुस्वादु सुस्निग्ध भोजन लेकर मुझे (खिलाने के लिए) ढूँढा करती थी। इस परिहास से राजा की वासवदत्ता विषयक स्मृति ताजी हो जाती है और वह तुमने इस प्रकार के परिहास द्वारा मेरे मन को खिन्न कर

डाला है, कहते हुये क्रन्दन करता है। विदूषक मुख धोने के लिये पानी लाने जाता है। अवसर पाकर वासवदत्ता पद्मावती को राजा के पास भेजकर वहाँ से खिसक जाती है। जैसे ही पद्मावती राजा के पास पहुँचती है विदूषक भी कमल के पते में जल लेकर वहीं जा पहुँचता है और पद्मावती के पूछने पर कि यह क्या है पहले तो उसे टालने का प्रयत्न करता है, परन्तु बाद में कास के फूलों की धूल आँखों में गिर जाने से राजा की आँखों में आँसू आने का व्याज पूर्ण कारण बताता है। पद्मावती मन ही मन उसकी चतुराई की प्रशंसा करती है। उनके सिखाने पर राजा भी अपने अश्रुपात का कारण उपरोक्त ही बताता है। इसके पश्चात् विदूषक राजा से कहता है कि सम्भवतः मगधराज आपके साथ आज अपराह्न में अपने मित्रों, वन्धुबान्धवों से मिलना चाहते हैं। अतः आपको अब चलना चाहिए। राजा इस कार्य को प्राथमिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार करता है और चतुर्थ-अङ्क समाप्त होता है।

1.9.5 पञ्चम-अङ्क का सार-

पञ्चम-अङ्क के प्रारम्भ में मधुकरिका एवं पद्मिनिका के वार्तालाप द्वारा पद्मावती की सिरदर्द की सूचना मिलती है और मधुकरिका को एतद् विषयक सूचना आवन्तिका को देने के लिए कहकर पद्मिनिका स्वयं विदूषक को ढूँढकर उसे इस बात से अवगत कराती है और यह समाचार शीघ्र ही राजा तक पहुँचाने के लिए कहती है। इसके पश्चात् पद्मिनिका स्वयं लेप तैयार करने के लिए तथा विदूषक राजा को इस समाचार से अवगत कराने के लिए जाते हैं। प्रवेशक के पश्चात् वासवदत्ता के वियोग में दुखी राजा मञ्च पर आता है। इसी समय विदूषक वहाँ पहुँचकर पद्मावती के सिर दर्द का समाचार राजा को देता है। राजा उसके कथन की पुष्टि में पद्मिनिका का नाम सुनकर उसके साथ 'समुद्रगृह' की ओर बढ़ता है। समुद्रगृह के द्वार पर पड़ी हुई माला को सर्प समझकर राजा तथा सामाजिकों के लिए मनोरंजन का एक अवसर उत्पन्न करता है। इसके पश्चात् दोनों समुद्रगृह में प्रवेश करते हैं। वहाँ पद्मावती को न पाकर उसकी प्रतीक्षा करने के अभिप्राय से राजा पद्मावती के लिए बिछाई गई शैय्या पर लेट जाता है और विदूषक से समय व्यतीत करने के लिए कोई कहानी सुनाने को कहता है। परन्तु विदूषक की निरर्थक बातों से निरास होकर तथा सायंकाल की ठण्डी हवा पाकर शीघ्र ही निद्रा देवी की गोद में जा लेटता है। विदूषक उसे सोया हुआ देखकर टंड से बचने के लिए कम्बल लेने के लिये चला जाता है। इधर चेटी के साथ वासवदत्ता वहाँ पहुँचती है। चेटी उसे वहाँ छोड़कर स्वयं मस्तिष्क में लगाने के लिए लेप लाने के लिये चली जाती है। वासवदत्ता भीतर प्रवेश करती है और वहाँ सोये हुये राजा को पद्मावती समझकर तथा अलग बैठने से प्रेम

में कमी प्रतीत होगी सोचकर उसके पास हो पलंग पर लेट जाती है। उसके लेटते ही राजा सपनों की दुनिया में खोकर बड़बड़ाने लगता है। वासवदत्ता उसका निज विषयक सम्बोधन सुनकर तथा उसे पहचान कर तुरन्त उठ बैठती है। इधर राजा स्वप्न में वासवदत्ता को सामने पाकर उससे प्रणय पूर्ण वाक्यों में अपने मन की दशा का वर्णन करता है। अनुकूल एकान्त पाकर वासवदत्ता उसका यथावत् उत्तर देती है परन्तु शीघ्र ही उसे अपने अज्ञातवास का स्मरण हो आता है और वह कहीं कोई देख न ले इस भय से राजा के लटकते हुए हाथ को पलंग पर रखकर वहाँ से चली जाती है। वासवदत्ता के हाथ का स्पर्श पाकर राजा की निद्रा भङ्ग हो जाती है और वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ता है परन्तु द्वार पक्ष से टकराकर रुक जाता है। इस समय उसकी दशा किंकर्तव्यविमूढ सी हो जाती है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि जो कुछ उसके साथ घटित हुआ वह सत्य था या स्वप्न? परन्तु उसका अन्तर्मान न इसे सत्य ही मानने पर विवश करता है। इतने में विदूषक आता है। राजा उससे सारी घटना सुनाकर वासवदत्ता के जीवित रहने की सम्भावना व्यक्त करता है परन्तु विदूषक उसे स्वप्न की बात कहकर टाल देता है। राजा और विदूषक महल में लौट आते हैं। इतने में कञ्चुकी वहाँ आकर राजा उदयन को मगधराज दर्शक का यह सन्देश सुनाता है— रुम्णवान विशाल सेनावाहिनी के साथ यहाँ आ पहुँचा है। मगध की सेना भी प्रस्तुत है अतः अब आप उठें और अपने चिर-शत्रु आरुणि पर आक्रमण करें। उसकी बात सुनकर कहता है, अभी मैं घोर कर्म करने में चतुर आरुणि को समराङ्गण में पहुँचकर यमराज का आतिथ्य स्वीकार करने के लिये भेजता हूँ। राजा की इस उक्ति के साथ ही पञ्चम-अङ्क समाप्त हो जाता है।

1.9.6 षष्ठ-अङ्क का सार-

षष्ठ-अङ्क के विष्कम्भक में राजा महासेन प्रद्योत का रैभ्यस-गोत्रीय कञ्चुकी महासेन तथा अङ्गारवती का सन्देश लेकर उदयन के पास आता है। वह प्रतिहारी से कहता है कि जाकर राजा उदयन को सूचना दो कि अवन्तिराज महासेन द्वारा प्रेषित कञ्चुकी तथा महारानी अङ्गारवती द्वारा भेजी गई वासवदत्ता की धाय (धात्री) यहाँ आये हैं। प्रतिहारी राजा तक उनके आगमन की सूचना पहुँचाने में असमर्थता प्रकट करती हुई बताती है कि घोषवती बीणा के मिलने से राजा का वासवदत्ता सम्बन्धी दुःख हरा हो गया है अतः अभी उनके पास कुछ भी कहने के लिये जाने का अवसर नहीं है। यह सुनकर कञ्चुकी प्रतिहारी से कहता है तुम बिना संकोच किये हमारे आने की सूचना दे दो। प्रतिहारी राजा से निवेदन करने जाती है। इसके पश्चात् सूर्यमुख प्रासाद से उत्तरते हुए राजा का प्रवेश होता है। घोषवती को लेकर राजा अनेक प्रकार से विलाप करता है।

विदूषक उसे समझाता है। इसके पश्चात् कुछ धैर्य धारण कर राजा घोषवती वीणा की मरम्मत कराने के लिए उसे भेज देता है। विदूषक के जाने के पश्चात् अनुकूल अवसर पाकर प्रतिहारी उदयन को कञ्चुकी और धात्री के अवन्ति (उज्जैन) से पधारने की सूचना देती है। राजा उसे कहता है कि महाराज महासेन का सन्देश पद्मावती के साथ ही सुनना उचित होगा अतः तुम उन्हें बुला लाओ। पद्मावती के आ जाने पर राजा कञ्चुकी और धात्री को बुलवाता है। वे दोनों उपस्थित होते हैं। राजा सन्देश सुनने के लिये आसन से उठता है परन्तु कञ्चुकी यह कहकर कि यह सन्देश आप बैठकर ही सुनिये, उसे बिठा देता है और फिर इस प्रकार वे राजा महासेन का सन्देश देते हैं। धात्री कहती है, महारानी अङ्गारवती ने कहा है कि वासवदत्ता तो मर गई। मेरे या महाराज के लिये तो जैसे गोपाल और पालक प्रिय हैं वैसे ही तुम भी हो और पहले से ही जमाई मान लिये गये हो। इसीलिए तुम उज्जयिनी में लाये गये थे और बिना अग्नि को साक्षी किये वीणा सिखाने के बहाने वासवदत्ता तुम्हें सौंपी गई थी परन्तु अपनी चपलता के कारण बिना विवाह सम्पन्न हुये ही तुम चले गये, तब हम दोनों ने तुम्हारी और वासवदत्ता की तस्वीर चित्रपट पर उतारकर तुम दोनों का विवाह संस्कार सम्पन्न किया। अब चित्र तुम्हारे पास इस दृष्टि से भेज रहे हैं जिससे तुम्हें शान्ति मिले। यह कहकर वे राजा के सामने चित्र रख देते हैं। चित्र देखते ही पद्मावती राजा से कहती है, ऐसी एक स्त्री तो यहीं महल में रहती है। राजा उसे बुलाने की आज्ञा देते हैं। इसी समय सन्यासी वेश में यौगन्धरायण वहाँ आकर अपनी बहन को लौटाने की प्रार्थना करता है। पद्मावती वासवदत्ता को साथ लेकर लौटती है। महासेन की धात्री उसे देखते ही पहचान लेती है। कुछ देर राजा और यौगन्धरायण में वासवदत्ता को लेकर वादविवाद चलती है। फिर शीघ्र ही यह भी पहचान लिया जाता है और यौगन्धरायण के परामर्श पर सबका मिलकर महासेन से मिलने जाना तय होता है। सर्वत्र आनन्द छा जाता है और फिर भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

1.10 प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण-

1.10.1 वत्सराज उदयन -

‘स्वप्नवासवदत्तम्’ नाटक के नायक उदयन का सम्बंध भरतवंशी राजाओं के उच्चकुल से है। वह वत्सराज का शासक है एवं उसकी राजधानी कौशाम्बी है। मगधराजा ने उसके कुल विद्या, बल और सौंदर्य को देखकर उससे अपनी बहिन के विवाह का प्रस्ताव रखा था। कलाप्रेम उदयन कला प्रेमी है। संगीत कला के प्रति उसका विशेष अनुराग है। वासवदत्ता का वह सङ्गीतशास्त्रीय गुरु है। विवाह के उपरान्त पद्मावती भी

उससे वीणा वादन सीखने का प्रस्ताव रखती है। उसकी वीणा का नाम घोषावती है। घोषावती वीणा वासवदत्ता के प्रति उसके अनन्य प्रेम की प्रतीक और उसकी स्मृति का चिन्ह है।

अदर्श प्रेम- उदयन आर्दश प्रेमी की प्रतिमूर्ति है। वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम अगाध एवं उदात्त है। पद्मावती से विवाह हो जाने पर भी वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। वासवदत्ता की स्मृति उसकी पवित्र निधि है। भला वासवदत्ता को वह कैसे भूल सकता है, जो एक साथ उसकी शिष्या, पत्नी और प्रेयसी है।

दाक्षिण्य- वासवदत्ता के प्रेम में तल्लीन होकर भी वह पद्मावती के प्रति अपने कर्तव्यों की उपेक्षा नहीं करता। यह उसके दाक्षिण्य का पुष्ट प्रमाण है। पद्मावती इस तथ्य का स्वयं उल्लेख करती हुई कहती है- आर्या वासवदत्ता के गुणों को प्रमाण करते हुये भी वे दाक्षिण्य वश मेरे सामने नहीं रोते। इस उक्ति से उदयन के दाक्षिण्य का स्पष्ट संकेत मिलता है।

साहस और वीरता- उदयन के चरित्र के इस पक्ष की झलक उस समय मिलती है, जब वह आरुणि पर विजय प्राप्त करने के लिए समर प्रयास की तैयारी करते समय यह कहता है- “उपेन्द्र नागेन्द्र तुरंग तमारुणिं दारुणकर्मदक्षः विकीर्ण वाणोग्रतरंगमङ्गमहार्णवामे युधिना शयामि.....।” किंतु नाटक में उसके चरित्र का वह पक्ष अधिक नहीं उभरा है।

गुणज्ञता- उदयन के चरित्र में गुणज्ञता और कृतज्ञता का महान गुण है। वह आरुणि पर अपनी विजय को महासेन और प्रद्योत के स्नेह और आशीर्वाद का फल मानता है। दूसरे के गुणों की यथावसर प्रशंसा करने से वह नहीं चूकता।

विनम्रता- अपने बड़ों के प्रति विनम्रता का भाव भी उदयन के चरित्र की प्रमुख विशेषता है। यौगन्धरायण ने उदयन की इस विनम्रता को निम्नलिखित शब्दों में रेखाङ्कित किया है- “भरतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवान् शुचि।”

धीरललित नायक- नाट्य शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार उदयन एक धीरललित नायक है। उसका चरित्र आदर्श एवं उदात्त है। वह परकीया से छिप कर प्रेम करने वाला विलासी नायक ही है। वह कोमल हृदय तथा कला प्रेमी है। उपर्युक्त विवेचन से उदयन के चरित्र के विभिन्न पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

1.10.2 वासवदत्ता-

‘स्वप्नवासवदत्तम्’ नाटक की नायिका वासवदत्ता उज्जयिनी के राजा महासेन प्रद्योत की पुत्री और उदयन की शिष्या, पत्नी और प्रेयसी है। अपने उच्चकुल के अनुरूप उसमें

स्वाभिमान की भवना है। मगध के राज भवन में अवन्तिका के रूप में रहते हुये भी महारानी उसके महाकुलप्रसूत होने के बारे में आश्वस्त है।

आदर्श प्रेम- वासवदत्ता आदर्श प्रेम की प्रतीमूर्ति है। उदयन के प्रति उसका प्रेम अगाध एवं अनन्य है। उसका उदात्त प्रेम अपने प्रिय के हित के लिये उसे अपूर्व त्याग की प्रेरणा देता है। परिणाम जानते हुये भी वह राजा के हित के लिये यौगन्धरायण की योजना में अपना सहयोगी देना स्वीकार करती है। यह प्रेम की वेदी पर एक नारी का अपूर्व आत्म बलिदान है। उसका आदर्श प्रेम विश्वास के ठोस धरातल पर टिका है।

निर्मल चरित्र- वासवदत्ता पतिव्रता नारी है जो अज्ञातवास के दौरान अपने चरित्र की पूरी जागरूकता के साथ रक्षा करती है। वह प्रोषितभर्तृका के रूप में पर पुरुष को देखने तथा चर्चा सुनने से भी परिहार करती है।

सहिष्णुता और संयम- वासवदत्ता के चरित्र में आत्म त्याग के साथ साथ सहिष्णुता और संयम का भी विलक्षण गुण विद्यमान है। वह अपने दुःखों को पूरी सहनशीलता से और अपने हृदय को पूर्ण संयम से संभालती है। वह एकांत में ही अपनी पीड़ा को सहलाती है।

हृदय की उदारता- वासवदत्ता एक उदार हृदया नारी है। पद्मावती को अपनी सौतन के रूप में जानती हुई भी वह उससे अत्यधिक स्नेह करती है। वह सदा उसकी कुशलता और स्वास्थ्य की कामना करती है। कहीं भी वह पद्मावती के प्रति कटुता और ईर्ष्या का भाव प्रदर्शित नहीं करती।

कला निपुणता- वासवदत्ता कलाओं में निपुण है। वीणा वादन तथा माला गुम्फन में भी वह अति प्रवीण है। मनोविनोद करने में भी दक्ष है तथा अतीव प्रत्युत्पन्न मति युवती है। वासवदत्ता आदर्श प्रेम और त्याग की प्रतिमूर्ति है। वह पति के अनन्य प्रेम की स्वामिनी है, अतएव वह धन्य है। वासवदत्ता में उत्तम नायिका के सभी गुण विद्यमान हैं।

1.10.3 पद्मावती-

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की उपनायिका पद्मावती का सम्बन्ध मगध के राजकुल से है। वह मगध राज दर्शक की बहिन है। उसका चरित्र और व्यवहार पद-पद पर उसके उच्चकुल की सूचना देते हैं। अपने उच्चकुल के अनुरूप वह अनुपम सौंदर्य से सम्पन्न है।

शील- पद्मावती शील, श्रेष्ठ-स्वभाव और उदात्त चरित्र की प्रतिमूर्ति है। धर्मानुराग, धीरता, चरित्र की दृढ़ता, गुणग्राहिता, उदारता, गुरुजनों के प्रति आदरमान उसके चरित्र के विशेष गुण हैं। क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों का उसके चरित्र में अभाव है। अपनी धार्मिक वृत्ति के अनुरूप वह आश्रमवासियों को इच्छानुकूल दान करती है। उदयन उसे धीर

स्वभावा कहता है। उदयन को वासवदत्ता में अनुरक्त जानकर भी वह मन ईर्ष्या परायण नहीं होता। पद्मावती के हृदय की उदारता नाटक में सर्वत्र अंकित है।

माधुर्य- पद्मावती माधुर्य की प्रतिमूर्ति है। मधुर वाणी और मधुर व्यवहार उसके चरित्र के स्वाभाविक गुण हैं। माधुर्य का अनन्यतम रूप उसकी कोमल अनुराग भावना है जिसकी अभिव्यक्ति वह अभिजात्य-प्रेरित शालीनता के साथ करती है। उदयन के प्रति उसके अनुराग का आधार उदयन का कोमल हृदय होता है। पद्मावती स्वयं कोमल हृदया है। अतः उसका कोमल हृदय पर अनुरक्त होना स्वाभाविक है। उदयन के प्रति अपने अनुराग को वह विवाह के अनन्तर भी प्रकारान्तर से अथवा संयत शब्दों में ही कहा करती है। पद्मावती की गुण ग्राहिता अपूर्व है। उदयन के मुंह से अपने बारे में- “वासवदत्ता बद्धं न तु तावन्मे मनोहरति” यह बात सुनकर वह राजा को दाक्षिण्य हीन नहीं कहती प्रत्युत इस बात में वह राजा का दाक्षिण्य गुण देखती है कि वह अभी तक वासवदत्ता के गुणों को याद करता है। अपने प्रिय की पूर्व पत्नी वासवदत्ता के स्वजनों को वह अपना स्वजन मानती है। एवं उनके प्रति पूर्ण आदरभाव और स्नेह प्रकट करती है। कुल मिला कर पद्मावती सौंदर्य शील और माधुर्य भरित अनुराग की प्रतिमूर्ति है। नाटक में उसकी स्थिति इसलिये प्रतिनायिका की न होकर उपनायिका की है।

1.10.4 यौगन्धरायण-

यह वत्सराज उदयन का मन्त्री एवं राजनीति में चाणक्य के समान अत्यन्त दूरदर्शी व कुशल है। नाटक में यद्यपि उससे साक्षात्कार प्रथम एवं षष्ठ-अंक में होता है तथापि वह नाटक का एक महत्वपूर्ण पात्र है। नाटक का सम्पूर्ण घटनाचक्र उसी के बुद्धिकौशल से चल रहा है। नाटक में उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषतायें अभिव्यक्त हुई हैं -

स्वामिभक्त- स्वामिभक्ति उसके चरित्र की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। वह स्वाभिभक्ति की भावना से परिपूर्ण है। अपने स्वामी तथा राज्य हित के लिये वह सर्वस्व त्याग सकता है। नाटक में अपने स्वामी उदयन के हित सम्पादन हेतु उसने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना किया है। अपने स्वामी को संकट से निकालने के लिये उसने अनेक योजनायें बनाईं। उसकी स्वामिभक्ति पर उदयन की पटरानी वासवदत्ता को भी पूरा विश्वास था। इसीलिये उसने अपने पति की उन्नति के लिये उस पर पूर्ण विश्वास करते हुये उसकी योजना को सफल बनाने में पूरा सहयोग प्रदान किया। जब उसे अवन्तिका के वेश में यौगन्धरायण पद्मावती के पास न्यास के रूप में सौंपता है तब वह कहती है- “इह मां निक्षेप्तुं कामं आर्य यौगन्धरायणः। भवतु अविचार्य कार्यं न करिष्यति।” वासवदत्ता की प्राप्ति, उदयन की महासेन की बन्धन से मुक्ति, प्रद्योत

की सेना को पराजित करना, पद्मावती के साथ उदयन का विवाह तथा शत्रु द्वारा अधिकृत राज्य की पुनः प्राप्ति आदि सम्पूर्ण कार्यों में यौगन्धरायण की ही बुद्धि व पराक्रम सफलता के कारण थे। इस बात को स्वयं राजा उदयन ने भी अनुभव किया। उसने नाटक के अन्तिम अंक में उसकी योग्यता के अनुरूप ही उसकी प्रशंसा की

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।

भवद्यन्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धताः॥

गुणी एवं गुण ग्राहक- यौगन्धरायण स्वयं गुणी है तथा दूसरे के गुणों का ग्राहक भी है। उसमें दूसरे के गुणों को पहचानने की अद्भुत क्षमता है। रूमण्वान् द्वारा किये गये परिश्रम को सुनकर वह उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है-

अहो महद्भारमुद्धरति रूमण्वान् कुतः

सविश्रमो ह्यदयं भारः प्रसक्तस्य तु श्रमः।

तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः॥

निरभिमानी: बुद्धिकौशल, गुणग्राहकता एवं स्वामिभक्ति से ओतप्रोत होने पर भी उसमें लेशमात्र भी अभिमान की भावना नहीं है। कहीं पर भी हमें उसकी गर्वोक्ति सुनाई नहीं देती। वह कहता है- “स्वामिभाग्यानुगन्तारो वयम्।” नाटक के अन्तिम अंक में जब उदयन को खोयी हुई वत्सभूमि तथा वासदवदत्ता की पुनःप्राप्ति हो जाती है, उस समय यौगन्धरायण उसके पैरों पर गिर पड़ता है। यह स्वामिभक्ति की पराकाष्ठा है। उस समय वह कहता है कि यह सम्पूर्ण प्रपञ्च उसने इसलिए रचा जिससे कि राज्य विस्तार हो तथा पद्मावती से विवाह सम्पन्न हो। वास्तव में वह एक आदर्श मन्त्री है। संक्षेप में वह चाणक्य का पटु शिष्य है। वह एक ब्राह्मण मन्त्री का यथार्थ प्रतिरूप, युद्धकाल का वीर सेनापति, शान्तिकाल का कुशल शासन प्रबन्धकर्ता तथा आपत्ति के समय राजा को समुचित परामर्श देने वाला दृढ़ सचिव है।

1.10.5 रूमण्वान्- रूमण्वान् वत्सराज उदयन का आमास्य है। इसका यद्यपि स्पष्ट उल्लेख नाटक में नहीं हुआ है तथापि दो बार प्रसंगवश इसके सम्बन्ध में कहा गया है। पहली बार प्रथम अंक में ब्रह्मचारी तथा यौगन्धरायण द्वारा तथा दूसरी बार पञ्चम-अङ्क के अन्त में कंचुकी द्वारा और यह सब अत्यल्प होता हुआ भी रूमण्वान् के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिये पर्याप्त है। उक्त दोनों प्रसङ्गों के आधार पर कहा जा सकता है कि रूमण्वान् अतीव स्वामिभक्त, योजनानुसार कार्य करने वाला, अपने साथियों का सच्चा सहयोगी, अद्वितीय योद्धा तथा कुशल सेनापति है। ब्रह्मचारी उसके सम्बन्ध में यह बताते हुए कहता है कि किस प्रकार सयत्न वह राजा की परिचर्या में रत है। उसका राजा में

ऐसा दृढ़ अनुराग है कि यदि आज राजा दिवंगत हो जायें तो वह भी उसके पीछे ही दिवंगत हो जायेगा। ब्रह्मचारी के कथन को सुनकर उसका प्रमुख सहयोगी यौगन्धरायण भी उसकी प्रशंसा करने के लिये बाध्य हो जाता है और मन ही मन कह उठता है- निश्चय ही रुमण्वान् एक महान् भार को वहन कर रहा है। दूसरे जिसकी प्रशंसा करें निश्चय ही वही महान् और गुणी होता है अतः उसकी महानता असंदिग्ध। पञ्चम-अंक के अन्त में वह वीर योद्धा तथा कुशल सेनापति के रूप में हमारे सामने आता है। कंचुकी उसके आने की सूचना इस प्रकार देता है- महाराज दर्शक ने आपको सूचित किया है कि आपका आमात्य रुमण्वान् एक विशाल सेना लेकर आ पहुँचा है तथा मगध की सेना भी आपकी सहायतार्थ प्रस्तुत है अतः आप अपने शत्रु से बदला लेने के लिए प्रस्थान करें। इन शब्दों को सुनते ही वत्सराज उदयन अपने शत्रु का मानमर्दन करने के लिये तीव्रगति से प्रस्थान कर देता है। इससे स्पष्ट ध्वनित होता है कि राजा को अपने आमात्य रुमण्वान् की कुशलता पर पूरा विश्वास है और इसीलिए यह सोस्साह अपने दुर्दान्त शत्रु आरुणि को युद्ध में नष्ट करने की बात कहता है और अपनी सारी प्रगल्भता तथा उदासीनता को भुलाकर युद्ध के लिए प्रस्थान कर देता है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि यद्यपि 'स्वप्नवासवदत्तम्' में रुमण्वान् की विशेषताओं को प्रस्तुत करने का स्पष्ट प्रयत्न नहीं हुआ है तथापि प्रसंगवश नाटककार ने उसके चरित्र को पूर्ण कुशलता के साथ प्रस्तुत कर उसकी और अपनी महत्ता से सामाजिक वर्ग को सन्तुष्ट बनाने का सफल प्रयास किया है।

1.10.6 विदूषक (वसन्तक)-

वसन्तक(विदूषक) उदयन का नर्मसचिव है। वह अपनी हास्योत्पादक शारीरिक मुद्रा, वेषभूषा तथा चेष्टाओं से राजा का मनोरंजन करता है। विदूषक प्रायः प्रत्येक अवसर पर खाने पीने की बात करता है। राजा के विवाह के अवसर पर मगध के राज-प्रासाद में वह देवलोक सा आनन्द अनुभव करता है। पद्मावती के प्रति उसके विशेष आदर भाव का कारण यह है कि वह हरदम सिन्ध भोज्य पदार्थ लेकर उसे अन्वेषण करती है। विदूषक निरक्षर और स्थूलबुद्धि का ब्राह्मण है। नगर और राजाओं के नामोच्चार में भी वह भ्रम पैदा करता है। वसन्तक राजा का विश्वास पात्र, कुशल मित्र तथा सलाहकार भी है। राजा कोई भी बात उससे छिपाकर नहीं रखता। विदूषक को भी सदैव राजा का हित ही ध्यान में रहता है। कष्ट के समय राजा को धैर्य धारण करने और उसका मनोज्ञन करने के कार्य को वह पूरा तत्परता और कुशलता से निभाता है। अनपढ़ होने पर भी सुसंस्कृत

एवं विनय सम्पन्न है। कुल मिलाकर वसन्तक राजा का नर्म सचिव होने के साथ साथ उसका मार्ग दर्शक तथा हितचिन्तक मित्र भी है।

1.10.7 स्वप्नवासवदत्त नाटक के पात्र-परिचय :

1.10.7.1 पुरुषपात्र

- राजा - उदयनो नाम वत्सेश्वरः।
विदूषकः - वसन्तकनामा उदयनसखा।
यौगन्धरायणः - उदयनस्य प्रधानामात्यः।
ब्रह्मचारी - लावाणके वेदाध्यायी कश्चिद् विद्यार्थी।
सूत्रधारः - नाटकीयकथावस्तुनो सञ्चालकः, दिग्दर्शकः।
काञ्चुकीयः - अन्तःपुरचारीसेवकः।
दर्शकः - मगधेश्वरः पद्मावत्या भ्राता।
प्रद्योतः - महासेननामकः अवन्त्याधिपति, वासवदत्तायाः पिता।
रुमण्वान् - उदयनस्य मन्त्री, सेनापतिश्च।
ब्रह्मदत्तः - काम्पिल्याधिप।
आरुणिः - उदयनस्य शत्रुः।

1.10.6.2 स्त्रीपात्र

- वासवदत्ता- उदयनस्य भार्या, आवन्तिकाऽभिधा च।
पद्मावती- दर्शकस्य भगिनी, उदयनस्य द्वितीया पत्नी।
तापसी- आश्रमवासिनी काचिद् वृद्धा स्त्री।
चेटी- पद्मावत्या परिचारिका।
धात्री- पद्मावत्या उपमाता।
विजया- उदयनस्य द्वारपालिका प्रतीहारी।
महादेवी- आश्रमवासिनी महाराज दर्शकस्य माता।
अवन्ति सुन्दरी- मगधप्रासादनिवासिनी काचिद्यक्षी।
अङ्गारवती- वासवदत्ताया माता तथा प्रद्योत महासेनस्य प्रधानमहिषी च।
कुञ्जरिका- पद्मावत्याः परिचारिका।
विरचिका- उदयनस्य प्रेमिका, काचित् तदाश्रिता स्त्री।

1.11 स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के महत्त्वपूर्ण पद्यों की सप्रसङ्ग व्याख्या :

श्लोक-1.3

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-

मार्नार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते।

उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः

कोऽयं भो! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया।।

अन्वय- धीरस्य आश्रमसंश्रितस्य वसतः वन्यैः फलैः तुष्टस्य मानाऽर्हस्य वल्कलव जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते। भोः! उत्सिक्तो विनयात् अपेतपुरुषः चलैः भाग्यैर्विस्मितः अयं कः निभृतम् इदं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति।

शब्दार्थ- धीरस्य = धैर्ययुक्तस्य, स्थिरचित्तस्येति भावः। आश्रमसंश्रितस्य = तपोवनाश्रितस्य, वसत = निवासं कुर्वतः, वन्यैः = अरण्योत्पन्नैः, फलैः = सस्यैः, कन्दमूलप्रभृतिभिरिति भावः। तुष्टस्य = प्रीतस्य, मानाऽर्हस्य = सत्कारयोग्यस्यः, वल्कलवतः = परिहितवल्कलस्य, जनस्य = तपस्विलोकस्य, त्रासः = भयम्, समुत्पाद्यते = समुद्भाव्यते। भोः = है भट्टाः!, उत्सिक्तः = गर्वितः, विनयात् = नम्रतायाः, अपेतपुरुषः = अपगतजनः, एवं च चलैः = चञ्चलैः अस्थिरैरिति भावः। तादृशैः भाग्यैः = सम्पत्तिशालितास्वरूपैरिति भावः। विस्मितः = आश्चर्याऽन्वितः, अयम् = एषः, कः = अधिपः, निभृतं = निश्चलं, इदम् = एतत्, तपोवनम् = तापसाश्रमम्, आज्ञया = आदेशेन, ग्रामीकरोति = संवसतीकरोति, तपोवनमपि उत्सारणरूपकोलाहलेन ग्रामरूपतां प्रापयतीति भावः।

श्लोकार्थ- धीर आश्रमवासी तथा स्थिरचित्त वाले, वन के कन्दमूल फलोंसे सन्तुष्ट, सम्मानके योग्य और वल्कल धारण करनेवाले आश्रमवासी जनों को त्रास दिया जा रहा है। नश्वर सम्पत्ति से प्रमत्त हुआ ऐसा कौन बेशर्म तथा विनय शुन्य पुरुष है जो अपनी आज्ञा से शान्त तपोवन को अशान्त सा बना रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- आश्रमसंश्रितस्य- आश्रमं संश्रितः, तस्य, द्वितीयातत्पुरुष समास। तुष्टस्य तुष्टु+क्तः। मानाऽर्हस्य- मानम् अर्हतीति मानाऽर्हः, उपपद तत्पुरुष समास। मानार्हः- मान+अर्ह+अच् । वल्कलवतः- वल्कले अस्ति यस्य स वल्कलवान्, तस्य, बहुव्रीहि समास। वल्कलवतः- वल्कल+वतुप्। उत्सिक्तः- उद्+सिच्+क्तः। अपेतपुरुषः- अपेताः पुरुषाः यस्य स, बहुव्रीहि समास। चलैः- चलन्तीति चलानि, तैः, तत्पुरुष समास। विस्मितः- वि+स्मि+क्तः। इस पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है, उसका लक्षण है- “सूर्याऽश्वैर्मसजास्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।”

श्लोक-1.4

पूर्व त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छलाघ्यं गमिष्यति पुनर्विजयेन भर्तुः।

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना

चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः॥

अन्वय- पूर्व त्वया अपि एवम् गतम् अभिमतम् आसीत्। पुनः भर्तुः विजयेन श्लाघ्यं गमिष्यति। कालक्रमेण परिवर्तमाना जगतो भाग्यपङ्क्तिः चक्रारपङ्क्तिः इव गच्छति।

शब्दार्थ- पूर्व = पुरा, उज्जयिन्यां = कौशाम्ब्याम्। त्वया अपि = भवत्या अपि, एवम् = इत्थम्, गतं = गमनम्, अभिमतम् = अभीष्टम्, आसीत् = अभवत्। पुनः = भूयः, भर्तुः = स्वामिनः, विजयेन = स्वराज्यप्राप्तिरूपजयेनेति भावः। श्लाघ्यं = प्रशंसनीयम्, गमिष्यसि = व्रजिष्यसि, कालक्रमेण = समयपरिपाठ्या, परिवर्तमाना = परिभ्रमन्ती, जगतः = लोकस्य, भाग्यपङ्क्तिः = अदृष्टपरम्परा, चक्रारपङ्क्तिः इव = रथाऽङ्गाऽवयवश्रेणिः इव, गच्छति = व्रजति।

श्लोकार्थ- पहले आपको भी इस प्रकारसे चलना अभीष्ट था, फिर पति (उदयन) के अभ्युदयसे श्लाघ्यरूपसे उसी तरह गमन करेगी। समयके क्रमसे जगत् की परिवर्तनशील भाग्यपङ्क्ति चक्र(चाक) के अवयवों के समान चलती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- गतम् - गम्+क्तः। अभिमतम्- अभि+मन्+क्तः। भर्तुः- विभर्तीति भर्ता, तस्य, षष्ठी तत्पुरुष समास। भर्तुः- भृञ्+तृच्। परिवर्तमाना- परि+वृत्+शानच्। चक्रारपङ्क्तिः- चक्रस्य अराः (अवयवाः), तेषां पङ्क्तिः, षष्ठी तत्पुरुष। इस पद्यमें “चक्रारपङ्क्तिः इव” अंशमें लुप्तोपमा और पूर्वार्धप्रतिपादित विशेष अर्थका उत्तरार्धमें प्रतिपादित सामान्य अर्थसे समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इस प्रकार अङ्गाङ्गिभाव से सङ्कर हो गया है।

श्लोक-1.5

परिहरतु भवान् नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्।

नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति॥

अन्वय- भवान् नृपाऽपवादं परिहरतु, आश्रमवासिषु परुषं न प्रयोज्यम्। मनस्विन एते नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति।

शब्दार्थ- भवान् = त्वम्, नृपाऽपवादं = राजनिन्दाकारणम्, परिहरतु = परित्यजतु, आश्रमवासिषु = तपोवननिवासिषु, परुषं = कठोरम्, न प्रयोज्यं = नहि प्रयोक्तव्यम्, मनस्विनः

= प्रशस्तमानसाः, एते = आश्रमवासिनः, नगरपरिभवान् = पुरतिरस्कारान्, विमोक्तं = परित्यक्तम्, वनं = तपोवनम्, अभिगम्यः = संप्राप्य, वसन्ति = निवासं कुर्वन्ति।

श्लोकार्थ- तुम राजाकी निन्दाका कारण (उत्सारण कार्य) छोड़ो। तपोवनमें रहनेवालोंमें कठोर वचन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि मनस्वी ये (तपोवनवासी) शहरमें होनेवाले तिरस्कारोंको छोड़नेके लिए तपोवनमें आकर रहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- नृपाऽपवादं- नृन् पातीति नृपः, नृपस्य अपवादः, तम्, षष्ठी तत्पुरुष सामास। परिहरतु- परि+हृ+लोट् तिप्। आश्रमवासिषु- आश्रमे वसन्तीति तच्छीला आश्रमवासिनः, तेषु, उपपद तत्पुरुष समास। आश्रमवासि- आश्रम+वस्+णिनिः। प्रयोज्यं- प्र+युज्+ण्यत्। मनस्विनः- प्रशस्तं मननः अस्ति एषां ते, तत्पुरुष समास। मनस्विनः- मनस्+विनि, नगरपरिभवान्- नगरे परिभवाः, तान्, तत्पुरुष समास। विमोक्तं- वि+मुच्+तुमुन्। अभिगम्य- अभि+गम्+त्यप्।

श्लोक-1.6

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्, स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।

धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडामिच्छेत् तपस्विषु कुल व्रतमेतदस्याः॥

अन्वय- तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् तपोधनानि वनात् स्वैरं उपनयन्तु। हि धर्मप्रिया नृपसुता तपस्विषु धर्मपीडां न इच्छेत् एतत् अस्याः कुलव्रतम्।

शब्दार्थ- तीर्थोदकानि = तीर्थजलानि, समिधः = काष्ठानि, कुसुमानि = पुष्पाणि, दर्भान् = कुसान्, तपोधनानि = नियमाचरणद्रव्याणि, वनात् = अरण्यात् स्वैरं = स्वच्छन्दम्, उपनयन्तु = प्राप्नुवन्तु। हि = यस्मात्कारणात्, धर्मप्रिया = अभीष्टपुण्या, नृपसूता = भर्तृदारिका, तपस्विषु = तापसेषु, धर्मपीडां = पुण्याचरणबाधाम्, न इच्छेत् = नो वाञ्छेत्, एतत् = धर्मचरणानुकूल्यम्, अस्याः = नृपसूतायाः, कुलव्रतं = वंशाचरणम्।

श्लोकार्थ- तीर्थजल, समिधाएँ, फूल और कुश इन सब तपस्या के पदार्थोंको तपोवनसे प्राप्त करें। क्योंकि धर्मको पसन्द करनेवाली राजकुमारी (पद्मावती) तपस्वियोंमें धर्ममें बाधाको नहीं चाहेंगी, यह इनकी वंशपरम्पराका आचरण है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- तीर्थोदकानि- तीर्थस्य उदकानि, षष्ठी तत्पुरुष समास। तपोधनानि = तपः एव धनं येषां, तानि, षष्ठी तत्पुरुष। स्वैरम् = ईरणम् ईरः, स्वेन (छन्देन) ईरः, तद्यथा तथा स्वैरम्, तृतीयातत्पुरुष समास। उपनयन्तु- उप+नी+ लोट्+झि। धर्मप्रिया- धर्मः प्रियौ यस्याः सा, बहुव्रीहि समास। तपस्विषुः- तपस्+विनिः । इच्छेत्- इष्+विधिलिङ्+तिप्।

श्लोक-1.8

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते बासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत्।

आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया

यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम्॥

अन्वय- कस्य कलशेन अर्थः? को यथानिश्चितं बासो मृगयते? दीक्षां पारितवान् (कः) पुनः गुरोः यत् देयं भवेत् किम् इच्छति? इह धर्माभिरामप्रिया नृपजा आत्माऽनुग्रहम् इच्छति। यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तद् वदतु। अद्य कस्य किं दीयताम्?

शब्दार्थ- कस्त = कतमस्यः, कलशेन = घटेन, अर्थः = प्रयोजनम्, कः = तपस्वी, यथानिश्चितं = निर्णयानुसारम्, बासः = वस्त्रम्, मृगयते = अन्विष्यति, दीक्षाम् = अध्ययनार्थं व्रतम्, पारितवान् = समापितवान्, पुनः = भूयः, गुरोः = आचार्यस्य, यत् = वस्तु, देयं = दातव्यम्, भवेत् = स्यात्, इच्छति = वाञ्छति। इह = अत्र, धर्माभिरामप्रिया = प्रियधार्मिकजना, नृपजा = राजकुमारी, आत्माऽनुग्रहम् = आत्मनि अनुकम्पाम्, इच्छति = कामयते, यस्य = तपस्विनः, यद् = वस्तु, समीप्सितं = समभीष्टम्, अस्ति = विद्यते, तद् = वस्तु, वदतु = कथयतु, अद्य = अस्मिन्दिने, कस्य = कस्मै, किं = वस्तु, दीयतां = वितीर्यताम्।

श्लोकार्थ- किसे कलशका प्रयोजन है? कौन सा तपस्वी निर्णयके अनुसार वस्त्र चाहता है? अध्ययनार्थ व्रतको समाप्त करनेवाला कौन सा स्नातक गुरुको देनेके योग्य वस्तुको चाहता है? इस तपोवनमें धार्मिकोंमें प्रीति करनेवाली राजकुमारी (तपस्वियोंकी याचनासे) अपने ऊपर अनुग्रह चाहती है। जिसको जो वस्तु अभीष्ट है उसे कहें। आज किसको क्या दिया जाय?

व्याकरणात्मक टिप्पणी- यथानिश्चितम्- निश्चितम् अनतिक्रम्य, अव्ययीभाव समास। पारितवान्- पार+क्तवतु। देयम्- दा+ यत्, अभिरामः- अभि+रम्+घञ्। धर्माभिरामप्रिया अभिरमणम् अभिरामः, अभि-उपसर्गपूर्वक “रमु क्रीडायाम्” धातुसे “भावे” इस सूत्रसे भावमें षन् प्रत्यय। धर्माभिरामप्रियाः- धर्मे अभिरामः अभिरुचिः येषां ते धर्माभिरामाः, धर्माभिरामाः प्रिया यस्याः सा, बहुव्रीहि समास। नृपजा- नृपात् जाता, पञ्चमी तत्पुरुष समास। आत्माऽनुग्रहम् = आत्मनि (विषये) अनुग्रहः, तम्, सप्तमी तत्पुरुष समास। समीप्सितम् = आप्तुम् इष्टम् ईप्सितम्, सम्यक् ईप्सितम्, उपपद तत्पुरुष समास।

श्लोक-1.10

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।

सुखमन्यद्भवेत् सर्व दुःखं न्यासस्य रक्षणम्॥

अन्वय- अर्थः सुखं दातुं भवेत्, प्राणाः सुखं दातुं भवेयुः, तपः सुखं दातुं भवेत्।
अन्यत् सर्व सुखं दातुं भवेत्, (परम्) न्यासस्य रक्षणं दुःखं भवेत्।

शब्दार्थ- अर्थः = धनं, सुखं = मुखपूर्वकं, दातुं = वितरीतुम्, भवेत् = स्यात्।
प्राणाः = असवः, सुखम् = अनायासम्, दातुं = समर्पयितुम्, तपः = तपश्चरण, सुखम् =
आयासम्, दातुं = वितरीतुम्, भवेत् = स्यात्, अन्यत् = अपरम्, सर्व = सकलम्, सुखं =
कष्टं विना, दातुं = वितरीतुम्, भवेत् = स्यात्, परं = अव्यय, न्यासस्य = निक्षेपस्य, रक्षणं
= पालनम्, दुःखं = दुष्करम्, भवेत् = स्यात्।

श्लोकार्थ- धन, प्राण, तपस्या का फल और सब कुछ देना सुकर है, परन्तु
किसीके न्यास(धरोहर) की रक्षा करना दुःखपूर्ण (दुष्कर) है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- दातुं- दा+तुमुन्। प्राणाः “पुंसि भूम्यसवः प्राणाः”
इत्यमरः। इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

श्लोक-1.11

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री

दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।

तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-

न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि॥

अन्वय- यैः प्रथमं विपत्तिः प्रकृष्टा अथ पद्मावती नरपतेः महिषी भवित्री (इति)
प्रदिष्टा। तत्प्रत्ययात् इदं कृतम्। हि विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि व्युत्क्रम्य न गच्छति।

शब्दार्थ- यैः = पुष्पकभद्रादिभिः सिद्धैः, प्रथमं = पूर्वम्, विपत्तिः = आपत्तिः,
प्रदिष्टा = आदिष्टा, दृष्टा = प्रत्यक्षतः अवलोकिता च। अथ = अनन्तरम्, पद्मावती =
मगधराजकुमारी, नरपतेः = राज्ञः, महिषी = कृताऽभिषेका राज्ञी, भवित्री = भाविनी, (इति
व) तत्प्रत्ययात् = सिद्धवचनविश्वासात्, इदं = पद्मावतीहस्ते न्यासरूपेण वासवदत्तास्थापनमिति
भावः, कृतं = विहितम्, हि = यस्मात् कारणात्, विधि = भाग्यम्, सुपरीक्षितानि =
सम्यग्जातपरीक्षाणि, सिद्धवाक्यानि = सिद्धादेशवचनानि, व्युत्क्रम्य = उल्लङ्घ्य, न गच्छति =
न प्रचलति।

श्लोकार्थ- जिन पुष्पक भद्र आदि सिद्धोंने पहले ही राजा उदयनकी (आनेवाली) विपत्तिको सूचित किया था। उसे हम लोगोंने प्रत्यक्षतः देख लिया। अब (उन्होंने) पद्मावती, महाराज (उदयन) की महारानी होंगी ऐसा कहा है। उन्हीं वचनोंके विश्वाससे ऐसा (पद्मावती के हाथों में वासवदत्ताको धरोहरके रूपसे रखनेका) कार्य किया है, क्योंकि भाग्य अच्छी तरह से परीक्षित सिद्ध वाक्योंका उल्लङ्घन कर नहीं चलता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- विपत्ति:- वि+पद्+क्तिन्, भवित्री = भू+तृच्+डीप्। विधिः = विधीयतेऽनेनेति, वि+धा+कि। सिद्धवाक्यानि- सिद्धानां वाक्यानि, तानि, तत्पुरुष समास। व्युत्क्रम्य- वि+उत्+क्रम् ल्यप्, सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

श्लोक-1.12

विस्रब्ध हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया

वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।

भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो

निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः॥

अन्वय- देशागतप्रत्यया अचकिता हरिणा विस्रब्धं चरन्ति। सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपा दयारक्षिताः। कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम् (सन्ति)। दिशः अक्षेत्रवत्यः। हि धूमो बह्वाश्रयः। इदं निःसन्दिग्धं तपोवनम्।

शब्दार्थ- देशागतप्रत्ययाः = स्थानप्राप्तविश्वासाः, अत एव अचकिता = निर्भया, हरिणाः = मृगाः, विस्रब्धं विस्रम्भपूर्वकम्, चरन्ति = विचरणं कुर्वन्ति, सर्वे = समस्ताः, वृक्षाः = तरवः, पुष्पफलैः = कुसुमसस्यैः, समृद्ध- विटपाः = परिपूर्णशाखाः सन्तः, दयारक्षिताः = करुणापालिताः, कपिलानि = पिशाङ्गवर्णानि, गोकुलधनानि = धेनुसमूहद्रव्याणि, भूयिष्ठं = प्रचुरम्, दिशः = ककुभः, अक्षेत्रवत्यः = क्षेत्ररक्षिताः, हि = यस्मात्कारणात्, धूमः = अग्निलिङ्गम्, बह्वाश्रयः = अधिकाऽधिकरणः, इदम् = एतत्, निःसन्देहं = निःशङ्कम्, तपोवनं = तापसाश्रमः।

श्लोकार्थ- अपने स्थानमें विश्वासयुक्त निर्भय मृग विश्वासके साथ चर रहे हैं। सब पेड़ फूल और फलोंसे समृद्ध शाखाओंसे युक्त होकर दयासे रक्षित हैं। भूरे वर्णवाले गोसमूहरूप धन प्रचुर है। दिशाएँ खेतवाली नहीं हैं, क्योंकि धूआँ बहुत फैला हुआ है, इस कारण निश्चय यह तपोवन है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- देशागतप्रत्ययाः- आगतः प्रत्ययो येषां ते, बहुव्रीहि समास। देशे आगतप्रत्ययाः, सप्तमी तत्पुरुष समास। अचकिताः- न चकिताः, नञतत्पुरुष समास। विम्रब्धं- वि+म्रम्भु+क्तः। पुष्पफलैः- पुष्पाणि च फलानि च पुष्पफलानि, तैः, द्वन्द्व समास। समृद्धविटपाः- समृद्धा विटपा येषां ते, बहुव्रीहि समास। दयारक्षिताः- दयया रक्षिताः, तृतीया तत्पुरुष समास। गोकुलधनानि- गवां कुलानि, षष्ठी तत्पुरुष समास। गोकुलधनानि इव, उपमितकर्मधाराय समास। अक्षेत्रवत्यः- न क्षेत्रवत्यः, नञतत्पुरुष समास। बहवाश्रयः- बहव आश्रया यस्य सः, बहुव्रीहि समास। निःसन्दिग्धं- निर्गतं सन्दिग्ध यस्मिस्तत्, बहुव्रीहि समास। इस श्लोकमें अनेक साधनोंसे साध्य तपोवनका विच्छित्तिसे ज्ञान होनेसे अनुमान अलङ्कार है। उसका लक्षण है- “अनुमान तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्।”

श्लोक-1.16

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥

अन्वय- खगा वासोपेताः। मुनिजनः सलिलम् अवगाढः। प्रदीप्तः अग्निः भाति। धूमो मुनिवनं प्रविचरति। दूरात् परिभ्रष्टः असौ रविः अपि संक्षिप्त किरणः (सन्) रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति।

शब्दार्थ- खगाः = पक्षिणः, वासोपेताः = कुलायं प्राप्ताः, मुनिजनः = तपस्विनः, सलिलं = जलम्, अवगाढः = प्रविष्टः, प्रदीप्तः = प्रज्वलितः, अग्निः = अनलः, भाति = शोभते, धूमः = धूम्रः, मुनिवनं = तपोवनम्, प्रविचरति = प्रचलतिम्, दूरात् = विप्रकृष्टप्रदेशात्, परिभ्रष्टः = निपतितः, असौ = अयं, रविः अपि = सूर्यः अपि, संक्षिप्तकिरणः = सङ्कुचितमरीचिः सन्, रथं = स्यन्दनम्, व्यावर्त्य = निरुध्य, शनैः = मन्दम्, अस्तशिखरम् = अस्तपर्वतकूटम्, प्रविशति = अवगाहते।

श्लोकार्थ- चिड़ियों घोंसलोंमें गये। तपस्वीलोग स्नान करने लगे। प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है। धुआँ तपस्वियोंके बनमें फैल रहा है। सुदूर आकाश से गिरा हुआ वह सूर्यदेव भी अपनी किरणों को समेटकर और एक गति को रोककर धीरे धीरे अस्ताचल के शिखर की ओर जा रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- खगाः- खे गच्छन्तीति। खगाः- ख-उपपद पूर्वक गम् धातुसे 'ङ' प्रत्यय। वासोपेताः = वासे उपेताः, सप्तमी तत्पुरुष समास। अवगाढः-

अव+गाह्+क्तः। संक्षिप्तकिरणः- संक्षिप्ताः किरणाः येन सः, बहुव्रीहि समास। व्यावर्तय = वि+आङ्+वृत्+णिच्+ल्यप्। अस्तशिखरम्- अस्तस्य शिखरं, तत्, षष्ठी तत्पुरुष समास। इस पद्य में स्वभावोक्ति अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है।

श्लोक-4.3

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः।

पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः॥

अन्वय- मधुमदकला मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढा मधुकराः पादन्यासविषण्णा वयम् इव कान्तावियुक्ताः स्युः।

शब्दार्थ- मधुमदकलाः = पुष्परसमदाव्यक्तमधुरशब्दाः, मदनार्ताभिः = कामाऽऽतुराभिः, प्रियाभिः = वल्लभाभिः, उपगूढाः = आलिङ्गिताः, मधुकराः = भ्रमराः, पादन्यासविषण्णाः = अस्मच्चरणनिक्षेपखिन्नाः सन्तः, वयम् इव = अहम् इव, कान्तावियुक्ताः = प्रियाविरहिताः, स्युः = भवेयुः।

श्लोकार्थ- पुष्परसके मदसे मधुर शब्द बाले और कामपीडित प्रियाओं (भौरियों) से आलिङ्गित भौरै पैर रखनेने खिन्न होकर हमलोगों के समान प्रियाओं से बिछुड़ जायेंगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- मधुमदकलाः- मधुनो मदः, षष्ठी तत्पुरुष समास, कलः (मधुराऽस्फुटशब्दः) अस्ति येषां ते कलाः, बहुव्रीहि समास, मधुमदेन कलाः, तृतीया तत्पुरुष समास। मदनार्ताभिः- मदनेन आर्ताः, ताभिः, तृतीया तत्पुरुष समास। उपगूढाः = उप+गुह्+क्तः, पादन्यासविषण्णाः- पादयो न्यासः पादन्यासः, षष्ठी तत्पुरुष समास, पादन्यासेन विषण्णाः, पादन्यासविषण्णाः, तृतीया तत्पुरुष समास। विषण्णाः- वि+सद्+क्तः। कान्तावियुक्ताः- कान्तया वियुक्ताः, तृतीया तत्पुरुष समास।

श्लोक- 4.4

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।

वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति॥

अन्वय- रूपशीलमाधुर्यैः यद्यपि पद्मावती मम बहुमताः, तु वासवदत्ताबद्धं मे मनो न हरति तावत् इत्यन्वयः।

शब्दार्थ- रूपशीलमाधुर्यैः = रूपशीलमधुरभाषित्वादिभिर्गुणैः, पद्मावती = मगध राजकुमारी, मम नवपरिणीतेति भावः। मम = उदयनस्य, बहुमता = अधिकेच्छाविषयीभूता, तु = परन्तु, वासवदत्ताबद्धं = वासवदत्तानुरक्तम्, मे = मम, मनः= चित्तम्, तावत् = एव, न हरति = नाधिकमाकर्षति (यद्यपि नवोढा पद्मावती मम बहुमानास्पदं वर्तते तथापि वासवदत्तया स्वगुणैराकृष्टं मम मानसं तु न तावत् हरति)।

श्लोकार्थ- सौन्दर्य, उत्तम चरित्र और प्रीति विशेषसे पद्मावती यद्यपि मुझे बहुत अच्छी लगती है, परन्तु वह वासवदत्ता में ओंष्ट मेरे मनको ओंष्ट नहीं करती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- रूपशीलमाधुर्यैः- रूपं च शीलं च माधुर्यं च रूपशीलमाधुर्याणि, तैः, द्वन्द्व समास। बहुमता- बहु (अधिकं) यथा स्यात् तथा मता, सुप्सुपा समास। वासवदत्ताबद्धम्- वासवदत्तायां बद्धम्, तत्, सप्तमी तत्पुरुष समास।

श्लोक- 4.6

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।

यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥

अन्वय- बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम्। स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति तु एषा यात्रा यत् इह बाष्पं विमुच्य बुद्धिः प्राप्ताऽनृण्या (सती) प्रसादं याति।

शब्दार्थ- बद्धमूलः = दृढमूलः, अनुरागः = प्रणयः, त्यक्तुं = मोक्तुं, दुःखं = कष्टं, यथा = तथा भवतीति शेषः। स्मृत्वा स्मृत्वा = भूयो भूयः स्मरणं कृत्वा, दुःखं = कष्टं, नवत्वं = नूतनत्वं, याति = प्राप्नोति, अनुभूतं दुःखं मुहुः स्मरणेन नूतनं भवतीति भावः। तु = परन्तु, एषा = इयं, यात्रा = लोकस्थितिः, इह = अस्मिन् दुःखानुभवे, बाष्पम् = अश्रु, विमुच्य = त्यक्त्वा, बुद्धिः = निश्चयात्मकं मनः, प्राप्ताऽनृण्या = नास्तिऋणं यस्यासौ अनृणः, अनृणस्याभावः आनृण्यम्, प्राप्तं आनृण्यं यया सा प्राप्ताऽनृण्या, कृताऽनुरागनिष्कृतिः सतीति भावः। प्रसादं = नैर्मल्यं, याति = प्राप्नोति। यथा परकीय ऋणापकरणेन चेतः प्रसीदति तथैव प्राप्ताऽनृण्यासती बुद्धिरपि प्रसन्नताम् प्राप्नोति अश्रुजलरूपऋणं दत्त्वेति भावः।

श्लोकार्थ- दृढमूलवाला प्रेम छोड़ना मुश्किल है। वारंवार याद करनेसे दुःख नया हो जाता है। परन्तु यह लोकस्थिति है, जो कि यहाँपर आँसू बहाकर ऋण से छुटकारा पाया हुआ चित्त शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- बद्धमूलः- बद्धं मूलं यस्य सः, बहुव्रीहि समास। स्मृत्वा- स्मृ+क्त्वा, प्राप्ताऽनृण्या- अविद्यमानम् ऋणं यस्य सः अनृणः, नवतत्पुरुष समास, अनृणस्य भाव आनृण्यम्, प्राप्तम् आनृण्यं यया सा, बहुव्रीहि समास। आनृण्यम्- अनृण+ष्यञ्।

श्लोक-4.7

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।

काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम॥

अन्वय- हे भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरैण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखं साऽश्रुपातम्।

शब्दार्थ- हे भामिनि: = हे कोपने!, शरच्छशाङ्कगौरैण = शरच्चन्द्रशुक्लेन, वाताविद्धेन = समीरप्रेरितेन, काशपुष्पलवेन = **पोटगलकुसुमलेशेन**, इदम् = एतत्, मम = मे, मुखं = वदनं, साऽश्रुपातम् = अश्रुपतनयुक्तम्।

श्लोकार्थ- शरत् ऋतुके चन्द्रमाके समान सफेद वायुसे उड़ाये गये काशपुष्प के परागसे मेरे मुख में अश्रुपात हुआ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- शरच्छशाङ्कगौरैण = शशः अङ्कः यस्य सः, बहुव्रीहि समास, शरदि शशाङ्कः, सप्तमी तत्पुरुष समास, स इव गौरः, उपमित कर्मधाराय। काशपुष्पलवेन = काशपुष्पस्य लवः, तेन, षष्ठी तत्पुरुष समास।

श्लोक-4.8

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्।

कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः॥

अन्वय- नवोद्वाहा इयं बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्। इयं कामं धीरस्वभावा तु स्त्रीस्वभावः कातरः।

शब्दार्थ- नवोद्वाहा = नूतनपरिणया, नवपरिणीतेति भावः, इयम् = एषा, बाला - युवतिः, पद्मावतीति भावः, सत्यं = तथ्यम्, वासवदत्तास्मरणेन मदीयं वदनमश्रुपूरितमेतादृशमिति भावः, श्रुत्वा = आकर्ण्य, व्यथां = दुःखम्, व्रजेत् = प्राप्नुयात्, इयं = पद्मावती, कामं = पर्याप्तं यथा तथा, धीरस्वभावा = धैर्यसम्पन्ना, अस्तीति शेषः, तु = परन्तु, स्त्रीस्वभावः = नारीप्रकृतिः, कातरः = अधीरः, भवतीति शेषः।

श्लोकार्थ- नव-विवाहिता यह युवती सच्ची बात सुनकर दुःखित होगी। यद्यपि यह बाला पूर्ण रूपसे धैर्यवाली है, परन्तु स्त्रीका स्वभाव कातर होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- नवोद्वाहा- नव उद्वाहः(परिणयः) यस्याः सा, बहुव्रीहि समास। धीरस्वभावा- धीरः स्वभावः यस्याः सा, बहुव्रीहि समास।

श्लोक-4.9

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।

कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥

अन्वय- लोके विशालानां गुणानां सत्काराणां च कर्तारो नित्यशः सुलभाः, तु विज्ञातारो दुर्लभाः।

शब्दार्थ- लोके = जगति, विशालानां = महताम्, गुणानां = दयादाक्षिण्यादीनाम्, सत्काराणां च = आदराणां च, कर्तारः = अनुष्ठातारः, नित्यशः = प्रायः, सुलभाः = सुप्राप्याः, तुःपरन्तु, विज्ञातारः = बोद्धारः, दुर्लभाः = दुष्प्राप्याः।

श्लोकार्थ- महान् गुण और सस्कारोंको करनेवाले लोग हमेशा सुलभ होते हैं, परन्तु उनके जानकार दुर्लभ होते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सुलभाः- सुखेन लब्धुं शक्याः, तत्पुरुष समास। सुलभाः- सुलम्+खल्+जस्। दुर्लभाः- दुर्+लभ्+ खल्+जस्।

श्लोक-5.1

श्लाघ्यमवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजाम्

कालक्रमेण पुनरागतदारभारः।

लावाणके हुतवहेन हुताङ्गयष्टिम्

तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि॥

अन्वय- कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहम्) लावाणके हुतवहेन हुताङ्गयष्टिं श्लाघ्याम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां तां हिमहतां पद्मिनीं इव चिन्तयामि।

शब्दार्थ- कालक्रमेण = समयपरिपाट्या, पुनरागतदारभारः = भूय आगतपत्नीभारः, परिणीतपद्मावतीक इति भावः, अहमिति शेषः। लावाणके = तदाख्यग्रामे, हुतवहेन = अग्निना, हुताङ्गयष्टिं = दग्धतनुलताम्, श्लाघ्यो = प्रशंसनीयाम्, अवन्तिनृपतेः = अवन्तिराजस्य, सदृशीं = समानाम्, तनूजां = पुत्रीम्, गुणगणाऽनुरूपामिति भावः, ताम् = असकृदनुभूताम्, वासवदत्तामिति भावः। हिमहतां = तुषारनाशिताम्, पद्मिनीम् इव = कमलिनीम् इव, चिन्तयामि = स्मरामि। अत्रोपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकावुत्तम्।

श्लोकार्थ- समय क्रमसे फिर विवाह करनेवाला मैं, लावाणक ग्राममें आगसे जली, प्रशंसनीय अवन्तिनरेशकी योग्य पुत्री उन वासवदत्ताको तुषारसे नाशित कमलिनीके समान याद कर रहा हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- पुनरागतदारभारः- दाराणां भारः, षष्ठी तत्पुरुष, पुनरागतो दारभारो यस्य सः, बहुव्रीहि समास। श्लाघ्याम्- श्लाघितुं योग्या, ताम् श्लाघ्याम्- श्लाघ्यं कर्मात्। हुतवहेन- हुतं वहतीति, तेन, हुतवह्+अच् हुताङ्गयष्टिम्- अङ्गम् एव यष्टिः, कर्मधाराय समास, हुता अङ्गयष्टिः यस्याः सा, ताम्, बहुव्रीहि समास।

श्लोक-5.2

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्ताम्

लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।

पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः

पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि।।

अन्वय- रूपश्रिया समुदिता गुणतश्च युक्तां प्रियां लब्ध्वा अद्य मम शोको मन्द इव।
पूर्वाऽभिघातसरुजः अनुभूतदुःखः अपि पद्मावतीम् अपि तथैव समर्थयामि।

शब्दार्थ- रूपश्रिया = सौन्दर्यसम्पत्त्या, समुदितां = संयुक्ताम्, न केवलं
धौन्दर्यसम्पत्त्या, अपि तु गुणतश्च = दयादाक्षिण्यादिगुणैश्च, युक्तां = सम्पन्नाम्, प्रियां =
वल्लभाम्, पद्मावतीमिति भावः। लब्ध्वा = प्राप्य, अद्य = अस्मिन्समये, मम = उदयनस्य,
वासवदत्ताविप्रयुक्तस्येति भावः। शोकः = मन्युः, वासवदत्ताविषयक इति भावः, मन्द इव =
मन्थर इव, स्तोकं न्यून इवेति भावः। पूर्वाऽभिघातसरुजः = प्राचीनदैवप्रहारपीडितः,
अनुभूतदुःखः = निर्विष्टकष्टः, पद्मावतीम् अपि = मगधराजकुमारीम् अपि, तथा एव = तेन
प्रकारेण एव, वासवदत्तामिव विनाशं प्राप्स्यन्तीमिति भावः। समर्थयामि = संभावयामि।

श्लोकार्थ- सौन्दर्यसम्पत्ति और गुणों से युक्त प्रिया (पद्मावती) को पाकर आज मेरा
शोक कम सा हुआ था। पहलेके (भाग्यके) आघातसे पीडित होकर दुःखका अनुभव करके
पद्मावतीको भी उसी (वासवदत्ताकी) तरह होनेवाली सम्भावना कर रहा हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- लब्ध्वा- लभ्+क्त्वा। पूर्वाऽभिघातसरुजः- पूर्वश्चाऽसौ
अभिघातः, कर्मधाराय समास, रुजया सहितः सरुजः, तुल्ययोगे बहुव्रीहि, पूर्वाऽभिघातेन सरुजः,
तृतीया तत्पुरुष समास, अनुभूतदुःखः- अनुभूतं दुःखं येन सः, बहुव्रीहि समास।

श्लोक-5.5

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।

बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैबोरसि पातयन्त्याः।।

अन्वय-प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः स्नेहात् प्रवृत्तं नयनाऽन्तलग्नं बाष्पं श्रम एव
उरसि पातयन्त्याः अवन्त्या अधिपतेः सुतायाः स्मरामि।

शब्दार्थ- प्रस्थानकाले = प्रयाणसमये, स्वजनम् = आत्मीयजनम्, स्मरन्त्याः =
ध्यायन्त्याः, स्नेहात् = प्रणयात्, प्रवृत्तं = जनितम्, नयनाऽन्तलग्नं = नेत्रप्रान्तसम्बद्धम्, बाष्पम्
= अश्रु, मम एव = उदयनस्य एव, उरसि = वक्षःस्थले, पातयन्त्याः = मुञ्चन्त्याः, अवन्त्या
= अवन्तिदेशेन, अधिपतेः = स्वामिनः, सुतायाः = पुत्र्याः, स्मरामि = चिन्तयामि।

श्लोकार्थ- प्रस्थानके समयमें स्वजन (माता-पिता आदि) को स्मरण करने वाली
नेत्रकी छोर में स्नेहसे निकलने वाली आँसूको मेरे ही छातीमें गिराने वाली उज्जयिनीके
स्वामीकी पुत्री (वासवदत्ता) को स्मरण करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अवन्त्यधिपतिः- अवन्त्या अधिपतिः, तस्य, षष्ठी-तत्पुरुष समास। नयनाऽन्तलग्नम्- नयनयोः अन्तौ (प्रान्तभागी), तयोः लग्नम्, सप्तमी तत्पुरुष समास। पातयन्त्याः- पातयतीति पातयन्ती, तस्याः, षष्ठी-तत्पुरुष समास। पत+ णिच्+लट् (शतृ)+ङस्।

श्लोक-5.7

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः।

ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः॥

अन्वय- सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अहं द्वारपक्षेण ताडितः, ततः अयं मनोरथो भूतार्थः (वा) इति व्यक्तं न जानामि।

शब्दार्थ- सम्भ्रमेण = त्वरया, निष्क्रामन् = निर्गच्छन्, अहं = उदयनः, द्वारपक्षेण = प्रतीहारपार्श्वभागेन, ताडितः = आहतः, ततः = तस्मात्कारणात्, भूतार्थः = सत्यरूपः, मनोरथः = अभिलाषः, व्यक्तं = स्पष्टम्, न जानामि = नो वेदिम।

श्लोकार्थ- मैं घबडाहटसे निकलता हुआ द्वारके पार्श्वभागसे ठोकर खा गया हूँ। इस कारणसे यह वासवदत्ता का स्पर्श सचमुच है वा कोरा मनोरथ है, यह स्पष्टरूपसे नहीं जानता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सम्भ्रमेण- “सम्भ्रमस्त्वेरा” इत्यमरः । भूतार्थः- भूतश्चाऽसौ अर्थः, कर्मधाराय समास।

श्लोक-5.8

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे! गता।

दग्धेति ब्रूवता पूर्व वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता॥

अन्वय- हे सखे! (वासवदत्ता) शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा गता। दग्धा इति ब्रूवता रुमण्वता पूर्व वञ्चितः अस्मि।

शब्दार्थ- हे सखे = हे मित्र!, शय्यायां = शयनीये, अवसुप्तं = निद्राम्, बोधयित्वा = जागरयित्वा, गता = याता, दग्धा = भस्मीकृता, इति = इत्थम्, ब्रूवता = वदता, रुमण्वता = तदाख्य मन्त्रिणा, पूर्व = प्रथमम्, वञ्चितः = प्रतारितः, अस्मि = अभूवमिति भावः।

श्लोकार्थ- हे मित्र! वासवदत्ता शय्या में सोये हुए मुझे जगाकर चली गई। (वासवदत्ता) जल गई ऐसा कहते हुए रुमण्वान् नामके मन्त्रीसे पहले मैं ठगा गया हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अवसुप्तम्- अव्+स्वप्+क्त। बोधयित्वा = बुध्+णिच्+क्त्वा। दग्धा = दह्+क्त+टाप्।

श्लोक-5.11

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः।

स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्ष न मुञ्चति॥

अन्वय- सन्त्रस्तया तया देव्या यः अयं बाहुः निपीडितः। स्वप्ने उत्पन्नसंस्पर्शः (सन्) अपि रोमहर्ष न मुञ्चति।

शब्दार्थ- सन्त्रस्तया = अतिशयभीतया, तया देव्या = कृताऽभिषेकया वासवदत्तया, यः अयम् = एषः, बाहुः = भुजः, निपीडितः = आत्मकरेण गृहीतः, स्वप्ने = निद्रायाम्, उत्पन्नसंस्पर्शः = जाताऽमर्शनः सन्, अपि रोमहर्ष = रोमाञ्चम्, न मुञ्चति = न त्यजति।

श्लोकार्थ- अत्यन्त डरती हुई देवी ने जो मेरा यह हाथ पकड़ा, स्वप्नमें स्पर्श होनेपर भी (अभीतक जागरित अवस्थामें) रोमाञ्चित हो रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सन्त्रस्तया = सं+त्रस्+क्त+टाप्+टा। उत्पन्नसंस्पर्शः- उत्पन्नः संस्पर्शो यस्य सः बहुव्रीहि समास। रोमहर्ष- रोम्णां हर्षः, तम्, षष्ठी तत्पुरुषसमास।

श्लोक-5.12

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः

पाष्णीं यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम्।

यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजनन तत्तन्मयानुष्ठितम्

तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा, वत्साश्च हस्ते तव॥

अन्वय- हे राजन्! ते रिपवो भिन्नाः। भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः। या पाष्णीं, तस्या अपि भवत्प्रयाणसमये विधानं कृतम्। अरिप्रमाथजननं यद्यत् साध्यं, तत्तत् मया अनुष्ठितम्। बलैः त्रिपथगा नदी अपि तीर्णा च। वत्साश्च तव हस्ते सन्ति।

शब्दार्थ- हे राजन् = हे भूपाल!, ते = तव, रिपवः = शत्रवः, भिन्नाः = भेदप्राप्ताः, भवद्गुणरताः = त्वद्गुणादक्षिण्याद्यनुरक्ताः, पौराः = नागरिकाः, समाश्वासिताः = आश्वासनं प्रापिताः, या पाष्णीं = सैन्यपृष्ठम्, भवत्प्रयाणसमये = त्वद्विजययात्राकाले, विधानं = रचनम्, कृतं = विहितम्, अरिप्रमाथजननं = शत्रुनाशोत्पादकम्, यद्यत् साध्यं = साधनीयम्, मया = दर्शकेन, अनुष्ठितं = सम्पादितम्, बलैः = सैन्यैः, त्रिपथगा = त्रिमार्गगा, नदी = सरीत्, तीर्णा च = तरणविषयीकृता च। वत्साश्च = वत्सदेशाश्च, तव = भवतः, हस्ते = करे।

श्लोकार्थ- आपके शत्रुओंमें भेद कर दिया गया है। आपके गुणोंमें अनुरक्त नागरिकोंको समाश्वासन दिया गया है। आपके आक्रमणके समयमें जो सेनाका पृष्ठ भाग है,

उसका भी विधान किया गया है। शत्रुओं को नाश करने वाला जो जो साधनीय विषय है वह सब मैंने तैयार किया है। सेनाओं ने गङ्गानदीको पार कर लिया है। अब वत्सदेश आपके हाथ में है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- भिन्नाः = भिद्+क्तः, भवद्गुणस्ताः- भवतो गुणाः, तेषु रताः (स.त.)। पौराः- पुरि भवाः, “पुर्” शब्दसे “तत्र भवः” इस सूत्रसे अण् प्रत्ययः, समाशवासिताः- सम्+आङ्+श्वस्+णिच्+क्तः, भवत्प्रयाणसमये- भवतः प्रयाणं, षष्ठी तत्पुरुषसमास, तस्य समयः, तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुषसमास, अरिप्रमाथजननं- अरीणां प्रमाथः, अरीप्रमाथः, अरिप्रमाथस्य जननम्, षष्ठी तत्पुरुषसमास, अनुष्ठितम्- अनु+स्था+क्तः, त्रिपथगा- त्रयाणां पथां समाहारः त्रिपथम्, संख्यापूर्वो द्विगुसमास, त्रिपथेन गच्छतीति त्रिपथगा, उपपदसमास।

श्लोक-6.1

श्रोणीसमुद्रहन् पार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि।

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि॥

अन्वय- श्रोणीसमुद्रहन्पार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि, विरहे माम् उद्दिश्य परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि च (न स्मरसि)।

शब्दार्थ- श्रोणीसमुद्रहन्पार्श्वनिपीडितानि = कटिधारणकक्षाऽधोभागसंपीडनानि, खेदस्तनान्तरसुखानि = खेदे (प्रयासे सति) स्तनान्तरसुखानि (कुचमध्यानन्दकराणि), विरहे = वियोगे, माम् = उदयनम्, उद्दिश्य = अनूद्य, परिदेवितानि = विलपितानि, एवं च वाद्यान्तरेषु = वीणावादनाऽवसरमध्येषु, उपगूहितानि = आलिङ्गनानि, न स्मरसि = न ध्यायति।

श्लोकार्थ- कटिमें धारण और बगलमें रखना, परिश्रम होनेपर स्तनोंके बीचमें सुखसे आलिङ्गन, वियोगमें मुझे उद्देश्य कर विलाप करना और वीणा बजानेके मध्यभागोंमें मुष्कुराहटसे युक्त वचन (इन विषयोंकी याद नहीं करनी है)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- श्रोणीसमुद्रहन्पार्श्वनिपीडितानि- श्रोण्या समुद्रहनानि, तृतीया-तत्पुरुषसमास, पार्श्वेन निपीडितानि, तृतीया-तत्पुरुषसमास, श्रोणिसमुद्रहनानि च पार्श्वनिपीडितानि च तानि, द्वन्द्वसमास। खेदस्तनान्तरसुखानि- स्तनयोरन्तरं, षष्ठी तत्पुरुषसमास, तस्मिन् सुखानि, सप्तमी-तत्पुरुषसमास, खेदे (सति) स्तनान्तर सुखानि, सप्तमी-तत्पुरुषसमास। वाद्यान्तरेषु- वाद्यस्य (वीणायाः) अन्तराणि, तेषु, षष्ठी तत्पुरुषसमास। सस्मितानि- स्मितेन सहितानि, तुल्ययोगबहुव्रीहि समास।

श्लोक-6.3

चिरप्रसुप्तः कामो मे बीणया प्रतिबोधितः।

तां तु देवी न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया॥

अन्वय- चिरप्रसुप्तः मे कामः बीणया प्रतिबोधितः, यस्या घोषवती प्रियाय तां देवीं तु न पश्यामि।

शब्दार्थ- चिरप्रसुप्तः = बहुकालं यावत् शयितः, मे = मम, कामः = अभिलाषः, वासवदत्ताविषयक इति शेषः। वीणया = घोषवतीनाम्न्या वल्लक्या, प्रतिबोधितः = उद्बोधितः, यस्याः = देव्याः, वासवदत्तायां इति भावः। घोषवती = इयं वीणा, प्रिया = अभीष्टाः, तां = तादृशीं, देवीं तु = वासवदत्तां तु, न पश्यामि = न विलोकयामि।

श्लोकार्थ- बहुत समयसे सोये हुए मेरे अभिलाषको बीनने जगा दिया। जिसे घोषवती (वीणा) प्रिय थी, उन महारानी वासवदत्ताको नहीं देख रहा हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- चिरप्रसुप्तः = चिरं प्रसुप्तः, सुप्सुपासमास। प्रतिबोधितः = प्रति+बुध्+णिच् +क्तः।

श्लोक-6.4

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा।

भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः

पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः॥

अन्वय- किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम्। मया कन्या अपहृता अपि। सा च न रक्षिता। चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितुः जनितरोषः पुत्र इव भीतः अस्मि।

शब्दार्थ- किं वक्ष्यति = किं कथयिष्यति, इति = अस्मिन्विषये, मे = मम, हृदयं = चित्तम्, परिशङ्कितं = परिशङ्कायुक्तं विद्यते, मया = उदयनेन, कन्या = कुमारी, अङ्गारवती = महासेनकन्या वासवदत्तेति भावः, अपहृता = अपहरणविषयीकृता, सा च = तादृशी वासवदत्ता च, न रक्षिता = न त्राता, चलैः = चञ्चलैः, भाग्यैः = भागधेयैः, महदवाप्तगुणोपघातः = मान्यजनप्राप्तगुणनाशः, पितुः = तातस्य, जनितरोषः = उत्पादितकोपः, पुत्र इव = तनय इव, भीतः = त्रस्तः, अस्मि = भवामि।

श्लोकार्थ- पिताजी अथवा माताजी क्या कहेंगी ऐसा सोचकर मेरा हृदय शङ्कायुक्त है। कन्याको छीन लिया पर उसकी रक्षा नहीं की। चञ्चल भाग्योंसे बड़ोंके गुणोंको नष्ट करने बाला मैं पिताको क्रुद्ध करनेवाले पुत्रके समान डर गया हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- वक्ष्यति- वच्+लृट्+तिप्। महदवाप्तगुणोपघातः- गुणानाम् उपघातः, षष्ठी तत्पुरुषसमास, अवाप्तो गुणोपघातो येन सः, बहुव्रीहिसमास, महताम् अवाप्तगुणोपघातः, षष्ठी तत्पुरुषसमास। जनित रोषः- जनितो रोषो येन सः, बहुव्रीहिसमास।

श्लोक-6.5

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः

स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः।

किं नाम दैव! भवता न कृतं यदि स्याद्

राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः॥

अन्वय- इदम् सम्बन्धिराज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः, पुनः नृपसुतानिधनं स्मृत्या महान् विषादः (अस्ति) हे दैव! परैः अपहृतं राज्यं देव्याः कुशलं व स्यात् यदि? तर्हि भवता किं नाम न कृतम्?

शब्दार्थ- इदम् = एतत्, सम्बन्धिराज्यं = भर्तृजामातृराष्ट्रम्, एत्य = आगत्य, मम = काञ्चुकीयस्य, महान् = अधिकः, हर्षः = प्रमदः, पुनः = भूयः, नृपसुतानिधनं = राजकुमारीमरणम्, स्मृत्वा = चिन्तयित्वा, महान् = प्रचुरः, विषादः = खेदः, हे दैव! = हे विधे!, परैः = शत्रुभिः, अपहृतं = स्वाधीनीकृतम्, राज्यं = राष्ट्रम्, देव्याः = वासवदत्तायाः, कुशलं च = क्षेमं च, स्यात् = यदि भवेच्चेत्? तर्हि भवता = त्वया, किं नाम = क्षेमम्, न कृतं = न विहितं स्यात्।

श्लोकार्थ- इस सम्बन्धी (उदयन) के राज्य में आकर बहुत हर्ष हो रहा है, फिर राजकुमारी (वासवदत्ता) के मरणकी याद कर बहुत खेद भी हो रहा है। हे देव! शत्रुओं से छीने गये राज्यकी प्राप्तिके साथ यदि देवी वासवदत्ताका भी कुशल होता तो तुमने क्या किया नहीं होता?

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सम्बन्धिराज्यं- सम्बन्धिनो राज्यं, तत्, षष्ठी तत्पुरुषसमास। नृपसुतानिधनं- नृपस्य सुता, षष्ठी तत्पुरुषसमास, तस्या निधनं, तत्, षष्ठी तत्पुरुषसमास। राज्यं- राज्ञो भावो राज्यम्, राजन्+यक्।

श्लोक-6.7

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।

प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते॥

अन्वय- ये कातरा अपि वा अशक्ताः तेषु उत्साहो न जायते। हि प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव भुज्यते।

शब्दार्थ- ये = जनाः, कातराः = भीरवः, अपि वा = अथवा, अशक्ताः = असमर्थाः, तेषु = तादृशेषु, कातरेषु = अशक्तेषु वा, उत्साहः = अध्यवसायः, न जायते = न उत्पद्यते, हि = यतः, प्रायेण = बहुधा, नरेन्द्रश्रीः = राजलक्ष्मीः, सोत्साहैः एव = उत्साहसम्पन्नैरेव जनैः, भुज्यते = उपभुज्यते।

श्लोकार्थ- जो डरपोक और असमर्थ है, उनमें उत्साह नहीं होता है। क्योंकि अकसर उत्साही पुरुष ही राज्यलक्ष्मीका उपभोग करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- उत्साहः- उत्साहोऽध्यवसायः स्यात् इत्यमरः। जायते- जनि+लट्+त।

श्लोक-6.8

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो

दृढमपहता कन्या भूयो मया न च रक्षिता।

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता

ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र किं कारणम्॥

अन्वय- पूर्वं तावत् अहम् अवजितः, सुतैः सह लालितः। मया कन्या दृढम् अपहता, भूयो न रक्षिता च। तस्या निधनम् अपि श्रुत्वा, मयि तथा एव स्वता। ननु उचितान् वत्सान् प्राप्तुम् अत्र नृपः कारणं हि।

शब्दार्थ- पूर्वं = पुरा, गजाखेटकप्रसङ्ग इति भावः। तावत् = वाक्यालङ्कारे, अहम् = उदयनः, अवजितः पराजितः, सुतैः सह = आत्मपुत्रैः सम, लालितः = वात्सल्यविषयीकृतः, एवं च मया = उदयनेन, कन्या = राजकुमारी, वासवदत्तेति भावः। दृढं = दृढतापूर्वकम्, अपहता = अपहरणेन स्वराष्ट्रमानीता, परं भूयः = पुनः, न रक्षिता च = लावाणकग्रामेऽग्निदाहे न त्राता च, तस्याः = वासवदत्तायाः, निधनम् अपिः = मरणम् अपि, श्रुत्वा = आकर्ण्य, मयि = उदयने, तथा एव = तादृशी एव, स्वता = आत्मीयता, ननु = आमन्त्रणे, उचितान् = पूर्वोपभुक्तान्, वत्सान् = वत्सदेशान्, प्राप्तुं = भूयः आसादयितुम्, अधिकर्तुमिति भावः, अत्रः = विषये, नृपः = महाराजः, महासेन इति भावः, कारणं = हेतुः, हि = निश्चयेन।

श्लोकार्थ- महासेन ने पहले मुझे जीतकर अपने पुत्रों के साथ पालन किया। मैंने उनकी कन्या- (वासवदत्ता) को दृढता से हरण किया पर उन्हें नहीं बचा सका। उन (वासवदत्ता) की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर भी मुझमें उनकी पहले की समान आत्मीयता है। मेरे पहलेके उपभुक्त वत्सराज्य पानेमें भी राजा (महासेन) ही कारण है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- कन्या = “कन्या त्वजातोपमया सलज्जा नवयौवना।” (साद.6.67) जिसका विवाह नहीं हुआ है वह लज्जावती और, नवीन यौवन वाली हो तो उसे कन्या नामकी परकीया नायिका कहते हैं। स्वता स्वस्य भावः, स्व+तल्+टाप्।

श्लोक- 6.12

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि।

अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः॥

अन्वय- एतत् वाक्यं राज्यलाभशतात् अपि प्रियतरम्। यत् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहो न विस्मृतः।

शब्दार्थ- एतत् = इदम्, वाक्यं = पदसमूहः, राज्यलाभशतात् अपि = प्रभूतराष्ट्रप्राप्तेः अपि, प्रियतरम् = अत्यभीष्टम्, यत् अपराद्धेषु अपि = कृताऽपराधेषु, विहितकन्याऽपहरणादिष्वपीति भावः, अस्मासु = मयि विषये, स्नेहः = वात्सल्यम्, विस्मृतः न = विस्मृति प्रापितो न।

श्लोकार्थ- यह वाक्य सैकड़ों राज्योंकी प्राप्तिसे भी अधिक प्रिय है। जो कि अपराध करनेवाले मेरे ऊपर भी वात्सल्य नहीं भुलाया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- राज्यलाभशतात्- राज्यस्य लाभः (ष.त.) तस्य शतम्, (ष. त.), तस्मात्। “पञ्चमी विभक्ते” इससे पञ्चमी। प्रियतरम्- अतिशयेन प्रियम् ‘प्रिय’ शब्दसे “द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयसुनौ” इस सूत्रसे तरप् प्रत्यय। अपराद्धेषु- अप्+राघ्+क्तः।

श्लोक- 6.14

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति।

परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता॥

अन्वय- विप्रस्य भगिनी यदि (तर्हि) व्यक्तम् अन्या भविष्यति। लोके परस्परगता रूपतुल्यता दृश्यते।

शब्दार्थ- विप्रस्य = ब्राह्मणस्य, भगिनी = स्वसा, यदि = चेत्, व्यक्तं = स्पष्टम्, अन्या = अपरा, भविष्यति = वर्तिष्यते, लोके = संसारे, परस्परगता = मिथः स्थिता, रूपतुल्यता = आकारसादृश्यम्, दृश्यते = अवलोक्यते।

श्लोकार्थ- ब्राह्मणकी बहन है तो जरूर दूसरी ही होगी। क्यों कि संसारमें परस्परमें रूपकी समानता देखी जाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- व्यक्तं- वि+अञ्+क्तः, परस्परगता- परस्परं गता (द्वि.त)। रूपतुल्यता- तुल्यस्य भावस्तुल्यता (तुल्य+तल्+टाप्), रूपस्य तुल्यता (ष.त.)।

श्लोक-6.19

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेहितार्थं

कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य।

सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे॥

अन्वय- नृपते: हितार्थं राजमहिषी प्रच्छाद्य मया हितम् इति अवेक्ष्य इदं काम कृतम्। मम कर्मणि सिद्धे अपि असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितं नाम।

शब्दार्थ- नृपते: = राज्ञः, हितार्थं = कल्याणार्थम्, राजमहिषी = महाराज्ञी, प्रच्छाद्य = संगोप्य, मया = यौगन्धरायणेन, हितं = कल्याणकर, इति = इत्थम्, अवेक्ष्य = विचार्य, इदम् = एतत्, कामं = स्वैरं यथा तथा, कृतं = विहितम्, मम = यौगन्धरायणस्य, कर्मणि = कार्ये, सिद्धेऽपि = सफलीभूतेऽपि, असौ = परोक्षस्थः, पार्थिवः = राजा, किं वक्ष्यति = किं कथयिष्यति, इति = इत्थम्, मे = मम कामचारिणो मन्त्रिण इति भावः, हृदयं = चित्तम्, परिशङ्कितं = परितः शङ्कायुक्तम्, नाम = प्राकाश्ये।

श्लोकार्थ- राजाके दितके लिए महारानी (बासवदत्ता) को छिपाकर मैंने राजाका कल्याण होगा ऐसा विचार कर यह कार्य अपनी इच्छासे किया। अब मेरा कार्य सिद्ध (सफल) हो गया है तो भी राजा क्या कहेंगे ऐसा शोचकर मेरा हृदय शङ्कित हो रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- नृपते:- नृणां पतिः, तस्य (ष.त.)। राजमहिषी- राज्ञो महिषी, ताम् (ष.त.)। प्रच्छाद्य- प्र+छद्+ णिच्+क्त्वा(ल्यप्)। अवेक्ष्य- अव+ईक्ष्+क्त्वा(ल्यप्)। पार्थिवः- पृथिव्या ईश्वरः, पृथिवी+अञ्। वक्ष्यति- वच्+लृट्+तिप्।

श्लोक- 6.19

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।

महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु न॥

अन्वय- सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकाऽऽतपत्राङ्काम् इमां मही नो राजसिंहः प्रशास्तु।

शब्दार्थ- सागरपर्यन्तां = समुद्रसीमाम्, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलां = हिमालयविन्ध्याचल-कर्णवेष्टनाम्, एकातपत्राङ्काम् = एकच्छत्रचिह्नम्, इमाम् = एताम्, मही = भूमि, नः = अस्माकं, राजसिंहः = भूपश्रेष्ठः, उदयन इति भावः, प्रशास्तुः = प्रशासनं करोतु।

श्लोकार्थ- इमारे राजसिंह (राजाओं में प्रधान) अर्थात् महाराज उदयन समुद्ररूप सीमावाली, हिमालय और विन्ध्यपर्वत रूप दो कुण्डलोंसे युक्त और एकछत्ररूप चिह्न से संयुक्त इस पृथ्वीका प्रशासन करें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सागरपर्यन्तां- सागराः पर्यन्ता यस्याः सा ताम् (बहु.)। हिमवद्विन्ध्यकुण्डलां- हिमवांश्च विन्ध्यश्च हिमवद्विन्ध्यौ (द्वन्द्व.), हिमवद्विन्ध्यै कुण्डले यस्याः

सा, ताम् (बहु.)। एकातपत्राऽङ्काम्- एकम् (अद्वितीयम्) आतपत्रम् एव अङ्को यस्याः सा, ताम् (बहु.)। राजसिंहः- राजा सिंह इव (कर्मधाराय)। प्रशास्तु- प्र+शास्+लोट्+तिप्।

1.12 अभ्यास प्रश्न :

1. बृहत्कथा में प्राप्त उदयन कथा तथा 'स्वप्नवासवदत्तम्' में भास द्वारा वर्णित उदयन कथा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. भास ने निःसन्देह एक कुशल नाटककार की भाँति 'स्वप्नवासवदत्तम्' की मूल कथा को अपनी नाटकीय कल्पना से सजाया है, सिद्ध कीजिए।
3. 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के प्रथम अंक की कथा वस्तु एवं घटना चक्र का नाटक में क्या औचित्य है?
4. द्वितीय अंक में मगधराज दर्शक के पास वत्सराज उदयन का किसी कार्यवश राजगृह में जाने का क्या परिणाम निकला?
5. नाटक के तृतीय अंक के घटना चक्र का क्या महत्व है?

1.12.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

प्र.1. बृहत्कथा कथा के आज उपलब्ध संस्कृत रूपान्तरों में प्राप्त उदयन कथा तथा भास के स्वप्नवासवदत्त में वर्णित

उदयन कथा में पर्याप्त अन्तर है। यह अन्तर निम्नलिखित विवरणों से सम्बन्धित है-

- बृहत्कथा के रूपान्तरों में महासेन और प्रद्योत दो भिन्न व्यक्ति हैं। महासेन अवन्ति का राजा है और प्रद्योत मगध का। भास के अनुसार प्रद्योत अवन्ति का राजा है और उसे ही उसकी बहुत बड़ी सैन्य शक्ति के कारण महासेन कहा जाता है।
- इन रूपान्तरों के अनुसार पद्मावती मगध नरेश की पुत्री है। जबकि भास ने इसे मगध नरेश की बहिन बताया है।
- भास ने वासवदत्ता को परिव्राजक वेषधारी यौगन्धरायण की बहिन के रूप में उपस्थापित किया है जबकि बृहत्कथा के रूपान्तरों में वह उसकी पुत्री के रूप में प्रदर्शित है।
- बृहत्कथा के रूपान्तरों में आरूणि के द्वारा वत्स राज्य को हथिया लेने का वर्णन नहीं है, जब कि भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक की यह एक प्रमुख घटना है।
- बृहत्कथा के रूपान्तरों के अनुसार उदयन पद्मावती से विवाह कराने के स्पष्ट उद्देश्य से राजगृह जाता है, जबकि 'स्वप्नवासवदत्तम्' के अनुसार वह किसी अन्य कार्यवश

राजगृह जाता है तथा वहां के राजा के आग्रह पर पद्मावती से विवाह संबंध स्थापित करता है।

बृहत्कथा के रूपान्तरों के अनुसार वासवदत्ता सम्बन्धी रहस्य का उद्धारन एक अप्राकृतिक शक्ति द्वारा होता है, तथा उदयन और वासवदत्ता का पुनर्मिलन लावाणक में होता है, जबकि भास नाटक में उक्त रहस्य का अनावरण अत्यंत स्वभाविक ढंग से होता है। तथा नायक नायिका का पुनर्मिलन कौशाम्बी में सम्पन्न होता है।

प्र.2. भास स्वप्नवासवदत्तम् की मूलकथाओं को अपनी नाटकीय कल्पना से सजाकर उसे नवीन रूप में उपस्थित किया।

भास के नाटकीय परिकल्पना उसकी उदयन कथा की निम्नलिखित घटनाओं में झलकती है-

- पुष्पक-भद्रादि ज्योतिषियों की भविष्यवाणी।
- अपने पति के हित के लिये वासवदत्ता का अपूर्व त्याग।
- लावाणक के भीषण अग्निकाण्ड में वासवदत्ता के जल मरने का लोकप्रवाह।
- स्वप्नदृश्य।
- आरूणि (जिसका इतिहास में कहीं उल्लेख नहीं मिलता) द्वारा वत्सदेश पर अधिकार कर लेना।
- चित्र की कथा रूढि के माध्यम से वासवदत्ता सम्बन्धी रहस्य का स्वाभाविक ढंग से उद्घाटन इत्यादि के द्वारा स्वप्नवासवदत्ता नाटक में भास बहुविध नाटकीय परिकल्पना एक मौलिक उद्भावनाओं को पहचाना जा सकता है।

प्र.3. स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रथम अंक की कथावस्तु का तथा घटना चक्र का औचित्य यह है कि वासवदत्ता को मृत घोषित करके तथा उसे अवन्तिका के रूप में पद्मावती के पास रखकर। महाराज उदयन का पद्मावती के साथ दूसरे विवाह का पथ प्रशस्त करना। जो वासवदत्ता के जिवित रहते सर्वथा असम्भव था तथा उदयन को उस दशा में मगध राजा की सैन्य सहायता भी मिल पाना असम्भव था। जो सहायता उदयन को अपना खोया राज्य वापिस लेने के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। अतः प्रथम अंक की कथावस्तु एवं घटना चक्र का स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में महान औचित्य है।

प्र.4. मगधराज दर्शन के राज प्रासाद में उदयन के किसी कार्य वश जाने का यह परिणाम निकला कि महाराज दर्शक ने स्वयं अपनी बहिन पद्मावती का उसके साथ विवाह कराने का निर्णय लिया तथा इसके लिये उदयन से विशेष आग्रह भी किया, जिसे उदयन

ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार यह विवाह उदयन की भावी राज्य सम्बन्धी योजनाओं की सफल परिणति के लिये सहायक सिद्ध हुआ।

प्र.5. नाटक के तृतीय अंक में पद्मावती और वत्सराज उदयन दोनों परिणाय सूत्र में बंध जाते हैं। नाटक के तृतीय अंक की यह घटना में अपना विशेष महत्व रखती है। यौगन्धरायण की सारी योजना की परिणति भी इस विवाह सम्बन्ध पर निर्भर करती है। यदि यह विवाह सम्बन्ध स्थापित न होता तो नाटक की कथावस्तु की दिशा विपरीत हो जाती। इसी विवाह के माध्यम से ही वत्सराज ने अपना खोया राज्य वापिस लेने के लिये महाराज दर्शक से सैन्य सहायता मिलने वाली थी। यदि वह विवाह सम्बन्ध परिपक्व न होता तो यौगन्धरायण अपनी याजना में सफल न हो पाता और उदयन को अपना राज्य प्राप्त करने में भी कठिनाई का सामना करना पड़ता। अतः पद्मावती और उदयन को विवाह की घटना नाटका में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।



इकाई-3

मेघदूतम् (उत्तरमेघ)

संरचना

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 महाकवि कालिदास का परिचय (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)
 - 1.2.1 महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व
 - 1.2.2 कालिदास का काल
 - 1.2.3 महाकवि कालिदास का कृतित्व
- 1.3 मेघदूत का कथानक
- 1.4 मेघदूत में रस, छन्द, अलंकार
- 1.5 मेघदूत में भाषाशैली
- 1.6 मेघदूत में प्रकृति-चित्रण
- 1.7 मेघदूत में नगरों का वर्णन
- 1.8 मेघदूत के पात्रों का चरित्र-चित्रण
 - 1.8.1 यक्ष
 - 1.8.2 यक्षिणी
 - 1.8.3 मेघ
- 1.9 सारांश
- 1.10 उत्तरमेघ के महत्वपूर्ण पद्यों की सप्रसङ्ग व्याख्या
- 1.11 अभ्यास प्रश्न
- 1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- महाकवि कालिदास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से परिचित होंगे।
- मेघदूत की कथावस्तु से परिचित होंगे।

- मेघदूत के साहित्यिक तथा सामाजिक महत्व को समझ सकेंगे।
- मेघदूत के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना :

“वाल्मीकि व्यास तथा कालिदास प्राचीन भारतीय इतिहास की अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं, और सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद भी इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राण तत्त्व सुरक्षित रहेंगे” महर्षि अरविन्द का यह कथन महाकवि कालिदास के महत्व को समझने के लिए पर्याप्त है। महाकवि कालिदास अपनी कृतियों में सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् का सामञ्जस्य स्थापित करने वाले महान् कलाकार हैं। कवि कालिदास ने अपनी कृतियों में जितना सुन्दर वर्णन बाह्य जगत् का किया है उतना ही मार्मिक व जीवन्त वर्णन आन्तरिक जगत् का किया है। वे भाव और कला दोनों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। यद्यपि कवि कालिदास की उत्तरवर्ती काव्यपरम्परा कला प्रधान होती गई, प्रायशः कवि बाह्य पक्ष को तो संवारते गए परन्तु अन्तःपक्ष पर उनका उतना अधिकार नहीं दिखता जितना कि महाकवि कालिदास का।

अतः वर्तमान समय में साहित्य की इस परम्परा को पूर्ववत् गरिमामय तथा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए महाकवि कालिदास जैसे प्राचीन कवियों की कृतियों का सिंहावलोकन अनिवार्य हो जाता है। इसी परम्परा में हम प्रस्तुत इकाई में महाकवि कालिदासकृत मेघदूत नामक काव्य का वैशिष्ट्य जानने का प्रयास करेंगे।

1.2 महाकवि कालिदास का परिचय :

सरस्वती के वरदपुत्र कविकुलकमलदिवाकर महाकवि कालिदास की रचनाएँ काव्य तथा नाटक के रूप में सतत भारतीय साहित्य को आध्यात्मिक बल प्रदान करती रहती हैं। यही कारण है कि इनकी प्रसिद्धि विश्व के समस्त देशों में महाकवि के रूप में है। विविध देशों के विद्वानों ने इनकी रचनाओं का अपनी भाषाओं में रूपान्तरित करके इनका सादर प्रचार एवं प्रसार किया है। ऐसा स्नेह अन्य किसी कवि की रचना को प्राप्त नहीं हुआ। लाक्षणिक आचार्यों ने काव्य के जिन- जिन लक्षणों का उल्लेख अपने लक्षण- ग्रन्थों में किया है उन सबका समानरूपेण अस्तित्व कालिदास के कृतियों में निहित है।

1.2.1 महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व

यशस्वी व्यक्ति से अपना सम्बन्ध जोड़ने की लालसा सबके हृदय में रहती है, यही स्थिति कालिदास की जन्मभूमि-निर्णय के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों की रही है। रघुवंश इनका सुप्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें वर्णित रघु की दिग्विजय यात्रा विद्वानों को इनकी जन्मभूमि विवेचन के लिए प्रेरित करती है। उक्त यात्रा प्रसंग में इन्होंने जिन-जिन स्थलों का सूक्ष्म

परिचय प्रस्तुत किया है, विद्वानों की दृष्टि वहाँ-वहाँ टिक जाती है परन्तु यह सम्भव नहीं है कि एक व्यक्ति इतने स्थानों का मूलनिवासी हो। इस प्रसंग में प्रमुख रूप से बंगाल और कश्मीर के नाम लिए जाते हैं। इसके बाद मेघदूत जो (खण्डकाव्य) के रूप में रचित इनकी कृति है, उसमें कवि ने मेघ को अपनी विरहिणी पत्नी के नाम सन्देश प्रेषित करने के सन्दर्भ में उज्जयिनी का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, उसको पढ़कर कालिदास के परिपुष्ट भौगोलिक ज्ञान तथा उज्जयिनी नगरी के प्रति उनका नैसर्गिक स्नेह सुतरां अभिव्यक्त होता है। इसमें सर्वाधिक विवेचनीय स्थल वह है, जहाँ यक्ष मेघ से कहता है— मार्ग तिर्यग् होने पर भी उज्जयिनी को अवश्य देखना। यदि तुम उसको ना देख पाए तो तुमको आँखों का फल नहीं प्राप्त होगा। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि ये उज्जैन के निवासी थे परन्तु मेघदूत में आए हुए ‘क्रौञ्चरन्ध्र’ के वर्णन को देख गढ़वाल देश के निवासी विद्वान् कालिदास को ‘अस्त्युत्तरस्यां दिशि’ में ले जाते हैं क्योंकि वहाँ ‘क्रौञ्चरन्ध्र’ नाम से एक प्रसिद्ध स्थान है।

कालिदास परम शिवभक्त थे। रघुवंश का मंगलाचरणपद्य, कुमारसम्भव का शिवराजधानीवर्णन, अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अष्टप्रकृतिशिवस्वरूप-चित्रण एवं भरतवाक्य, विक्रमोर्वशीयम् का मंगलाचरणपद्य और मालविकाग्निमित्रम् का मंगलाचरण पद्य यह इनकी नैष्टिक शिवभक्ति को प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त रघुवंशमहाकाव्य में इन्होंने उस राम की चर्चा की है जिन्होंने स्वयं विष्णु का अवतार होते हुए भी श्री रामेश्वरम् की स्थापना के बहाने अपने को शिवभक्त प्रसिद्ध किया।

1.2.2 कालिदास का काल

देश-काल आदि सम्बन्धी परिचय देने के अभाव की परम्परा में भी कालिदास अग्रगण्य है। अतः उनका स्थान एवं कालनिर्धारण एक दुरूह कृत्य है। यह प्रसिद्धि रही है कि महाकवि कालिदास श्रीविक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में अन्यतम थे। कुछ विद्वान् चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं। प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला मेघदूत में आए उत्तरदिशा के स्थानों के वर्णनपाटव तथा सटीक भौगोलिक वर्णन के कारण इनको कश्मीर का निवासी मानते हैं। तृतीय मतानुसार कालिदास को मगधनिवासी माना गया है, जिसका आधार रघुवंशस्थ मगध के प्रति इनके द्वारा अत्यादर को स्पष्ट करना है परन्तु यह मत उतना विश्वासभाजक नहीं है। कतिपय विद्वान् ‘कालिदास’ इस नाम के कारण इनको बंगाल का निवासी मानते हैं। परन्तु कवि ने रघु दिग्विजय में बंगाल की पराजय का वर्णन जिस निर्ममता से किया है उससे स्पष्ट होता है कि बंगाल उनकी जन्मभूमि नहीं है, क्योंकि मातृभूमि के प्रति स्वाभाविक प्रेम अगाध होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि कालिदास के जन्म स्थान के सम्बन्ध में प्रायः प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है परन्तु जिस प्रकार विविध विद्वानों के द्वारा

विभिन्न प्रदेशों से उनका सम्बन्ध जोड़ा गया उससे यह स्पष्ट होता है कि महाकवि कालिदास समस्त भारत के आदरणीय तथा स्पृहणीय कवि है। वे भारत में जहाँ भी उत्पन्न हुए, वे भारत के अपूर्व गौरव हैं।

1.2.3 महाकवि कालिदास का कृतित्व

महाकवि कालिदास ने कितने ग्रन्थों की रचना की, यह ठीक-ठीक रूप से कहना असम्भव है। इनके नाम से इतिहासकारों ने उनके रचनाओं का निराधार उल्लेख किया है तथा उनके सम्बन्ध में कहीं कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता है। हाँ कुछ कृतियाँ ऐसी हैं। जिनकी रचना उस महाकवि की ओजस्विनी लेखनी के अतिरिक्त दूसरे की लेखनी में सर्वथा असमर्थ समझी जाती है। वे रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

कुमारसम्भवम्, मेघदूतम्, रघुवंशमहाकाव्यम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञान- शाकुन्तलम्।

ऋतुसंहारम्- यह कालिदास की प्रथम काव्यकृति मानी जाती है किन्तु इसके ऋतुसम्बन्धी क्रम के सन्दर्भ में सबका एक मत नहीं है। इसमें कवि ने ग्रीष्म से आरम्भ कर छः ऋतुओं का मनोरम वर्णन किया है। अतः ऋतुसंहार कालिदास की कृति है इसके समर्थन में विद्वान् जो प्रमाण उपस्थित करते हैं, वह है ग्रीष्म ऋतु के संध्या काल का वर्णन। इसी को उन्होंने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथम अंक में भी दोहराया है।

कुमारसम्भवम्- यह कालिदास की रचना है इसमें किसी का मतभेद नहीं है। इसमें कवि ने कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति का संकल्प लिया है। यह प्रथम सर्ग से लेकर अष्टम सर्ग तक की कालिदास की कृति है उसके आगे नहीं। जो कवि प्रथम सर्ग में हिमालय की गुणवत्ता का वर्णन करते नहीं थकता जो तृतीय सर्ग में शिव जी की समाधि का कितना ओजस्वी वर्णन कर सकता है वह इसके 17वें सर्ग तक अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय ना दे, यह कालिदास जैसे विद्वान् के लिए अनहोनी सी बात है। अतः इन सर्गों को विद्वान् अन्य कवि की रचना के रूप में प्रक्षेप मात्र स्वीकार करते हैं।

मेघदूतम्- यह कालिदास की मौलिक प्रतिभा का अनुपम निदर्शन है। इसमें विरहविधुरा नवपरिणीता अपनी प्रिया के पास अभिशप्त यक्ष मेघ द्वारा सन्देश प्रेषित कर रहा है। यह महाकवि की अनूठी प्रज्ञा का परिणाम है। कालिदास की रचनाओं के सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है कि कालिदास की इस कल्पना का आधार रामायण का हनुमत् अथवा महाभारत का हंस रहा हो। इसमें पति पत्नी का विप्रलम्भ-शृंगार पूर्ण रूप से स्पष्ट एवं सफल हुआ है। कथानक के सौन्दर्य के साथ ही साथ उज्जयिनी जाने के मार्ग का

सही भौगोलिक चित्रण, महाकाल का पूजन तथा श्रीविशाला उज्जैन की समृद्धि का वर्णन इसके मुख्य आकर्षण हैं। यह दूतकाव्य पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ दो भागों में विभक्त है।

रघुवंशम्– 19 सर्गों में विभक्त यह महाकाव्य कालिदास की उत्कृष्ट रचना है। परवर्ती कवियों के लिए यह आदर्शकाव्य है। वास्तव में यहाँ कवि का उद्देश्य काव्य वर्णन रहा है ना कि वंशावली वर्णन। इसमें रघुवंशियों की वंशावली वाल्मीकि रामायण के वास्तविक क्रम से विपरीत चित्रित है। इसमें रघुवंशियों के उदात्त चरित्रों (गोपालन, प्रजावत्सलता, दानशीलता आदि) का लोकोत्तर वर्णन किया गया है। सबसे महान् संदेश है— राजा अथवा शासक वही योग्य है जो प्रजा के हृदय को जीत सके।

मालविकाग्निमित्रम्– इस नाटक में राजा अग्निमित्र तथा मालविका के परस्पर प्रेम का उत्तम चित्रण किया गया है। कवि ने राजा के अन्तःपुर में होने वाले प्रेम-ईर्ष्या-कामुकता-कामक्रीडा आदि विषयों का श्रेष्ठ वर्णन किया है। यह नाटक 5 अंकों में विभक्त है।

विक्रमोर्वशीयम्– यह 5 अंकों का त्रोटक है। इसमें कालिदास ने एक वैदिक प्रेमाख्यान (जो ऋग्वेद 10/15 तथा शतपथ ब्राह्मण 11.1 में निर्देशित है) को पुरुरवा तथा उर्वशी की प्रणयपूर्ण कथा के रूप में परिवर्तित किया है। पुरुरवा परोपकारी राजा है। उन्होंने राक्षस से उर्वशी की रक्षा की। उर्वशी पुरुरवा की रानी बन जाती है। बाद में पुरुरवा उर्वशी के विरह में पागल हो जाता है। यही प्रणयोन्माद कवि का मूल वर्ण्य विषय रहा है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्– यह 7 अंकों में विस्तृत कालिदास की यशस्वी कृति है। जिसकी रमणीयता से आकृष्ट हो विदेशी विद्वान् भी इसकी प्रशंसा करते हुए तृप्त नहीं होते। इसके अनुवाद प्रायः संसार की सभी भाषाओं में हो चुके हैं। इससे अधिक इसकी लोकप्रियता का दूसरा उदाहरण नहीं दिया जा सकता। जर्मन कवि गेटे का कथन है कि यदि तीनों लोकों का ऐश्वर्य एक स्थान पर प्राप्त करने की इच्छा हो तो इस नाटक का अध्ययन एवं मनन करना चाहिए। कामुक दुष्यन्त की लाज रखने तथा उनके चरित्र को उदात्त दिखलाने के अभिप्राय से ही महाकवि ने दुर्वासा के शाप की कृत्रिम कल्पना की है। अभिज्ञान-परिचय के लिए अर्थात् यदि मैं तुम्हें भूल जाऊँ तो मुझे अपनी अंगूठी देखकर सारी बातें याद आ जाएंगी। दी गई अंगूठी का सम्बन्ध शकुन्तला से होने के कारण इस नाटक का नाम अभिज्ञानशाकुन्तलम् रखा गया।

1.3 मेघदूत का कथानक :

संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का स्थान प्रमुख है। संस्कृत साहित्य के महान् कवि कालिदास की परिपक्व कला, कल्पना की ऊँची उड़ान, परिष्कृत माधुरी से युक्त शैली, विषय

की धारावाहिक गति एवं गीति की एकतानता इनके अद्भुत प्रमाण है। मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध लघु काव्य है। मेघदूत कुबेर के शाप से प्रिया से पृथक् हुए यक्ष के व्यथित हृदय की वेदना भरी कहानी है। साथ ही हृदय को द्रवित कर देने वाली विप्रलम्भ शृंगार से युक्त यह करुणगीतिका दो भागों में विभक्त की गई है, पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में श्लोकों की संख्या 63 तथा उत्तरमेघ में 52 है। इस प्रकार कुल 115 श्लोक है। तथा इनसे अतिरिक्त 5 अन्य प्रक्षीप्त श्लोक भी हैं।

पूर्वमेघ- प्रिया के प्रति अत्यधिकप्रेम होने के कारण अपने स्वामी यक्षेश्वर कुबेर द्वारा शाप के रूप में वर्ष भर के लिए कर्तव्य से प्रमाद करने के कारण यक्ष को अलकापुरी से निष्कासित किया जाता है। यक्ष अपने स्वामी कुबेर की आज्ञा से विन्ध्याचल में रामगिरि पर्वत पर रहने लगता है, आषाढ़ मास के आरम्भ में ही उसे रामगिरि पर्वत की चोटी पर उमड़ा हुआ बादल दिखाई देता है। तभी सहसा ही यक्ष का हृदय करुणा से द्रवित होता है, क्योंकि मेघ के दिखाई देने पर सुखी मानव का भी हृदय द्रवित हो जाता है फिर उस प्रेमी यक्ष विरही का तो कहना ही क्या जो प्रिया के आलिङ्गन के लिए अत्यधिक उत्सुक है। यक्ष अपनी प्रिया यक्षिणी, जो वियोग के दिन के खत्म होने की आशा में लगी हुई है उसके पास मेघ द्वारा अपने कुशल होने का समाचार देने के लिए प्रार्थना करता है और याचना करते हुए कहता है कि हे भाई! सन्तप्तों के तुम ही एकमात्र सहारा हो। तुम उत्तर दिशा की ओर जाकर अलकापुरी में मेरी प्रिया तक मेरे कुशल होने का सन्देश पहुँचाने की कृपा करो।

यक्ष मेघ से कहता है कि देखो इतनी मन्द-मन्द पवन चल रही है, चातक पक्षी बोल रहा है, बगुलों की पंक्तियाँ आकाश में उड़ रही हैं और साथ ही बाँबी से इन्द्रधनुष स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ये सभी शुभ संकेत के सूचक हैं। मैं सन्देश बताने से पहले बताना चाहता हूँ कि ग्रामीण भोली-भाली युवतियों द्वारा आनन्द से युक्त आँखों से पिए जाते हुए तुम माल देश को पार करके आम्रकूट पर्वत पर पहुँचना। वहाँ से कुछ दूरी पर विन्ध्याचल की उन्नतावनत तलहटी में विभिन्न धारा बनाकर बहती हुई रेवा नदी मिलेगी। वहाँ से तुम दशार्ण देश को जाना वहाँ पर जामुन के वन पके हुए फलों से काले बने होंगे। उसकी राजधानी में प्रवेश करके तुम प्रिया के भ्रूभंगयुक्त मुख की तरह चंचल तरंगों वाली वेत्रवती का जल पीना और 'नीचै' नाम वाले पर्वत पर अत्यधिक थकने के कारण विश्राम करना। वहाँ से कुछ क्षण विश्राम करके उज्जयिनी का मार्ग अत्यधिक टेढ़ा होने पर भी वहाँ जाना मत भूलना क्योंकि उज्जयिनी अत्यधिक सौन्दर्य से युक्त होने के कारण ऐसी प्रतीत होती है जैसे मानो वह स्वर्ग की एक टुकड़ी (नगरी) भूभाग पर प्रतिष्ठित हो गई हो। अन्यथा यहाँ की अटरियों में रहने वाली स्त्रियों से तुम्हारी आँखें वञ्चित ही रह जाएँगी। साथ ही निर्विन्ध्या

को पार करके तुम अवन्तिदेश में प्रविष्ट होना। वही उज्जयिनी जाने का मार्ग है। उज्जैन के बाजार में उपस्थित हीरे पत्थर को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र में जल के अतिरिक्त कुछ शेष ही न रहा हो। समीप में ही महाकाल शिव का मन्दिर है। वहाँ शिव जी की सायंकालीन पूजा के समय बज रहे नगाड़ों को अपनी दृष्टि से स्वयं देखना। वह क्षण उज्जयिनी में बिताकर प्रातःकाल होते ही गम्भीरा नदी को पार करके देवगिरी को पहुँचना। वहाँ पहुँचकर देवगिरी पर्वत के स्कन्धों पर वर्षा करना।

इसके पश्चात् चर्मण्वती नदी पर पहुँचना। उसी के समीप सुन्दर स्त्रियों से युक्त दशपुर को जाना। वहाँ से कुछ आगे ही अर्जुन ने क्षत्रियों पर जहाँ बाण बरसाए थे उस कुरुक्षेत्र को प्राप्त करोगे। हे मेघ! तुम वहाँ सरस्वती के जल को प्राप्त करोगे। वही पर कनखल है, जहाँ परम पावनी गंगा मैदान में बहने के लिए हिमालय से उतरती है। वहाँ देवदारु वृक्षों के घने वन मिलते हैं कहीं कस्तूरीमृग की सुगन्ध शोभायमान हो रही है तो कहीं शरभ तुम्हारी गर्जना सुनकर तुम्हारे साथ के लिए आकाश में उछलते हुए प्रतीत हो रहे हैं। कहीं मीठे स्वर गाती हुई किन्नरियाँ तथा कहीं मायूसी भरे हुए बाँस अपनी बाँसुरी बजा रहे होंगे। उस समय तुम्हारी गर्जना मृदंग के समान प्रतीत होगी। फिर वहाँ से कुछ उत्तर दिशा में क्रौंचरन्ध्र से युक्त तुम कैलाश पहुँच जाओगे, जो शिवजी का निवास स्थान है। उस पर्वत की गोद में उपस्थित अलकापुरी को ऊँचे-ऊँचे प्रसाद से युक्त होने के कारण तुम सहसा ही पहचान लोगे।

उत्तरमेघ- यक्ष मेघ को उत्तर दिशा में उपस्थित ऊँचे-ऊँचे प्रसादों से युक्त अलकापुरी की भव्यता को बताता है। अलकापुरी के फर्श मणियों, दीवारें विभिन्न प्रकार के चित्रों से सज्जित तथा रत्नों से युक्त है। अलकापुरी नगरी के वृक्षों पर 12 महीने फल लगे रहते हैं, जहाँ प्रत्येक सायंकाल प्रतिदिन चाँदनी से उज्ज्वल रहती है। जहाँ आनन्द के कारण आँसू, काम के कारण ताप, प्रेम के कारण कलह होती है। जहाँ सभी प्राणी यौवन अवस्था को प्राप्त किए हुए हैं। गृहों में सब प्रकार की विभूतियाँ एवं सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। वहाँ सर्वत्र प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है।

अलकापुरी में कुबेर के भवन से उत्तर की ओर मेरा घर है। जिसमें विविध रत्न-जटित बाहरी दरवाजा तुम्हें दूर से ही इन्द्रधनुष सा चमकता हुआ प्रतीत होगा। उसके अन्दर ही मेरी प्रिय द्वारा पाले गए मन्दार वृक्ष है। समीप में ही एक बावड़ी है, जिसकी सीढ़ियाँ मरकत मणियों से निर्मित हैं जिसके किनारे पर तुम्हारे समान ही क्रीडा-पर्वत है उद्यान में एक रक्त अशोक और एक बकुल वृक्ष है। समस्त चिह्न एवं द्वार पर चित्रित शंख और पद्म से मेरी अनुपस्थिति के कारण चुने हुए मेरे घर को तुम सहसा ही पहचान लोगे। घर

में ही तुम्हें वहाँ ब्रह्मा की आदिसृष्टि के समान एक सुन्दरी दिखलाई देगी, जो दुर्बल शरीर, पतली कमर और जिसकी आँखें डरी हुई हिरनी की तरह चंचल प्रतीत होगी, किन्तु चाल नितम्बभार के कारण अलसाई हुई सी प्रतीत होगी। उसे ही तुम मेरी पत्नी मानना। वह उस घर के अन्दर चक्रवाकी के समान अकेली निवास कर रही है, क्योंकि उसका सहचर मैं दूर यहाँ रामगिरी आश्रम में उपस्थित हूँ। मेरे वियोग के दुख में वह तुषार-पात से मारी हुई पद्मिनी की तरह प्रतीत हो रही होगी। उसे तुम कभी चित्र बनाने से विफल, गोद में वीणा रखकर गीतिका द्वारा व्यर्थ मनोविनोद, कभी मैना से बात करती हुई 'ओ मीठा बोलने वाली क्या तुझे कभी अपने स्वामी की याद आती है, तू उनके लिए बहुत ही प्यारी थी', कभी वह वियोग के शेष महीनों को देहलीज पर रखे हुए पुष्पों से गिनती हुई प्रतीत होगी। मेघ! तुम मेरी वियोगिनी पत्नी यक्षिणी को मेरे मित्र होने के विषय में बताते हुए सन्देश कहना- 'प्रिय! मैं प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, भयभीत हुई मृगियों की दृष्टि में तुम्हारे चितवन की, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख सौन्दर्य की, मयूरों की पूछों में तुम्हारे केश- पाश की और नदियों की लहरों में तुम्हारे विलास की कल्पना करता रहता हूँ, परन्तु दुःख की बात यह है कि उनमें से किसी में भी तुम्हारे अंगों की समता प्राप्त नहीं होती। एक वियोगिनी जिस प्रकार हृदय में कितनी आशाएँ रखे रहती है वैसे ही मैं भी तो अकेला इन वियोग की घड़ियों को किसी तरह काट रहा हूँ। हे यक्षिणी! निराश नहीं होना क्योंकि दुःख और सुख निरन्तर लगे रहते हैं। भाग्य का चक्र कभी ऊपर चला जाता है तो कभी नीचे चला जाता है। मेरे शाप के भी चार महीने ही शेष रह गए हैं। शरद् की चाँदनी रातों में वियोग के कारण बढ़ी हुई इच्छाएँ सहसा ही पूर्ण होंगी। अपना सन्देश देकर अन्त में यक्ष मेघ से बोला 'भाई यह मेरा सन्देश चाहे मित्रता के नाते बोलो चाहे मुझे दुःखी के प्रति दया के नाते बोलो' इस तरह मेघ से निवेदन करते हैं।

1.4 मेघदूत में रस, छन्द, अलंकार :

रस- रस काव्य का आत्मभूत तत्त्व है। रसयुक्त पद ही सहृदय के चित्त को आह्लादित करता है। महाकवि कालिदास प्रायः सभी रसों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। मेघदूत गीतिकाव्य का प्रधान रस विप्रलम्भ शृंगार है, क्योंकि इसमें विरह व्याकुल यक्ष-यक्षिणी की काम दशाओं का सजीव चित्रण किया गया है। विप्रलम्भ शृंगार रस के वर्णन में भी महाकवि कालिदास पूर्ण पटु है। यथा-

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया

निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।

हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-

दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणकिलष्टकान्तेर्बिभर्ति॥ (उ.मे.21)

अर्थात् अधिक रोने के कारण सूजे हुए नयनों वाला, लम्बी-लम्बी साँसों की गर्मी के कारण कान्तिहीन निचले होंठ वाला, हाथ पर रखा हुआ तथा लटकते हुए केशों के कारण पुराना दिखने वाला उस मेरी प्रिया का मुख तुम्हारे द्वारा ढंके जाने के कारण क्षीण कान्ति वाले चन्द्रमा की विवर्णता को निश्चित रूप से धारण कर रहा होगा। प्रकृत श्लोक में विरह की अवस्थाओं का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां

कच्चिद्भर्तुः स्मरसि? रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति॥ (उ.मे.22)

अर्थात् विरह से व्याकुल मेरी यक्षिणी या तो मेरी पूजा में व्यस्त होगी अथवा अर्धचेतन वह मूक सारिका से वार्तालाप कर रही होगी। इस प्रकार प्रेषितभर्ता की याद में यक्षिणी की कामावस्थाओं का विप्रलम्भ शृंगार में श्रेष्ठतम निदर्शन है। इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण काव्य में विप्रलम्भ शृंगार की मनोरम छटा द्रष्टव्य है।

छन्द- काव्य में रस सिद्धि के लिए सुन्दर शब्दार्थ योजना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु छन्द योजना भी अत्यन्त आवश्यक है। महाकवि ने वस्तु एवं रस के अनुकूल ही छन्दों का प्रयोग कर अपनी छन्द योजना शक्ति का परिचय दिया है। मेघदूत में सर्वत्र मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है। इसका लक्षण है- “मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्माभ- नौगौययुग्मम्” छन्द योजना का अर्थ के उत्कर्ष में विशिष्ट स्थान है। मन्दाक्रान्ता छन्द अपनी गेयात्मकता के लिए प्रसिद्ध है, अतः इस छन्द का प्रयोग शृंगार रस के वर्णन में अधिक प्रभावोत्पादक होता है इसीलिए महाकवि कालिदास ने सम्पूर्ण मेघदूत में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। निदर्शनार्थ यथा-

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः

शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।

यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु॥ (पू.मे.1)

प्रस्तुत श्लोक में क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण तथा दो गुरु वर्ण हैं, साथ ही 4, 6, 7वें अक्षर पर यति अर्थात् विराम है। इस प्रकार उक्त श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण पूर्णतः घटित होता है। मानव के अन्तःमानस भावों का सम्बन्ध आत्मा से होता है यह मनोविकार में प्रयुक्त शब्दों की स्वर लहरी में चलायमान होते हैं।

और यही ईश्वर लहरी छन्द की आत्मा है। कवि की कुशल काव्य कला का परिचय इनके छन्दों में देखने को मिलता है और महाकवि कालिदास इस कला के निपुणतम कवि है।

अलङ्कार- ‘अलङ्कुर्वन्तीति अलङ्कारः’ काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व अलङ्कार कहलाते हैं। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ मेघदूत में यथाप्रसंग विविध अलङ्कारों का प्रयोग कर अपने विशिष्ट नैपुण्य का परिचय दिया है। उन्होंने उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा एवं स्वाभावोक्ति, रूपक, विशेषोक्ति आदि का अधिक प्रयोग किया है। यत्र-तत्र काव्यलिंग, समासोक्ति, दृष्टान्त, अनुमान, अतिशयोक्ति आदि अलंकार भी प्रयोग हुए हैं।

कवि को अनुप्रास के साथ ही उपमा तथा अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है इसलिए कालिदास को उपमा सम्राट स्वीकार करते हैं, “उपमा कालिदासस्य”। कवि कालिदास ने अपने साहित्य में सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। कुछ विशिष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त

तोयोत्सर्गद्भुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।

रेवां द्रक्षस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णा

भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य॥ (पू.मे.19)

प्रस्तुत श्लोक में विन्ध्य पर्वत की ऊबड़-खाबड़ तलहटी में बिखरी नर्मदा नदी हाथी के शरीर पर बनी रेखाओं की चित्रकारी के समान बतायी गयी है। इस आधार पर यहाँ उपमा अलङ्कार की छटा देखते ही बनती है-

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-

स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।

यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-

मुद्गामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि॥ (पू.मे.25)

प्रस्तुत श्लोक में पुलकितमिव इस क्रियापद के साथ इव का प्रयोग करके सम्भावना व्यक्त की गयी है जिससे यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार स्पष्ट है-

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां

शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।

प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः

प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः॥ (पू.मे.39)

उज्जयिनी में उस समय अर्थात् सूर्योदय के समय प्रिय पतियों को अपनी खण्डिता नायिकाओं को शान्ति प्रदान करना होता है। इस कारण तुम सूर्य के मार्ग को छोड़ देना, सूर्य को मत रोकना। वह सूर्य कमलिनी के मुख से आँसू पोंछने के लिए आया हुआ है। तुम यदि उस सूर्य के किरण रूपी हाथों को रोक लोगे तो वह तुम्हारे प्रति क्रोधित हो जाएगा। इस श्लोक का पूर्वार्ध है- सूर्य का मार्ग ना रोकना। उसका कारण श्लोक के उत्तरार्ध में बताया गया है इस आधार पर यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार होता है। सूर्य पर नायक तथा कमलिनी पर नायिका का आरोप होने के कारण समासोक्ति अलंकार है। करोरुधि शब्द के कर का अर्थ हाथ और किरण दोनों होने से यहाँ पर श्लेष अलंकार भी है। इस प्रकार मेघदूत में सर्वत्र विविध अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, जो कवि के प्रौढ़ अलंकारात्मक ज्ञान का परिचायक तथा काव्य के उत्कर्ष को सर्वथा बढ़ाने वाला है।

1.5 मेघदूत में भाषाशैली :

महाकवि कालिदास की शैली संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। इस प्रतिष्ठा का श्रेय उनकी शैली को मिलता है कितना भी नीरस कथानक क्यों ना हो कवि उसे अपने अनुकूल कल्पनाप्रसूत अथवा वर्णना नैपुण्य से अत्यधिक चमत्कृत कर देते हैं। इन्होंने अपने काव्य में इतिहास से संग्रहित कथानक लिए और उन्हें अपनी काव्यकला से सजीव बनाकर सदा के लिए अमर कर दिया। कालिदास ने मेघदूत में वैदर्भी शैली का प्रयोग किया है। आचार्य दण्डी ने 'तेनेदं वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम्' ऐसा कहकर वैदर्भी रीति के प्रति कालिदास के प्रयोग- बाहुल्य तथा प्रेम को दर्शाया है। साहित्यदर्पण के अनुसार वैदर्भी रीति का लक्षण इस प्रकार है-

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।(सा.द.१.२)

अर्थात् ऐसी ललित रचना जिसमें माधुर्य व्यञ्जक वर्ण रहें। और वृत्ति ना हो अथवा हो तो अति लघु हो। मेघदूत की भाषा ललित, स्वाभाविक तथा अत्यन्त सरल है, जो कानों को सुनने में अत्यन्त मनोहर लगती है तथा अर्थ का बोध कराती है। कालिदास की सभी रचनाओं में ललित परिष्कृत प्रसादगुण पूर्ण शैली ही अधिक प्राप्त होती है। वे शब्दों की व्यंजना शक्ति पर अधिक बल देते हैं। तथा अभिधा शक्ति का कम प्रयोग करते हैं। इस कारण इनके भाव सदैव व्यंग्य ही रहते हैं।

1.6 मेघदूत में प्रकृति-चित्रण :

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में प्रकृति-चित्रण के वैविध्य को देखकर प्रकृति के प्रति उनके अगाध प्रेम तथा सौन्दर्यानुभूति का ज्ञान होता है। वे प्रकृति के पुजारी थे। कालिदास ने

प्रमुख रूप से प्रकृति के भव्य मनोरम रूप एवं सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। मानव और प्रकृति दोनों का ही मञ्जुल सम्बन्ध तथा अद्भुत समरसता का प्रदर्शन करके महाकवि ने प्रकृति के अन्दर स्फुरित होने वाले हृदय की पहचान की है। इस प्रकार कालिदास ने प्राकृतिक-चित्रण में प्रकृति को सजीव बना दिया है इसलिए कालिदास को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे प्रकृति के बाह्यरूप का जितना विवेचन करते हैं। अन्तःप्रकृति के भी उतने ही पारखी हैं। वे अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर प्राकृतिक दृश्यों का सफल चित्रण करते हैं। उनका प्रकृति वर्णन वैज्ञानिक होने के साथ- साथ प्रतिभा मण्डित है। उनके काव्य में सर्वत्र प्रकृति के रमणीय चित्र उपस्थित होते हैं।

महाकवि कालिदास ने मेघदूत में प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य का अद्भुत चित्रण किया है। मेघदूत में हिमालय के परिसर का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है। यहाँ गंगा स्वर्ग की सीढ़ी के समान ऊपर उठा देने वाली है-

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा

जह्मोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्।

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः

शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।।(पू.मे. 50)

आम्रकूट पर्वत के वर्णन में कवि का उपमा प्रयोग अत्यन्त चामत्कारिक बन उठा है-

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाग्नै-

स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां

मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।।(पू.मे.18)

अर्थात् पके हुए फलों से लदे आम के वृक्षों से घिरा हुआ आम्रकूट पर्वत पीला सा हो गया है। उसकी मेघाछन्न चोटी कोमल बालों के जूड़े के समान श्यामल होकर पृथ्वी के स्तन की भाँति प्रतीत होगी। मेघदूत में वर्णित प्रकृति मानव जीवन का अंग बन कर रह गई है। मेघदूत अमर गीतिकाव्य है। इसमें बाह्य प्रकृति की मनोरम दृश्य प्रस्तुत है। इस गीतिकाव्य में मानव जगत् को प्राकृतिक जगत् से सम्बद्ध किया गया है। वर्षा ऋतु और उसमें होने वाली प्राणियों की विविध उत्कण्ठा का जैसा चित्रण मेघदूत में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भोली भाली ग्राम वधुएँ मेघ को उत्सुकता से देखते हैं और चतुर पौर वधुएँ मेघ को अपने चंचल कटाक्षों का विषय बनाती हैं।

महाकवि कालिदास ने अपने प्रकृति चित्रण में समस्त जगत् के स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब देखा। वे प्रकृति को मानव का अभिन्न मित्र मानते हैं और उनका मानना है कि मानवीय भावों का प्रकृति के साथ गम्भीर सम्बन्ध रहता है-

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।(पू.मे.03)

प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त प्राकृतिक तत्वों के संरचनात्मक स्वरूप का भी महाकवि कालिदास ने पर्याप्त रूप से वर्णन किया है-

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।(पू.मे.5)

उक्त प्राकृतिक वर्णन को पढ़कर महाकवि कालिदास की प्राकृतिक संवेदना की गम्भीरता का भान होता है। साथ ही पाठक प्रकृति में सजीवता का अनुभव करता है तथा पाठक में प्रकृति के प्रति प्रेम, श्रद्धा तथा संवेदनाएँ झंकृत हो उठती हैं।

1.7 मेघदूत में नगरों का वर्णन :

संस्कृत साहित्य का प्रथम खण्डकाव्य मेघदूत अपनी तरह का एकमात्र खण्डकाव्य है, जहाँ पर महाकवि की संवेदनशीलता अपने उच्च शिखर पर प्राप्त होती है। इस खण्डकाव्य में मेघ के माध्यम से जिस मार्ग का वर्णन किया गया है वह पूर्णता भौगोलिक एवं प्रामाणिक है। मेघ अपना मार्ग रामगिरी से प्रारम्भ करके अलकापुरी तक पूरा करता है। मेघमार्ग के माध्यम से कवि ने मार्गगत नगरों का बहुत ही भव्य वर्णन किया है।

माल देश- अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ से कहता है कि रामगिरी के पश्चात् सर्वप्रथम तुम माल देश जाओगे, जहाँ पर कृषि का फल मेघ के अधीन होने से वहाँ की भोली-भाली स्त्रियाँ स्नेहपूर्ण दृष्टि से तुमको देखेंगी और तुम वहाँ पर कुछ बरस कर वहाँ की भूमि को सुगन्धित कर देना-

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।।(पू.मे.16)

दशार्णप्रदेश- यक्ष दशार्ण प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है, दशार्ण देश कलियों के अग्रभाग में विकसित केतकी के पुष्पों के कारण पीले रंग की कान्ति वाले उपवनों से घिरा हुआ है। घरों में बल-वैश्वदेव नामक धार्मिक कार्य द्वारा समर्पित अन्य को खाने वाले पक्षियों द्वारा घोंसलों की रचना से व्याप्त, गाँव की गलियों में खड़े पवित्र पीपल आदि वृक्षों वाला, जामुन के पके हुए फलों से युक्त है। इस प्रकार वर्षा ऋतु में विविध रंगों वाले, सभी दिशाओं में प्रसिद्ध दशार्ण देश में कुछ दिनों के लिए हरना-

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-

नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः॥ (पू.मे.23)

विदिशानगरी- वर्तमान मध्यप्रदेश में स्थित भेलसा नगरी दक्षिण प्रदेश की राजधानी विदिशा थी। विदिशा के प्रसंग में यक्ष कहता है कि विदिशा नगरी के पास पहुँचकर वेत्रवती नदी से मिलकर तुम्हें कामुकता का पूर्ण फल मिलेगा। महाकवि कालिदास ने चंचल तरंगों वाली वेत्रवती नदी के लहरों वाले तटवर्ती जल को नदीरूपी सुन्दरी के मुख के रूप में प्रस्तुत किया है।

उज्जयिनी नगरी-

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्

पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरी श्रीविशालां विशालाम्।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां

शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम्॥ (पू.मे.30)

मेघदूत में उज्जयिनी नगरी के प्रति महाकवि कालिदास का कुछ विशेष ही अनुग्रह दिखाई देता है। यद्यपि मेघ को उत्तर की ओर जाना है फिर भी यक्ष उससे कहता है कि आप कृपा करके उज्जयिनी अवश्य जाएं। यक्ष के अनुसार उज्जयिनी नगरी का अपना ही विशेष आकर्षण है। तुम उज्जयिनी के प्रासादों की शोभा से परिचय अवश्य प्राप्त करना। उज्जयिनी की नगरों के महलों के ऊपर वाले खंडों की शोभा अवश्य देखना। जब बिजली चमकेगी तब उज्जयिनी की सुन्दरियों की आँखें आश्चर्य से चंचल हो उठेंगी, वे तुम्हें चंचल और तिरछी चितवनों से देखेंगी। अगर तुमने उस चितवन को नहीं देखा तो कुछ नहीं देखा। तुम्हारा जीवन उनको देखे बिना व्यर्थ ही रहेगा। राजा उदयन कि यह उज्जयिनी नगरी अत्यधिक धन-संपत्ति से युक्त है। यक्ष के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वर्गवासियों

के रहने के लिए एक स्वर्ग का टुकड़ा ही जैसे भूभाग पर लाया गया हो। उज्जयिनी नगरी के वर्णन प्रसंग में शिप्रा नदी का भी उल्लेख किया गया है। महाकवि के अनुसार मार्ग की थकान को दूर करने के लिए शिप्रा की वायु पर्याप्त है। जिस प्रकार शिप्रा नदी रमणी की थकान को दूर करती है उसी प्रकार से तुम्हारे मार्ग के श्रम को भी इस नदी की वायु दूर कर देगी। उज्जयिनी के वैभव का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं की उज्जयिनी नगरी के बाजारों में विविध रत्न मणियाँ, शंख, सीपियाँ आदि सजाए हुए हैं और सभी को देखकर ऐसा लग रहा है जैसे सागर के रत्न यहीं पर आ गए हों और सभी समुद्र रत्नविहीन हो गए हैं।

भौतिक सौन्दर्य का वर्णन करके महाकवि उज्जयिनी के आध्यात्मिक तेज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह महाकाल की नगरी है। अतः उज्जयिनी में स्थित महाकाल के मन्दिर में अगर तुम सन्ध्या के अतिरिक्त किसी अन्य समय पहुँचे तो तुम्हें तब तक वहीं ठहरना चाहिए जब तक सूर्य दिखाई देते रहे, क्योंकि शूलपाणी शिव जी की सन्ध्याकालीन पूजा आरती में नगाड़े का काम करते हुए अपने गम्भीर गर्जनों के पुण्य फल को प्राप्त करना। शिव पूजा में सम्मिलित होकर अपनी गर्जना द्वारा नगाड़े का कार्य करने से तुम्हें शिवजी की पूजा का विशेष फल प्राप्त होगा। इस प्रकार उज्जयिनी के विविध सौन्दर्य का वर्णन महाकवि के उज्जयिनी प्रेम को दर्शाता है। इसी उज्जयिनी वर्णन के कारण कतिपय विद्वान् महाकवि कालिदास को उज्जैन का निवासी भी स्वीकार करते हैं।

अलकापुरी-

विद्युत्वनतं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः॥ (उ.मे.01)

मेघदूत खण्डकाव्य के अनुसार अलकापुरी ही मेघ का अन्तिम गन्तव्य है। विविध नगरों का वर्णन करते हुए यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम अलकापुरी पहुँच जाओगे तब वहाँ का सौन्दर्य देखकर ही तुम यह अनुमान कर सकते हो कि तुम अलकापुरी पहुँच गए हो। वहाँ गगनचुम्बी भवन मिलेंगे, उनमें निवास करने वाली सुन्दर स्त्रियाँ अपनी चपलता के कारण तुम्हारे भीतर से चमकने वाली बिजलियों भित्तियों पर चित्रित चित्र तुम्हारे इन्द्रधनुष से तथा संगीत के लिए बजने वाले नगाड़े जल धारण किये तुम्हारी गर्जना से समानता रखने में समर्थ हैं अलकापुरी देवों के कोषाध्यक्ष कुबेर की राजधानी है। इस कारण वहाँ पर अत्यधिक सम्पन्नता है। वहाँ की स्त्रियाँ बहुत सुन्दर हैं तथा अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिये अनेक प्रकार के श्रृंगार करती हैं अपने हाथ में लीलाकमल लिए रहती हैं। उनके केशों में नवीन

पुष्प गुँथे हुए रहते हैं। स्वभाविक रूप से उनका वर्ण गोरा है और अपने गोरेपन की वृद्धि करने के लिए अपने मुख पर लोध्र के पुष्पों की धूलि लगाती है उनकी माँग में कदम्ब के फूल हैं जिनका जन्म तुम्हारे आने के कारण से होता है। अलकापुरी का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है- यहाँ के पौधे और वृक्ष पुष्पों से लदे रहते हैं। यहाँ सरोवर नित्य कमलों से युक्त रहते हैं। जिन पर हंससमूह ऐसी शोभा देते हैं मानो वे कमलिनियाँ अपने कमर पर करधनियाँ धारण की हुई हैं। यहाँ सदा शुक्ल पक्ष रहता है इसलिए अन्धकार के प्रसार से सदा के लिए निवृत्त रहने के कारण यहाँ की रात्रियाँ अत्यधिक रमणीय होती हैं।

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-

नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।

नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद् विप्रयोगोपपत्तिः

वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।।(उ.मे.02)

यक्षों के सुखमय जीवन का परिचय कराते हुए यक्ष कहता है कि अलकापुरी में निवास करने वाले यक्षों की आँखों से आँसू प्रसन्नता के कारण ही निकलते हैं किसी कष्ट के कारण नहीं निकलते। अलकापुरी निवासी कामदेव के बाणों से ही आहत होते हैं। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से उनको कोई भय नहीं है। अलकापुरी में होने वाले वियोग भी प्रेम में विरह के कारण होते हैं। यक्ष जाति के लोग सदा युवा रहते हैं। अलकापुरी में युवा के अतिरिक्त कोई अवस्था ही नहीं है। इस प्रकार अलकापुरी निवासी सभी प्रकार से सन्तुष्ट हैं और सभी प्रकार का ऐश्वर्य अलकापुरी में विद्यमान है।

1.8 मेघदूत के पात्रों का चरित्र-चित्रण :

1.8.1 यक्ष

यक्ष मेघदूत खण्डकाव्य का नायक है। महाकवि कालिदास ने यक्ष के पात्र का सृजन कर सहृदय वियोगी के मनोभावों का जितना मार्मिक विश्लेषण किया है उतना अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है। प्रिया के वियोग में विफल होकर यक्ष मेघ से ही प्रार्थना कर उठता है कि मेरी प्रिया तक मेरी कुशलता के समाचार पहुँचा देना। एक जड़ वस्तु से दीनता में प्रार्थना कर उठना ही उसके शोक का उच्च शिखर है, जिसमें उसे जड़ चेतन का भी भान नहीं रहता। मेघदूत खण्डकाव्य का यक्ष कर्तव्यच्युत प्रवृत्ति का है।

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः

शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः। (पू.मे.1)

यक्ष अपने स्वामी कुबेर की पूजा अर्चना के निमित्त लाए जाने वाले पुष्पों को न लाने के कारण क्रोधित कुबेर के द्वारा शापित है। प्रिया के साथ रमण में वह इतना लीन हो गया

कि स्वामी के द्वारा प्रदत्त कर्तव्य का भी भान नहीं रहा। अब अपने ही कर्मों के फल को भोगता हुआ रामगिरी के आश्रम में अपने शाप की अवधि को बिता रहा है। मेघदूत का यक्ष एकपत्नी व्रत धारण किए हुए है। प्रिया के प्रति ईमानदार है। वियोग की स्थिति में भी वह निरन्तर अपनी पत्नी यक्षिणी को याद करके अपने दिन व्यतीत कर रहा है। उसके विरह से निरन्तर विकल रहता है। खण्डकाव्य का नायक यक्ष बहुत अधिक व्यवहारपटु भी है। वह मेघ को विभिन्न मार्गों पर होने वाली क्रियाओं तथा उनकी प्रतिक्रियाओं तथा कैसे वहाँ पर व्यवहार करना है इन सबका ज्ञान देता है। मेघदूत का यक्ष कुशल भूगोलवेत्ता इतिहासवेत्ता भी है। उसने रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का अत्यन्त सटीक वर्णन किया है। जो आज के परिप्रेक्ष्य में भी एकदम सही है साथ ही विविध प्रसंगों में पौराणिक ऐतिहासिक सन्दर्भों का भी उल्लेख करता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यक्ष का इतिहास सम्बन्धी ज्ञान भी उच्चकोटि का है। साथ ही वह शिव भक्त भी है। उज्जयिनी के वर्णन के प्रसंग में यक्ष से विशेष आग्रह करता है कि यदि आप सायंकाल की आरती से पहले उज्जयिनी पहुँच जाएँ तब कुछ देर विश्राम करके सायंकाल की आरती में उपस्थित होकर के ही आगे बढ़ें। सायंकाल की आरती में अपने गर्जन से नगाड़े की प्रतिध्वनि को उत्पन्न करते हुए भगवान शिव के प्रति अपनी अर्चना को व्यक्त करना। इससे शिव के प्रति उसकी अपार भक्ति व्यक्त होती है।

अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले

स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।

कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-

मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम्॥(पू.मे.34)

यक्ष विविध गुणों से युक्त है। वह स्वामिभक्त, प्रकृतिप्रिय, रहस्यज्ञाता, करुणप्रवृत्ति, विलासप्रिय, रतिकुशल तथा प्रकृतिकृपण भी है।

1.8.2 यक्षिणी

मेघदूत खण्डकाव्य की नायिका यक्षिणी अपने पति की प्रिया है तथा उसका निवास अलकापुरी में है। शाप के कारण यक्ष एक वर्ष की अवधि के लिए अपनी प्रिया से दूर है। उस समय यक्षिणी भी वियोग के समय पालन किए जाने वाले नियमों का कठोरता से पालन करती है।

यह उसके अपने पति के प्रति अगाध प्रेम को दर्शाता है। यक्ष की पत्नी यक्षिणी पूर्ण पतिव्रता है। पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का मन में भी ध्यान नहीं करती है। पति के वियोग में उसने साज-सज्जा केशविन्यासादि सभी श्रृंगार त्याग दिए हैं। साथ ही पति के

प्रति उसका सम्मान इस बात से स्पष्ट होता है कि कुबेर द्वारा प्रदत्त शाप के कारण वह पति को जाने से नहीं रोकती है तथा स्वामी की आज्ञा का पालन ना करने के कारण मिले हुए दण्ड में स्वयं भी भागी बनती हुई कष्ट को भोग कर रही है। यक्ष की पत्नी अपूर्व सौन्दर्यशालिनी है जिसका वर्णन यक्ष ने किया है

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी

मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥ (उ.मे.19)

यक्षिणी वियोग से अत्यधिक व्याकुल है शरीर कृशकाय हो गया है। मुख विवर्णत्व को प्राप्त हो गया है तथा समय समय पर कृशता के कारण मूर्च्छा को प्राप्त करती रहती है। यक्षिणी एक मुग्धा नायिका है।

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य! निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।

तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्

भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती॥ (उ.मे.23)

अलकापुरी गन्धर्व की नगरी होने के कारण सुख समृद्धि तथा ललित कलाओं में समृद्ध है। अतः यक्षिणी भी संगीत कला में अत्यधिक निपुण है। यक्ष के कथन के अनुसार यद्यपि यक्षिणी संगीत कला में अतिनिपुण है फिर भी विरह के कारण उसका स्वर किञ्चित् शिथिल हो गया है। मेघदूत की यक्षिणी शापावधि में पति के वियोग में साज-सज्जा आभूषण आदि का त्याग करके योगिनी की भाँति अपने जीवन का यापन कर रही है। साथ ही धैर्य के साथ अपने पति यक्ष की प्रतीक्षा में रत रहते हुए अपने स्वामी की आज्ञा का पालन कर रही है। इस प्रकार वह एक स्वामिभक्त, पतिव्रता, दृढप्रतिज्ञ नारी है।

1.8.3 मेघ

समस्त सृष्टि के पालनहार मेघ इस मेघदूत नामक खण्डकाव्य के भी आधार है। यक्ष में जीवन की आशा का संचार करने वाले है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि इस खण्डकाव्य में मेघ को दूत बनाया गया है, यह नामकरण ही मेघ की उपादेयता को सिद्ध करता है। मेघ इस संसार में सभी का नियामक है फिर वह चाहे अन्न की उत्पत्ति हो या किसी वियोगी के सन्देश का वाहकत्व। मेघदूत खण्डकाव्य में मेघ की स्तुति बहुधा की गई है।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूर बन्धुर्गतोऽहं

याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा॥(पू.मे.06)

महाकवि कालिदास के अनुसार यह मेघ पुष्कर, आवर्तव आदि वंश में उत्पन्न उच्च संस्कारों से युक्त है। साथ ही एक अनुकूल सन्देशवाहक है। मेघ हमेशा से ही लोकप्रिय रहे हैं चाहे उनको देखकर प्राणियों को होने वाली प्रसन्नता हो या फिर सहयोगी के वियोग में उनको देखकर होने वाली उत्कण्ठा दोनों ही स्थितियों में मेघ रोमाञ्च के साथ-साथ शरण प्रदान करने वाले हैं।

मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्ति चेतः

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे॥(पू.मे.3)

जो कोई भी मेघ की शरण में आता है वे उन्मुक्त होकर उनका स्वागत करते हैं तथा उनकी सहायता करते हैं। मेघ सभी के द्वारा पूज्य है स्तुत्य है। पर्वत भी उसे सिर पर धारण करते हैं-

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना

वक्ष्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाग्रकूटः॥(पू.मे.17)

लोक में भी देखा जाता है कि मेघ का आना शुभ शकुन माना जाता है। इस प्रकार मेघदूत का मेघ दूतकार्य के लिए परम विश्वसनीय तथा सर्वतः उपयुक्त है।

1.9 सारांश :

आन्तरिक मनोभावों को शब्द प्रदान कर उनको सर्वसाधारण के लिए अनुभूति योग्य बना देना ही महाकवि कालिदास की विशेषता है और अपने इस वैशिष्ट्य का प्रदर्शन महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत नामक खण्डकाव्य में किया है। मेघदूत मनुष्य के भावों के चरमोत्कर्ष को दर्शाते हुए यथार्थ के धरातल पर उनका वर्णन करता है। पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ इन दो भागों में विभक्त यह मेघदूत आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए बाह्य जगत् से आपका परिचय कराता है। प्रस्तुत खण्डकाव्य में साहित्यिक विवेचन के साथ-साथ ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा पौराणिक सन्दर्भों का भी यथोचित रीति से निवेश किया गया है। महाकवि कालिदास की यह कृति साहित्यिक रूप से जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही तत्कालीन भौगोलिक, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भी समृद्ध करती है। प्रकृत खण्डकाव्य में एक यक्ष प्रकृतिकृपण होकर मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसके विरह सन्देश को उसकी प्रिया

यक्षिणी तक अलकापुरी में पहुँचा दे। मेघदूत खण्डकाव्य का शीर्षक ही इस ग्रन्थ के महत्त्व को बताने के लिए पर्याप्त है। शीर्षक का अध्ययन मात्र करने से ही सहृदय पाठक में उत्कण्ठा हो जाती है कि कैसे कोई मेघ दूत का कार्य कर सकता है और कोई व्यक्ति कैसे और क्या सन्देश मेघ के माध्यम से भेज सकता है। मेघदूत नामकरण ही अपने आप में एक चमत्कार है। कवि की कल्पना अभूतपूर्व उपमा विविध उत्कर्षाधायक अलंकारों से युक्त अनुपम कृति है। यक्ष के माध्यम से कवि जहाँ कहीं मनुष्य के विरह का स्वाभाविक वर्णन करता है वही रामगिरी से अलकापुरी तक मेघ मार्ग के वर्णन में अपनी भौगोलिक निपुणता का भी परिचय देता है। वास्तविकता में मेघदूत खण्डकाव्य की परम्परा का उद्गाहक है। मेघदूत से प्रेरणा लेकर कितने ही कवियों ने दूतकाव्य, सन्देशकाव्य का प्रणयन किया। मेघदूत की 50 से अधिक संस्कृत व्याख्याएँ अब तक हो चुकी हैं। साथ ही विश्व की अनेक भाषाओं में इसका गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में अनुवाद हुआ है। एक आदर्श खण्डकाव्य (गीतिकाव्य) के जितने भी नियम निर्धारित किए गए हैं मेघदूत उन सभी कसौटी पर खरा उतरता है। महाकवि कालिदास की कल्पना, भावयोजना, भाषा, छन्द विधान सभी चरमोत्कर्ष पर हैं। महाकवि कालिदास की एकमात्र कृति मेघदूत ही उन्हें संसार में सर्वश्रेष्ठ कवि स्थापित करने में पर्याप्त है।

1.10 उत्तरमेघ के महत्त्वपूर्ण पद्यों की सप्रसङ्ग व्याख्या :

विद्युत्वनतं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः

प्रासादास्त्वं तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः॥१॥

अन्वयः— यत्र ललितवनिताः सचित्राः सङ्गीताय प्रहतमुरजाः मणिमयभुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रासादाः विद्युत्वनतं सेन्द्रचापं स्निग्धगम्भीरघोषम् अन्तस्तोयं तुङ्गं त्वां तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम्।

प्रसङ्ग— इस प्रथम श्लोक में यक्ष द्वारा मेघ को अलकापुरी का मार्ग बताया जा रहा है।

अनुवाद— जहाँ अलकापुरी में सुन्दर स्त्रियों वाले, चित्रों से युक्त, सङ्गीत के लिए मृदङ्ग बजाये गये, मणि आदि रत्नों से सुशोभित भूमि वाले, आकाश तक छूते शिखरों से युक्त भवन, बिजली से चमत्कार करने वाले, इन्द्रधनुष से युक्त, मधुर ओर गम्भीर गर्जन वाले, अपने अन्दर जल को धारण करने वाले और ऊँचे तुमसे उन- उन गुणों के कारण बराबरी करने में समर्थ हैं।

शब्दार्थ- ललितवनिता:- सुन्दर स्त्रियों वाले, सचित्रा:- चित्रों से युक्त, सङ्गीताय- संगीत के लिए, प्रहतमुरजा:- मृदङ्ग बजाये गये, मणिमयभुव:- मणि आदि रत्नों से सुशोभित भूमि वाले, विद्युत्त्वन्तम्- बिजली धारण करने वाले, सेन्द्रचापम्- इन्द्रधनुष से युक्त, स्निग्धगम्भीरघोषम्- मधुर व गम्भीर गर्जन वाले, अन्तस्तोयम्- अपने अन्दर जल धारण करने वाले, तुङ्गम्- ऊँचे, तुलयितुम्- बराबरी करने में, अलम्- समर्थ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- ललितवनिता:- ललिता: वनिता: येषु ते (बहु.)। सेन्द्रचापम्- इन्द्रस्य चापः (ष.त.) तेन सहितः (बहु.) तम्। सचित्रा:- चित्रेण सहिता: (बहु.)। प्रहतमुरजा:- प्रहता: मुरजा: येषु ते (बहु.)। स्निग्धगम्भीरघोषम्- स्निग्धः गम्भीरः घोषः यस्य सः (बहु.) तम्। मणिमय- मणि+मयट्। तुलयितुम्- तुल्+णिच्+तुमुन्।

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।

चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।2।।

अन्वय:- यत्र वधूनां हस्ते लीलाकमलम्, अलके बालकुन्दानुविद्धम्, आनने लोध्र प्रसवरजसा पाण्डुतां नीता श्रीः, चूडापाशे नवकुरबकम् कर्णे चारु शिरीषम् सीमन्ते च त्वदुपगमजं नीपम् (अस्ति)।

प्रसङ्ग- इस काव्यांश में यक्ष मेघ से अलकापुरी की स्त्रियों के पुष्पालङ्कार का वर्णन करता है।

अनुवाद- जहाँ अलकापुरी में स्त्रियों के हाथ में क्रीड़ा के कमल पुष्प, बालों में नये कुन्द पुष्पों का गुम्फन, मुख में लोध्र के पुष्पों के कर्णों से शुभ्रता से युक्त, वेणियों में नवकुरबक के पुष्प, कानों में सुन्दर चमकीले शिरीष पुष्प ओर माँग में तुम्हारे आने से उत्पन्न होने वाला कदम्ब पुष्प सुशोभित होता है।

शब्दार्थ- वधूनाम्- स्त्रियों के, लीलाकमलम्- क्रीड़ा के लिए धारण किया हुआ कमल पुष्प, अलके- बालों में, बालकुन्दानुविद्धम्- नये कुन्द पुष्पों का गुम्फन, लोध्रप्रसवरजसा- लोध्रपुष्पों के कर्णों से, पाण्डुताम्- शुभ्रता को, नीता- प्राप्त, श्री:- शोभा, नवकुरबकम्- नवीन कुरबक के पुष्प, चारु- सुन्दर, सीमन्ते- माँग में, नीपम्- कदम्ब पुष्प।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- लीलाकमलम्- लीलार्थम् कमलम् (मध्यपद लोपी त.)। अनुविद्धम्- अनु+व्य+क्त। नीता- नी+क्त+टाप्। लोध्रप्रसवरजसा- लोध्रस्य प्रसवा: (ष.त.), तेषां रजसा (ष.त.)ताम्। चूडापाशे- चूडानां पाशे (ष.त.)। नवकुरबकम्- नवं च कुरबकम् (कर्मधारय)। सीमन्ते- सीमन्तः अन्तः (ष.त.) तस्मिन्।

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि

ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।

आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं

त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वहतेषु॥३॥

अन्वयः— यस्यां यक्षाः उत्तमस्त्रीसहायाः (सन्तः) सितमणिमयानि ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि हर्म्यस्थलानि एतत् त्वद्गम्भीरध्वनिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु कल्पवृक्षप्रसूतं मधु आसेवन्ते।

प्रसङ्ग—इस पद्य में यक्ष मेघ से अलकापुरी में यक्षों के उपभोग का वर्णन करता है।

अनुवाद— जिस अलकापुरी में यक्ष सुन्दर स्त्रियों के साथ मिलकर स्फटिक मणि से जटित (अतः) तारों के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्पों से सुशोभित, महलों की अटारियों पर जाकर तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनि वाले पुष्कर नामक बाजों और नगाड़ों के धीरे- धीरे बजाये जाने पर, कल्पवृक्ष से उत्पन्न रतिफल नामक मदिरा का सेवन करते हैं।

शब्दार्थ— उत्तमस्त्रीसहायाः— सुन्दर स्त्रियों के साथ, सितमणिमयानि— स्फटिक मणि से जटित, ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि— तारों के प्रतिबिम्ब रूपी पुष्पों से सुशोभित, एतत्— जाकर, त्वद्गम्भीरध्वनिषु— तुम्हारे समान गम्भीर ध्वनि वाले, पुष्करेषु— पुष्कर नामक बाजों के, आहतेषु— बजाये जाने पर, कल्पवृक्षप्रसूतम्— कल्पवृक्ष से उत्पन्न, रतिफलम् मधु— रतिफल नामक मदिरा का, आसेवन्ते— सेवन करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— सितमणिमयानि— सिताः मणयः (कर्मधा.) तेषां विकाराः इति, सितमणि+मयट्। एतत्—आ+ङ्+ल्यप्। ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि— ज्योतिषां छायाः (षत.) ताः एव कुसुमानि (ष.त.) तैः रचितानि (तृ.त.)। उत्तमस्त्रीसहायाः— उत्तमाः स्त्रियः सहायाः येषां ते (बहु.)। आसेवन्ते— आ+सेव्, लट् प्र. पु. (बहु.)। रतिफलम्— रतिःफलम्, यस्य तत् (बहु.)। कल्पवृक्षप्रसूतम्— कल्पवृक्षात् प्रसूतम्, तत् (प.त.)। प्रसूतम्— प्र+सू+क्त। त्वद्गम्भीरध्वनिषु— गम्भीरश्चाऽसौ ध्वनिः (कर्मधा.) तव इव गम्भीरध्वनिर्येषां ते, तेषु (बहु.)।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरेः सेव्यमाना मरुद्भिः—

मन्दाराणामनुतरुहां छायया वारितोष्णाः।

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थितया यत्र कन्याः॥४॥

अन्वयः— यत्र अमरप्रार्थिताः कन्याः मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरेः मरुद्भिः सेव्यमानाः अनुतरुहां मन्दराणां छायया वारितोष्णाः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते।

प्रसङ्ग—इस श्लोक में अलकापुरी की कन्याओं की क्रीड़ा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद- जिस अलकापुरी में गङ्गा नदी के जल से शीतल पवनों द्वारा सेवा की जाती हुई, किनारों पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से रोकी गयी धूप वाली, देवताओं के द्वारा चाही जाने वाली, कन्याएँ सोने की बालू में मुट्टी में रखकर छिपायी गयी, अतएव खोजी जाने वाली मणियों से खेलती है।

शब्दार्थ- मन्दाकिन्याः- गङ्गा नदी के, सलिलशिशिरैः- जल से शीतल, सेव्यमानाः- सेवा की जाती हुई, अनुतटरुहाम्- किनारों पर उगे हुए, मन्दाराणाम्- मन्दार वृक्षों की, छाया- छाया से, वारितोष्णाः- रोकी गयी धूप वाली, अमरप्रार्थिताः- देवताओं द्वारा मांगी गयी कन्याः-सुन्दरियाँ, मन्दाकिन्याः- आकाशगङ्गा का, सलिलशिशिरैः- जल की शीतलता से, अन्वेष्टव्यः- खोजी जाने योग्य, रत्नैः- मणियों द्वारा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सलिलशिशिरैः- सलिलेन शिशिरैः (तृ.त.)। सेव्यमाना- सेव्+यक्+मुक्+शानच्। अनुतटरुहाम्- तटेषु इति अनुतटम् (अव्ययीभाव) अनुतटं रोहन्ति इति तेषाम् (उप- त.)। वारितोष्णाः- वारितः उष्णः यासां ताः (बहु.)। अन्वेष्टव्यः- अनु+इष्+तव्यत्। कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढः- कनकरेणु सिकताः (प.त.) तासु मुष्टिभिः निक्षेपः (तृ.त.) कनकसिकतासु मुष्टिनिक्षेपः (स.त.) तेन गूढैः (तृ.त.)।

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
हीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः॥५॥

अन्वयः- यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं क्षौमं रागात् आक्षिपत् हीमूढानां बिम्बाधराणां चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुङ्गान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखं प्राप्य अपि विफलप्रेरणा भवति।

प्रसङ्ग- इस श्लोक में यक्ष मेघ से अलकापुरी के स्त्री-पुरुषों की काम-क्रीड़ा का वर्णन करता है।

अनुवाद- जिस अलकापुरी में चञ्चल हाथों वाले प्रेमियों के द्वारा अधोवस्त्र की गाँठ के खुल जाने से ढीले हुए रेशमी वस्त्र को अनुराग के कारण हटा देने पर लज्जा से स्तम्भित हुई, बिम्बुफल के समान ओठों वाली स्त्रियों की चूर्ण की मुट्टी किरणों से उन्नत, रत्नरूपी दीपकों के सामने पहुँचकर भी निष्फल फेंकी हुई हो जाती है।

शब्दार्थ- अनिभृतकरेषु- चञ्चल हाथों वाले, क्षौमम्- रेशमी वस्त्र को, रागेषु- राग के कारण, हीमूढानाम्- लज्जा से आश्चर्य चकित हुई, बिम्बाधराणाम्- बिम्बुफल के समान ओठों वाली, चूर्णमुष्टिः- चूर्ण की मुट्टी, अर्चिस्तुङ्गान्- किरणों से उन्नत, रत्नप्रदीपान्- रत्नरूपी दीपों के, अभिमुखम्- सामने, प्राप्य- पहुँचकर, विफलप्रेरणा- निष्फल फेंकी हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- बिम्बाधराणाम्- बिम्बमिव अधरो यासां ताः बिम्बाधराः (बहु.) तासाम्। क्षौमम्- क्षुमाया विकारः क्षौमं तत्, क्षुमा+अण्। रागात्- रञ्ज्+घञ् (भावे) हेतौ पञ्चमी। अनिभृतकरेषु- न निभृताः (नञ्. त.) अनिभृताः करा येषां ते, तेषु (बहु.)। निभृताः- नि+भृ+क्त। आक्षिपत्सु- आ+क्षिप्+शतृ। अर्चिस्तुङ्गान्- अर्चिभिः तुङ्गाः (तृ.त.) तान्। अभिमुखम्- मुखम् प्रति (अव्ययी.- स.)। रत्नप्रदीपान्- रत्नानि एव प्रदीपाः (कर्मधा.), तान्।

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोलिङ्गनोच्छ्वासिताना-

मङ्गलानि सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।

त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे

व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।।७।।

अन्वयः- यत्र निशीथे त्वत्संरोधापगमविशदैः चन्द्रपादैः स्फुटजललवस्यन्दिनः तन्तुजालावलम्बाः चन्द्रकान्ताः प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानां स्त्रीणां सुरतजनिताम् अङ्गलानि व्यालुम्पन्ति।

प्रसङ्ग- इस श्लोक में यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों को होने वाली रतिजन्य थकान चन्द्रकान्त मणियों से दूर होती है।

अनुवाद- जहाँ अलकापुरी में अर्ध रात्रि में तुम्हारी रुकावट के हट जाने से निर्मल चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से स्वच्छ जलकण की बूंदों को टपकाने वाली झालरों में लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियाँ, प्रियतमों की भुजाओं से ढीले पड़े आलिङ्गनों वाली स्त्रियों की रतिक्रीड़ा से उत्पन्न शारीरिक थकान को दूर कर देती है।

शब्दार्थ- निशीथे- अर्ध रात्रि में, त्वत्संरोधापगमविशदैः- तुम्हारे व्यधान के हट जाने से निर्मल, चन्द्रपादैः- चन्द्र किरणों से, स्फुटजललवस्यन्दिनः- स्वच्छ जलकण की बूंदों को टपकाने वाली, तन्तुजालावलम्बाः- झालरों में लटकती हुई, चन्द्रकान्ताः- चन्द्रकान्त मणियाँ, अङ्गलानिम्- शारीरिक थकान को, व्यालुम्पन्ति- दूर करती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- प्रियतमभुजोलिङ्गनोच्छ्वासितालिङ्गनानाम्- प्रियतमानां भुजाः (ष. त.) तैः उच्छ्वासितानि (तृ.त.) तादृशानि आलिङ्गितानि यासां ताः (बहु.) तासाम्। अङ्गलानिम्- अङ्गानां ग्लानिः ताम् (प.त.), ग्लानिः- ग्लै+कितन् (भावे)। सुरतजनिताम्- सुरतेन जनिता (तृ.त.) ताम्। तन्तुजालावलम्बाः- तन्तूनां जालम् (ष.त.) तत् अवलम्बो येषां ते (बहु), अवलम्ब- अव+लम्ब्+अच्, त्वत्संरोधापगमविशदैः- तव संरोधः (ष.त.) तस्य अपगमः (ष.त.) तेन विशदाः तैः(तृ.त.)। चन्द्रपादैः- चन्द्रस्य पादाः (ष.त.) तैः।

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं,

प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।

सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघैः

स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः॥10॥

अन्वयः- यत्र मन्मथः धनपतिसखं देवं साक्षात् वसन्तं मत्वा भयात् षट्पदज्यं चापं प्रायः न वहति, तस्य आरम्भः सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येषु अमोघैः चतुरवनिताविभ्रमैः एव सिद्धः।

प्रसङ्ग- यहाँ यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों का भ्रूभङ्ग कामदेव के अस्त्रों के समान कार्य करता है।

अनुवाद- जहाँ अलकापुरी में कामदेव कुबेर के मित्र महादेव शिव को प्रत्यक्ष रूप में रहता हुआ जानकर भय के कारण भ्रमररूपी डोरी वाले धनुष को धारण नहीं करता है क्योंकि उसका कार्य टेढ़ी भौह करके चलाये गये नेत्रों वाले, कामुक जनरूपी निशानों पर सफल चतुर स्त्रियों के हाव-भाव से ही बन जाता है।

शब्दार्थ- मन्मथः- कामदेव, धनपतिसखम्- कुबेर के मित्र को, देवम्- महादेव शिव को, षट्पदज्यम्- भ्रमर रूपी डोरी वाले, चापम्- धनुष को, अमोघैः- सफल, चतुरवनिताविभ्रमैः- चतुर स्त्रियों के हाव-भाव से।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- धनपतिसखम्- धनानां पतिः (प.त.), तस्य सखा धनपतिसखः तम् (ष.त.)। मन्मथ- मनसः मथः (ष.त.), मन्+क्विप्, मथ+अच्। षट्पदज्यम्- षट् पदानि येषां ते (बहु.) ते ज्या यस्य तम् (बहु.)। कामिलक्ष्येषु- कामिन एव लक्ष्याणि ते (कर्मधारय)। अमोघैः- न मोघाः तैः (नञ्. त.)।

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं

दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।

यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे

हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः॥12॥

अन्वयः- तत्र धनपतिगृहाद् उत्तरेण अस्मदीयम् आगारं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन दूरात् लक्ष्यम्, यस्य उपान्ते मे कान्तया वर्धितः कृतकतनयः हस्तप्राप्यस्तवकनमितः बालमन्दारवृक्षः (अस्ति)।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से अलकापुरी में स्थित अपने घर की पहचान बताता है।

अनुवाद- वहाँ अलकापुरी में कुबेर के महल से उत्तर की ओर हमारा घर, इन्द्रधनुष के समान सुन्दर बाहरी दरवाजा से दूर से ही दिखायी देने वाला है, जिसके पास में मेरी प्रियतमा द्वारा पाला गया, गोद लिया पुत्र, हाथों से प्राप्त करने योग्य गुच्छों द्वारा झुकाया गया छोटासा मन्दार का वृक्ष है।

शब्दार्थ- धनपतिगृहान्- कुबेर के महल से, उत्तरेण- उत्तर की ओर, अस्मदीयम्- हमारा, आगारम्- घर, सुरपतिधनुश्चारुणा- इन्द्रधनुष के समान सुन्दर, तोरणेन- बाहरी दरवाजा से, उपान्ते- समीप, कान्तया- प्रियतमा द्वारा, वर्धितः- पाला गया, कृतकतनयः- गोद लिया पुत्र, बालमन्दारवृक्षः- छोटा सा मन्दार का वृक्ष।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- धनपतिगृहान्- धनानां पतिः (ष.त.) तस्य गृहाः तान् (ष.त.) । अस्मदीयम्- अस्मद्+छ (ईय)। लक्ष्यम्- लक्ष्य+ण्यत्। सुरपतिधनुश्चारुणा- सुराणां पतिः (ष.त.) तस्य धनुः (ष.त.) तद् इव चारु (उपमित कर्मधारय) तेन। कृतकतनयः- कृत एवं कृतकः कृतकश्चासौ तनयश्चेति कृतकतनयः (कर्मधा.) कृतकः- कृत+कन्। हस्तप्राप्यस्तबकनमितः- हस्तेन प्राप्याः (तृ.त.) ते च स्तबकाः (कर्मधा.) तैः नमितः (तृ.त)। नमितः- नम्+णिच्+क्त। बालमन्दारवृक्षः- मन्दारश्च असौ वृक्षः (कर्मधा.) बालश्च असौ मन्दारवृक्षः (कर्मधारय)।

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः

प्रत्यासन्नो कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी

काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः॥15॥

अन्वयः- अत्र कुरबकवृतेः माधवीमण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलयः रक्ताशोकः कान्तः केसरः च (स्तः)। एकः मया सह तव सख्याः वामपादाभिलाषी, अन्यः दोहदच्छद्मना अस्याः वदनमदिरां काङ्क्षति।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से कहता है कि क्रीड़ा शैल पर स्थित वृक्षों को देखना चाहिए।

अनुवाद- यहाँ क्रीड़ाशैल पर कुरबक की बाड़ वाले माधवी लता के कुञ्ज के अत्यन्त पास में हिलते हुए नवीन कोपलों वाला अशोक एवं सुन्दर बकुल मौलसरी का वृक्ष है। उनमें से एक मेरे साथ तुम्हारी सखी के (भाभी के) बायें पैर के प्रहार का इच्छुक है और दूसरा बकुल का वृक्ष दोहद के बहाने से उसके मुख की मदिरा को चाहता है।

शब्दार्थ- कुरबकवृतेः- कुरबक की बाड़ वाले, माधवीमण्डपस्य- माधवीलता के कुञ्ज के, प्रत्यासन्नौ- अत्यन्त पास में, चलकिसलयः- हिलते हुए नव कोपलों वाला, रक्ताशोकः- लाल अशोक का वृक्ष, कान्तः- सुन्दर, केसरः- बकुल, वामपादाभिलाषी- बायें पैर (के प्रहार) का इच्छुक, दोहदच्छद्मना- दोहद के बहाने से।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- रक्ताशोकः- रक्तश्च असौ अशोकः (कर्मधा.)। चलकिसलयः- चलानि किसलयानि यस्य सः (बहु.)। कान्तः- कम्+क्त। प्रत्यासन्नो-

प्रति+आ+सद्+क्त

(प्र.द्विव.)। कुरबकवृते:- कुरबका एव वृतिः यस्य तस्य (बहु)। माधवीमण्डपस्य- माधव्याः मण्डपस्य (ष.त.) मधौ भवः माधव्यः। वामपादाभिलाषी- वामश्च असौ पादः (कर्मधा.) तम् अभिलषति इति (उपपदत्.)।

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः

क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।

अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पाभासं

खद्योतालीविलसितनिभां विद्युन्मेषदृष्टिम्॥18॥

अन्वयः- शीघ्रसंपातहेतोः सद्यः कलभतनुतां गत्वा प्रथमकथिते रम्यसानौ क्रीडाशैले निषण्णः (त्वम्) अल्पाल्पाभासं खद्योतालीविलसितनिभां विद्युन्मेषदृष्टिम् अन्तर्भवनपतितां कर्तुम् अर्हसि।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसके घर पहुँचकर बिजली की चमक रूपी दृष्टि से देखें।

अनुवाद- हे मेघ! शीघ्र प्रवेश करने के लिये तत्काल हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को प्राप्त कर पहले कहे गये, सुन्दर शिखर वाले क्रीडा पर्वत पर बैठे हुए तुम मन्द-मन्द प्रकाश वाली जुगनुओं की पङ्क्ति की चमक से समानता रखने वाली बिजली की चमक रूपी दृष्टि को घर के अन्दर डालने में समर्थ होना।

शब्दार्थ- शीघ्रसंपातहेतोः- शीघ्र प्रवेश करने के लिए, सद्यः- तत्काल, कलभतनुताम्- हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को, गत्वा- प्राप्त करके, प्रथमकथिते- पहले कहे गये, रम्यसानौ- सुन्दर शिखर वाले, क्रीडाशैले- क्रीडा पर्वत पर, निषण्णः- बैठे हुए, अल्पाल्पाभासम्- मन्द- मन्द प्रकाश वाली, खद्योतालीविलसितनिभाम्- जुगनुओं की पङ्क्ति की चमक से समानता रखने वाली, अर्हसि- समर्थ हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- कलभतनुताम्- कलभस्य तनुताम् (ष.त.) अथवा कलभस्य तनुः इव, तनुः यस्य सः (बहु.) तस्य भावः (तद्धित), ताम्। शीघ्रसम्पातहेतोः- शीघ्रं सम्पातः (केवल समास) तस्य हेतोः (ष.त.), सम्पात- सम्+पत्+घञ्। क्रीडाशैले- क्रीडायाः शैलेः (ष. त.) तस्मिन्। प्रथमकथिते- प्रथमे कथिते (केवल स.)। रम्यसानौ- रम्याणि सानूनि यस्य तस्मिन् (बहु.)। निषण्णः- नि+सद्+क्त। अन्तर्भवनपतिताम्- भवनस्य अन्तः (अव्ययीभाव) अन्तर्भवने पतिताम् (स. त.)। कर्तुम्- कृ+तुमुन्। अल्पाल्पाभासम्- अल्पा च असौ अल्पा (कर्मधा.), अल्पाल्पा भाः यस्याः ताम् (बहु.)।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी

मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥१९॥

अन्वयः- तत्र तन्वी, श्यामा, शिखरिदशना, पक्वबिम्बाधरोष्ठी, मध्ये क्षामा, चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः, श्रोणीभारात् अलसगमना, स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा, युवतिविषये धातुः आद्या सृष्टिः इव या स्यात्।

प्रसङ्ग- इस काव्यांश में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के रूप का वर्णन करता है।

अनुवाद- वहाँ मेरे घर में कृश काय वाली, नवयौवन वाली, नुकीले दाँत वाली, पके हुए बिम्बफल के समान नीचे के ओंठ वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान दृष्टि वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार के कारण मन्दगति से चलने वाली, स्तनों के कारण कुछ झुकी हुई, युवतियों के विषय में ब्रह्मा की मानो सर्वप्रथम रचना हो।

शब्दार्थ- तन्वी- पतले शरीर वाली, श्यामा- नवयौवन वाली, शिखरिदशना- नुकीले दाँतों वाली, पक्वबिम्बाधरोष्ठी- पके हुए बिम्बफल के समान नीचे के ओंठ वाली, मध्ये क्षामा- पतली कमर वाली, चकितहरिणीप्रेक्षणा- डरी हुई हरिणी के सदृश दृष्टि वाली, निम्ननाभिः- गहरी नाभि वाली, युवतिविषये- युवतियों के विषय में, धातुः- विधाता ब्रह्मा की, आद्या सृष्टिः- सर्वप्रथम रचना, स्यात्- हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- तन्वी- तनु+ङीष्। पक्वबिम्बाधरोष्ठी- पक्वम् च तत् बिम्बम् (कर्मधा.) अधश्च असौ ओष्ठः (कर्मधा.), पक्वं बिम्बम् इव अधरौष्ठः यस्याः सा (बहु.)। चकितहरिणीप्रेक्षणा- चकिता च असौ हरिणी (कर्मधा.) तस्याः प्रेक्षणे इव प्रेक्षणे यस्याः (बहु.)। प्रेक्षणा- प्र+ईक्ष्+ल्युट्। निम्ननाभिः- निम्ना नाभिः यस्याः सा (बहु.)। श्रोणीभारात्- श्रोण्याः भारः तस्मात् (ष.त.), अलसगमना- अलसं गमनं यस्याः सा (बहु.) स्तोकनम्रा- स्तोकं यथा स्यात् तथा नम्रा (केवलस.)। युवतिविषये- युवतीनां विषये (ष.त.)। सृष्टि- सृज्+कितन्।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां

कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति॥२२॥

अन्वयः- सा बलिव्याकुला वा, विरहतनु भावगम्यं मत्सादृश्यं लिखन्ती वा, मधुरवचनां पञ्जरस्थां सारिकां रसिके भर्तुः स्मरसि कच्चित् हि त्वं तस्य प्रिया इति पृच्छन्ती वा ते आलोके पुरा निपतति।

प्रसङ्ग- इस श्लोक में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन करता है।

अनुवाद- वह मेरी प्रिया पूजा में लगी हुई या विरह से दुबले, तथा कल्पना से ही जाने गये मेरे आकार को चित्रित करती हुई या मीठा बोलने वाली पिंजरे में बन्द मैना से- हे रसिके! क्या तुझे कभी स्वामी की याद आती है, क्योंकि तू उनकी प्यारी है या ऐसा पूछते हुई मेरी प्रिया आपकी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी।

शब्दार्थ- बलिव्याकुला- पूजा में लगी हुई, विरहतनु- विरह से दुबले, भावगम्यम्- कल्पना से ही जाने गये, लिखन्ती- चित्रित करती हुई, मधुरवचनाम्- मीठा बोलने वाली, पञ्जरस्था- पिंजरे में बन्द, रसिके- रसीली, आलोके- दृष्टि में, पुरा- शीघ्र, निपतति- पड़ेगी (दिखायी देंगी)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- आलोके- आ+लोक्+घञ् (भावे. स.)। निपतति- नि+पत्, लट् प्रपु. एकव.। बलिव्याकुला- बलिषु व्याकुला (स.त.)। विरहतनु- विरहेण तनु (तृ.त.)। मत्सादृश्यम्- मम साद् श्यम्, तत् (ष.त.)। भावगम्यम्- भावेन गम्यम् (तृ.त.), गम्यम्- गम्+यत्। लिखन्ती- लिख्+शतृ+ङीप्, प्र.एकव.।

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा

विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।

सम्भोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती,

प्रायेणेते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः॥२४॥

अन्वयः- विरहदिवसस्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहलीदत्तपुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती वा, हृदयनिहितारम्भं संभोगम् आस्वादयन्ती वा (ते आलोके पुरा निपतति)। प्रायेण अङ्गनानां रमणविरहेषु एते विनोदाः (भवन्ति)।

प्रसङ्ग- इस श्लोक में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

अनुवाद- अथवा विरह के दिनों से निश्चित की हुई शाप की अवधि के शेष रहे महीनों को देहली पर रखे गये पुष्पों के द्वारा गिनने से पृथ्वी पर रखती हुई अथवा मनोकल्पना के द्वारा आरम्भ किये गये संभोग का आस्वादन करती हुई वह मेरी प्रिया तेरी दृष्टि में शीघ्र पड़ेगी। प्रिय स्त्रियों के प्रियतमों के वियोग के दिनों में ये ही मन बहलाने के उपाय होते हैं।

शब्दार्थ- विरहदिवसस्थापितस्य- विरह के दिन से निश्चित की गयी, देहलीदत्तपुष्पैः- देहली पर रखे गये पुष्पों के द्वारा, विन्यस्यन्ती- रखती हुई, हृदयनिहितारम्भम्- मन में कल्पना के द्वारा आरम्भ किये गये, आस्वादयन्ती- आस्वादन करती हुई, रमणविरहेषु- प्रियतमों के वियोग के दिनों में, विनोदाः- मन बहलाने के उपाय।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- विरहदिवसस्थापितस्य- विरहस्य दिवसः (ष.त.) तस्मात् स्थापितस्य (प.त.)। अवधेः- अव+धा+कि, ष. एकव.। विन्यस्यन्ती- वि+नि+अस्+शतृ+डीप् प्र. एक.व.। देहलीदत्तपुष्पैः- देहल्यां दत्तानि (स.त.) तानि च पुष्पाणि तैः (कर्मधा.)। हृदयनिहितारम्भम्- हृदये निहितः (स.त.) तादृशः आरम्भः यस्य तम् (बहु)।

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः

शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।

मत्सन्देशः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे

तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः॥25॥

अन्वयः- अहनि सव्यापारां ते सखीं विप्रयोगः तथा न पीडयेत्, रात्रौ निर्विनोदां गुरुतरशुचं शङ्के। निशीथे उन्निद्राम् अवनिशयनां साध्वीं तां मत्सन्देशैः अलं सुखयितुं सौधवातायनस्थः पश्य।

प्रसङ्ग- इस पद्यांश में यक्ष मेघ से कहता है कि उसकी विरहपीड़ित प्रिया को रात्रि में संदेश पहुँचाने के लिये महल के झरोखे से देखना।

अनुवाद- दिन में कार्यरता तुम्हारी भाभी को मेरा वियोग उतना नहीं सताता होगा। (परन्तु) रात में विनोदरहित तुम्हारी भाभी के अधिक दुःखी होने की आशङ्का करता हूँ। अतः अर्धरात्रि में उचटती हुई नींद वाली पृथ्वी पर लेटी हुई पतिव्रता उसको मेरे सन्देशों के द्वारा अत्यधिक सुखी करने के लिये भवन के झरोखे में बैठकर देखना।

शब्दार्थ- सव्यापाराम्- काम में लगी हुई, विप्रयोगः- वियोग, पीडयेत्- सताता होगा, निर्विनोदाम्- विनोदरहित, गुरुतरशुचम्- अधिक दुःखी होने की, निशीथे- अर्धरात्रि में, उन्निद्राम्- उचटी हुई नींद वाली, अवनिशयनाम्- पृथ्वी पर लेटी हुई, साध्वीम्- पतिव्रता को, सौधवातायनस्थः- भवन के झरोखे में बैठकर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- सव्यापाराम्- व्यापारेण सह वर्तमाना सव्यापारा ताम् (बहु), व्यापाराः- वि+आ+पृ+घञ्। पीडयेत्- पीड्+विधिलिङ् प्र- पु- एकव.। विप्रयोगः- वि+प्र+युज्+घञ्। निर्विनोदाम्- निर्गतः विनोदः यस्याः ताम् (बहु.), निर्+वि+नुद्+घञ्। मत्सन्देशैः- मम सन्देशैः (ष.त.), सन्देशैः- सम्+ दिश्+घञ्। उन्निद्राम्- उद्गता निद्रा यस्याः सा ताम् (बहु.)।

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपाश्वर्वा

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्॥26॥

अन्वयः- आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वे प्राचीमूले कलामात्रशेषां हिमांशोः तनुम् इव (स्थिताम्) या रात्रिः मया सार्धम् इच्छारतैः क्षणः इव नीता ताम् एव विरहमहतीम् उष्णैः अश्रुभिः यापयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य)।

प्रसङ्ग- इस काव्यांश में कवि ने यक्षिणी की विरहावस्था का स्वाभाविक चित्रण किया है।

अनुवाद- मनोव्यथा से क्षीण हुई विरह की शय्या पर टेके हुए एक पावँ वाली, मानो पूर्व दिशा के मूल क्षितिज में एक कलामात्र अवशिष्ट चन्द्रमा की मूर्ति, तथा जो रात मेरे साथ इच्छानुसार रमण क्रियाओं के द्वारा एक क्षण के समान व्यतीत की थी, उस पतिव्रता को वियोग के कारण लम्बी हुई (रात) को गर्म आँसुओं के द्वारा बिताती हुई देखना।

शब्दार्थ- आधिक्षामाम्- मनोव्यथा से क्षीण हुई, विरहशयने- विरह की शय्या पर, प्राचीमूले- पूर्व दिशा के मूल (क्षितिज) में, कलामात्रशेषाम्- एक कला मात्र अवशिष्ट, हिमांशोः- चन्द्रमा की, तनुम् इव- मूर्ति के समान, इच्छारतैः- इच्छानुसार रमण क्रियाओं के द्वारा, क्षण इव- एक क्षण के समान, नीता- व्यतीत की, विरहमहतीम्- वियोग के कारण लम्बी (असह्य)हुई (रात्रि को), यापयन्तीम्- बिताती हुई (देखना)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- विरहशयने- विरहे शयनं तस्मिन् (स.त.)। प्राचीमूले- प्राच्याः मूले (ष.त.)। कलामात्रशेषाम्- कला एव कलामात्रम् (तद्धित) कलामात्रशेषः यस्याः ताम् (बहु.)। हिमांशोः- हिमाः अंशवः यस्य तस्य(बहु.)। नीता- नी+क्त+टाप्। इच्छारतैः- इच्छया कृतानि रतानि तैः (मध्यम पदलोपी त.)। विरहमहतीम्- विरहेण महतीम् (तृ.त.)।

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्

पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सनिवृत्तं तथैव।

चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्चादयन्तीं

साध्रेऽद्धीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्॥27॥

अन्वयः- जालमार्गप्रविष्टान् अमृतशिशिरान् इन्दोः पादान् पूर्वप्रीत्या अभिमुखं गतं तथा एव सनिवृत्तं, चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्ती साध्रे अद्धि न प्रबुद्धां न सुप्ता स्थलकमलिनीम् इव।

प्रसङ्ग- पुनः यहाँ यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

अनुवाद- झरोखों के मार्ग से अन्दर प्रविष्ट हुई, अमृत के समान शीतल चन्द्रमा की किरणों की ओर पूर्व स्नेह के कारण गयी हुई (लेकिन) तुरन्त ही लौटी हुई दृष्टि जो दुःख के कारण आँसुओं से भारी पलकों से ढकती हुई मेघों से आच्छन्न दिन में अविकसित और रात्रि में अमुकुलित स्थलकमलिनी के समान उस पतिव्रता को देखना।

शब्दार्थ- जालमार्गप्रविष्टान्- झरोखों (खिड़कियों) के मार्ग से अन्दर प्रविष्ट हुई, अमृतशिशिरान्- अमृत के समान शीतल, इन्दोः- चन्द्रमा की, पादान्- किरणों को, पूर्वप्रीत्या- पूर्व स्नेह के कारण, संनिवृत्तम्- लौटी हुई, खेदात्- दुःख के कारण, सलिलगुरुभिः- आँसुओं से भारी, पक्ष्मभिः- पलकों से, छादयन्तीम्- ढकती हुई को, न प्रबुद्धाम्- अविकसित।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- जालमार्गप्रविष्टान्- जालानां मार्गाः (ष.त.) तेभ्यः प्रविष्टान् (प.त.), प्रविष्टान्- प्र+विश्+क्त, द्वि. बहुव. । अमृतशिशिरान्- अमृतम् इव शिशिराः तान् (उपमित समास) अथवा अमृतेन शिशिरास्तान् (तृ.त.)। पूर्वप्रीत्या- पूर्व प्रीतिः तथा (केवल समास) अथवा पूर्वा चा असौ प्रीतिः तथा (कर्मधा.)। गतम्- गम्+क्त। संनिवृत्तम्- सम्+नि+वृत्+क्त। सलिलगुरुभिः- सलिलेन गुरुभिः (तृ.त.)। न प्रबुद्धाम्- न प्रबुद्धा ताम् (केवलस.)। स्थलकमलिनीम्- स्थलस्य, स्थले वा कमलिनी ताम् (ष. अथवा स.त.)।

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्ती

शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।

मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-

माकाङ्क्षन्ती नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशम्॥28॥

अन्वयः- शुद्धस्नानात् परुषं नूनम् आगण्डलम्बम् अलकम् अधरकिसलयक्लेशिना निःश्वासेन विक्षिपन्ती स्वप्नजः अपि मत्संभोगः कथम् उपनयेत् इति नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशां निद्राम् आकाङ्क्षन्तीम् (तां पश्य)।

प्रसङ्ग- पुनः इस काव्यांश में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन है।

अनुवाद- साधारण स्नान से रूखे, निश्चय ही कपोलों तक लटकने वाले बालों की किसलय के समान निचले ओंठ को पीड़ित कर देने वाली लम्बी साँस से हिलाती हुई, तथा स्वप्न में उत्पन्न भी मेरा संभोग किसी प्रकार प्राप्त हो जाये- इस प्रकार आँखों के पानी के प्रवाह से रोके गये स्थान वाली निद्रा की इच्छा करती हुई उस पतिव्रता को देखना।

शब्दार्थ- शुद्धस्नानात्- शुद्ध जलमात्र स्नान से, परुषम्- रूखे, आगण्डलम्बम्- कपोलों तक लटकने वाले, अधरकिसलयक्लेशिना- किसलय के समान निचले ओंठ को पीड़ित (तपाने वाले) कर देने वाले, निःश्वासेन- लम्बे साँस से, विक्षिपन्तीम्- हिलाती हुई, स्वप्नजः- स्वप्न में उत्पन्न, नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशम्- आँखों के पानी के प्रवाह से रोके गये स्थान वाली, आकाङ्क्षन्तीम्- इच्छा करती हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- विक्षिपन्तीम्- वि+क्षिप्+शतृ+ङीप्, द्वि. एकव.। शुद्धस्नानात्- शुद्धं च तत् स्नानम् (कर्मधा.) तस्मात्। आगण्डलम्बम्- आगण्डाभ्यमिति आगण्डम्

(अव्ययीभाव) आगण्डम् लम्ब (केवल समास)। **मत्संभोगः**— मम मया वा संभोगः (ष. अथवा तृ.त.)। **स्वप्नज**— स्वप्नात् जायते इति (उप. त.), स्वप्न+जन्+ङ। **नयनसलिलोत्पीडारुद्धावकाशाम्**— नयनयोः सलिलम् (ष.त.), तस्य उत्पीडः (ष.त.), तेन रुद्धः अवकाशः यस्याः ताम् (बहु.), **उत्पीड**— उत्+पीड्+घञ्।

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा

शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।

स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृतसारयन्तीं

गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण॥29॥

अन्वयः— आद्ये विरहदिवसे दाम हित्वा या शिखा बद्धा, शापस्य अन्ते विगलितशुचा मया उद्वेष्टनीयां स्पर्शक्लिष्टां कठिनविषमाम् एकवेणीं ताम् अयमितनखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत् सारयन्तीम् (तां पश्य)।

प्रसङ्ग— इस पद्य में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है।

अनुवाद— विरह के पहले दिन पुष्पमाला को त्यागकर, जो चोटी बाँधी थी, शाप के अन्त होने पर नष्ट हुए शोक वाले मेरे द्वारा खोले जाने वाली, स्पर्श करने में दुःखदायी, कठोर, उलझी हुई एक वेणीरूप उस शिखा को, बिना कटे नाखूनों वाले हाथ से गालों के प्रदेश से बार-बार हटाती हुई मेरी उस पतिव्रता को देखना।

शब्दार्थ— आद्ये— पहले, विरहदिवसे— विरह के दिन, दाम— पुष्पमाला, हित्वा— त्यागकर, शिखाबद्धा— चोटी बाँधी थी, विगलितशुचा— नष्ट हुए शोक वाला, उद्वेष्टनीयाम्— खोली जाने वाली, स्पर्शक्लिष्टाम्— स्पर्श करने में दुःखदायी, कठिनविषमाम्— कठोर, उलझी हुई, एकवेणीम्— एक वेणी रूप, अयमितनखेन— बिना कटे नाखूनों वाले, सारयन्तीम्— हटाती हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी— **बद्धा**— बन्ध्+क्त+टाप्। **विरहदिवसे**— विरहस्य दिवसे (ष.त.)। **हित्वा**— हा+क्त्वा। **शाप**— शप्+घञ्। **विगलितशुचा**— विगलिता शुक्, यस्य तेन (बहु.)। **उद्वेष्टनीयाम्**— उद्गतं वेष्टनं यस्याः सा उद्वेष्टना (बहु.)। **स्पर्शक्लिष्टाम्**— स्पर्श क्लिष्टा ताम् (स.त.), **क्लिष्टा**— क्लिश्+क्त+टाप्। **अयमितनखेन**— अयमिता नखाः यस्य तेन (बहु.), **एकवेणीम्**— एका वेणी (कर्मधा.) ताम्।

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।

त्वामप्यसं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा॥30॥

अन्वयः- अबलां संन्यस्ताभरणम् असकृत् दुःखदुःखेन शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं गात्रं धारयन्ती सा अवश्यं त्वाम् अपि नवजलमयम् अम्रम् मोचयिष्यति, प्रायः आर्द्रान्तरात्मा सर्वः करुणावृत्तिः भवति।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से कहता है कि मेरी प्रिया की विरहावस्था को देखकर तुम स्वयं अवश्य दुःखी हो जायोगे।

अनुवाद- दुर्बल हुई और आभूषणों का त्याग किये हुये, बार-बार कठिनाई से शय्या पर रखे हुए, कोमल शरीर को धारण करने वाली वह (तुम्हारी भाभी) अवश्य ही तुमको भी नये जल के रूप में आँसुओं को छुड़ा देगी अर्थात् रुला देगी क्योंकि प्रायः कोमल हृदय वाले सभी दयालु स्वभाव के होते हैं।

शब्दार्थ- संन्यस्ताभरणम्- आभूषणों का त्याग किये हुए, दुःखदुःखेन- कठिनाई से, शय्योत्सङ्गे- शय्या पर, पेशलम्- कोमल, नवजलमयम्- नये जल के रूप में, आँसुओं को, मोचयिष्यति- छुड़ा देगी, करुणावृत्तिः- दयालु स्वभाव के।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- संन्यस्ताभरणम्- संन्यस्तानि आभरणानि यस्मात् तत् (बहु.)। अबला- अविद्यमानं बलं यस्याः सा (नञ्. बहु.)। धारयन्ती- धृ+णि+शतृ+ङीप्। शय्योत्सङ्गे- शय्यायाः उत्सङ्गे (ष.त.), उत्सङ्ग- उद्+सञ्ज्+घञ्। असकृत्- न सकृत् (नञ्. त.)। नवजलमयम्- नवं च तत् जलम् (कर्मधा.)।

जाने सख्यास्त्व मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-

दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।

वाचालं मां न खलु सुभगमन्यभावः करोति

प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्॥३१॥

अन्वयः- तव सख्याः मनः मयि संभृतं स्नेहं जाने, अस्मात् अहं तां प्रथमविरहे इत्थं भूतां तर्कयामि, सुभगमन्यभावः मां वाचालं न करोति खलु। अचिरात् ते प्रत्यक्षम् (भविष्यति)। हे! भ्रातः मया यत् उक्तम् (तत्) निखिलम् अचिरात् ते प्रत्यक्षम् (भविष्यति)।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से कहता है कि जिस विरहावस्था का वर्णन किया है, वह तुम्हें प्रत्यक्ष होगा।

अनुवाद- (मैं) तुम्हारी सखी (भाभी) के मन को अपने प्रति स्नेह से भरा हुआ जानता हूँ, इसलिए मैं उसे प्रथम विरह में इस प्रकार (अति दुर्बल) हुई सोचता हूँ, अपने को सौभाग्यशाली समझने का भाव मुझे अप्रियवादी नहीं बना रहा है। हे भाई! मैंने जो कुछ कहा है, (वह) शीघ्र ही तुम्हें प्रत्यक्ष हो जायेगा।

शब्दार्थ- सख्या:- सखी के (भाभी के), संभृतस्नेहम्- स्नेह से भरा हुआ, अस्मात्- इसलिये, प्रथमविरहे- प्रथम विरह में, इत्थंभूतम्- इस प्रकार (अति दुर्बल) हुई, सुभगमन्यभाव:- सौभाग्यशाली समझने का भाव, वाचालम्- अप्रियवादी, अचिरात्- शीघ्र ही।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- संभृतस्नेहम्- संभृतः स्नेहः यस्मिन् तत् (बहु.), संभृतः- सम्+भृ+क्त। स्नेहः- स्निह्+घञ्। प्रथमविरहे- प्रथमश्च असौ विरहः तस्मिन् (कर्मधा.)। तर्क्यामि- तर्क, लट् उ. पु. एक.व.।

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं

प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या

मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति॥३२॥

अन्वयः- अलकैः रुद्धापाङ्गप्रसरम् अञ्जनस्नेहशून्यम् अपि च मधुनः प्रत्यादेशात् विस्मृतभ्रूविलासं त्वयि आसन्ने (सति) उपरिस्पन्दि मृगाक्ष्याः नयनं मीनक्षोभात् चलकुवलयश्रीतुलाम् एष्यति इति शङ्के।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से कहता है कि तुम्हारे यक्षिणी के समीप पहुँचने पर उसकी नेत्र की शोभा कमल के समान होगी।

अनुवाद- बालों से रोकी गयी कोरों की गति वाला, काजल की चिकनाई से रहित और मदिरा के त्याग से भौहों के विलास को भूला हुआ तुम्हारे समीप आने पर ऊपर के भाग में फड़कने वाला, मृगनयनी का नेत्र मछली की हलचल से चञ्चल कमल की शोभा की समानता को प्राप्त करेगा- ऐसी मेरी संभावना है।

शब्दार्थ- अलकैः- बालों से, रुद्धापाङ्गप्रसरम्- रोकी गयी कोरों की गति वाला, अञ्जनस्नेहशून्यम्- काजल की चिकनाई से रहित, मधुनः- मदिरा के, प्रत्यादेशात्- त्याग से, विस्मृतभ्रूविलासम्- भौहों के विलास को भूला हुआ, उपरिस्पन्दि- ऊपर के भाग में फड़कने वाला, मीनक्षोभात्- मछली की हलचल के कारण, एष्यति- प्राप्त करेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- रुद्धापाङ्गप्रसरम्- अपाङ्गयोः प्रसराः (प्र.त.) रुद्धा अपाङ्गप्रसराः यस्य तत् (बहु.), रुद्ध- रुध्+क्त। अञ्जनस्नेहशून्यम्- अञ्जनस्य स्नेहः (ष. त) तेन शून्यम् (तृ.त)। प्रत्यादेशात्- प्रति+आङ्+दिश्+घञ्, प. एकव.। आसन्ने- आ+सद्+क्त, स.एकव.। उपरिस्पन्दि- उपरि स्पन्दते इति (उपपद त.)। मृगाक्ष्याः- मृगस्यस्यः अक्षिणी इव अक्षिणी तस्याः (बहु.)।

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-

मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां

यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्॥३३॥

अन्वयः- मदीयैः कररुहपदैः मुच्यमानः दैवगत्या चिरपरिचितं मुक्ताजालं त्याजितः, संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां समुचितः सरसकदलीस्तम्भगौरः अस्याः वामः ऊरुः च चलत्वं यास्यति।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से कहता है कि जब वह (मेघ) यक्षिणी के समीप पहुँचेगा तो यक्षिणी की बायीं जंघा फड़कने लगेगी।

अनुवाद- मेरे नखों के चिह्नों से छोड़ी जाती हुई, दुर्भाग्यवश बहुत समय से जानी पहचानी मोतियों की लड़ी को छोड़ देने वाली, संभोग के अन्त में मेरे हाथों से दबाई जाने योग्य, सरस केले के तने के समान गौर वर्ण, इस मेरी प्रिया की बायीं जंघा फड़क उठेगी।

शब्दार्थ- कररुहपदैः- नखों के चिह्नों से, मुच्यमानः- छोड़ी जाती हुई, चिरपरिचितम्- बहुत समय से जानी पहचानी, मुक्ताजालम्- मोतियों की लड़ी को, हस्तसंवाहनानाम्- हाथ से दबाये जाने के, समुचितः- योग्य, चलत्वम्- फड़कने को, यास्यति- प्राप्त करेगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- कररुहपदैः- मुकरे करात् वा रोहन्ति इति (उपपद. त.) कररुहाणां पदैः (ष.त.)। मुच्यमानः- मुच् + शानच्। मुक्ताजालम्- मुक्तानां जालम् (ष.त.)। चिरपरिचितम्- चिरः परिचितः तम् (केवल स.)। त्याजितः- त्यज्+णिच्+क्त। दैवगत्या- दैवस्य गत्या (ष.त.)। सम्भोगान्ते- सम्भोगस्य अन्ते (ष.त.)। हस्तसंवाहनानाम्- हस्ताभ्याम् संवाहनानि (तृ. त.) तेषाम्, संवाहनम्- सम्+वह्+णिच्+ल्युट्।

तस्मिन्काले जलद! यदि सा लब्धनिद्रासुखास्या-

दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।

मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्

सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्॥३४॥

अन्वयः- (हे) जलद, तस्मिन् काले यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्यात् एनाम् अन्वास्य स्तनितविमुखः याममात्रं सहस्व। अस्याः मयि प्रणयिनि कथञ्चित् स्वप्नलब्धे (सति) गाढोपगूढं सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि माभूत्।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ को कहता है कि यदि तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर वह प्रिया सो रही हो तो सन्देश देने के लिये उसके जगने तक प्रतीक्षा करना।

अनुवाद- हे मेघ! उस समय यदि वह प्रिया निद्रा का सुख प्राप्त कर रही हो तो उसके पास बैठकर गर्जन से विमुख होकर प्रहर भर तक प्रतीक्षा करना। (ताकि) इस (प्रिया) का मुझ प्रिय के किसी प्रकार स्वप्न में मिलने पर (किया गया) गाढ़ आलिङ्गन शीघ्र ही कण्ठ से शिथिल हुए लता जैसी भुजाओं के बन्धन वाला न हो जाये।

शब्दार्थ- लब्धनिद्रासुखा- निद्रा के सुख को प्राप्त, अन्वास्य- समीप बैठकर, स्तनितविमुखः- गर्जन से विमुख होकर, गाढोपगूढम्- गाढ आलिङ्गन, कण्ठच्युतभजुलताप्रन्थि- कण्ठ से शिथिल हुए लता- जैसी भुजाओं के बन्धन वाला।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- लब्धनिद्रासुखा- निद्रायाः सुखम् (ष.त.), लब्धं निद्रासुखं यया सा (बहु.), लब्ध- लभ्+क्त। स्तनितविमुखः- स्तनितात् विमुखः (ष.त.)। याममात्रम्- यामः एव याममात्रम् (तद्धित)। प्रणयिनि- प्रणय+इनि, स.एकव.। स्वप्नलब्धे- स्वप्ने लब्धः (स.त.) तस्मिन्। गाढोपगूढम्- गाढं च तत् उपगूढम् (कर्मधा.)।

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे! विद्धि मामम्बुवाहं

तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्रम्यतां प्रोषितानां

मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि॥३६॥

अन्वयः- हे अविधवे! मां भर्तुः प्रियं मित्रं हृदयनिहितैः, तत्संदेशैः त्वत्समीपम् आगतम् अम्बुवाहं विद्धि, यः मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि पथि श्रम्यतां प्रोषितानां वृन्दानि त्वरयति।

प्रसङ्ग- यहाँ यक्ष मेघ को समझाता है कि वहाँ पहुँचने पर वह सबसे पहले यक्षिणी को अपना परिचय दे।

अनुवाद- हे सौभाग्यवति! मुझे अपने पति का प्रिय मित्र और हृदय में रखे हुए उसके संदेशों के साथ तुम्हारे समीप आया हुआ मेघ जानो, जो मेघ अपनी गम्भीर और मधुर ध्वनियों से अबलाओं की चोटियों को खोलने को उत्सुक तथा मार्ग में थके हुए प्रवासियों के समूहों को घर लौटने के लिये प्रेरित करता है।

शब्दार्थ- अविधवे- सौभाग्यवति, हृदयनिहितैः- हृदय में रखे हुए, तत्संदेशैः- उसके संदेशों के साथ, अम्बुवाहम्- मेघ, विद्धि- जानो, मन्द्रस्निग्धैः- गम्भीर और मधुर, अबलामोक्षोत्सुकानि- अबलाओं की चोटियों को खोलने को उत्सुक, श्रम्यताम्- थके हुए, प्रोषितानाम्- प्रवासियों के, त्वरयति- प्रेरित करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अविधवे- विगतः धवः (पति) यस्याः सा विधवा (बहु.) न विधवा अविधवा (नञ्. त.), सम्बोधन एकव.। विद्धि- विद् लोट् म.पु.एकव.। अम्बुवाहम्-

अम्बु वहति इति (उपपद त.), तम्। तत्संदेशैः- तस्य सन्देशैः (ष.त.), संदेश- सम्+दश्+घञ्। हृदयनिहितैः- हृदये निहितैः (स.त.), निहित- नि+धा+क्त। त्वरयति- त्वरां करोति इति। अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि- अबलानां वेणयः (ष.त.) तासां मोक्षः (ष.त.) तस्मिन् उत्सुकानि (ष. त.)।

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं

ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।

अव्यापन्नः कुशलमबल! पृच्छति त्वां वियुक्तः

पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव॥38॥

अन्वयः- आयुष्मन् मम वचनात् च आत्मनः उपकर्तुं च ताम् एवं ब्रूयाः (यत्) अबले, तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः अव्यापन्नः, वियुक्तः त्वां कुशलं पृच्छति। सुलभविपदां प्राणिनाम् एतद् एव पूर्वाभाष्यम्।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से कहता है कि विपत्ति में पड़ने वाले प्राणियों से मिलने पर सबसे पहले क्या पूछना चाहिये?

अनुवाद- हे आयुष्मन्! मेरी ओर से और अपने को उपकृत करने के लिए उससे इस प्रकार कहना- हे अबले! तुम्हारा साथी (पति) रामगिरि आश्रम में रहता हुआ जीवित है, बिछुड़ा हुआ (वह) तुम्हारा कुशल पूछता है। सहज ही विपत्ति में पड़ने वाले प्राणियों से यह ही पहले पूछना चाहिये।

शब्दार्थ- उपकर्तुम्- उपकार करने के लिए, ब्रूयाः- कहना, रामगिर्याश्रमस्थः- रामगिरि आश्रम में रहता हुआ, अव्यापन्नः- जीवित, सुलभविपदाम्- सहज ही विपत्ति में पड़ने वाले, पूर्वाभाष्यम्- पहले पूछना चाहिये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- आयुष्मन्- आयुः अस्य अस्ति इति, आयुष्+मतुप्, सम्बोधन एकव। वचनात्- वच्+ल्युट्, प- एकव। सहचरः- सह चरति इति (उपपद त.)। रामगिर्याश्रमस्थः-रामगिरेः आश्रमाः (प.त.) तेषु तिष्ठति इति (उपपद.त.), रामगिर्याश्रम+स्था+क। अबले- अविद्यमानं बलं यस्याः सा अबला (बहु.) सम्बोधन एकव। पूर्वाभाष्यम्- पूर्वम् आभाष्यम् (केवल. स.)।

श्यामास्वङ्गं, चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,

वक्त्रच्छायां शशिनि, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,

हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति॥41॥

अन्वयः- (हे प्रिये!) श्यामासु अङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं, शशिनि वक्त्रच्छायां, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्, प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् उत्पश्यामि। हन्त चण्डि, क्वचिदपि एकस्मिन् ते सादृश्यं न अस्ति।

प्रसङ्ग- इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद- प्रियङ्गु लताओं में (तुम्हारे) शरीर की, भयभीत हुई हरिणियों की चितवन (कटाक्ष) में (तुम्हारे) मुख की कान्ति की, मयूरों के पखों के समूहों में (तुम्हारे) केशों की (और) हल्की-हल्की नदियों की तरङ्गों में (तुम्हारे) भ्रूभङ्गों की कल्पना किया करता हूँ। खेद है कि हे कोप करने वाली! किसी भी एक (वस्तु) में तेरी समानता नहीं है।

शब्दार्थ- श्यामासु- प्रियङ्गु लताओं में, चकितहरिणीप्रेक्षणे- भयभीत हुई हरिणियों की चितवन (कटाक्ष) में, दृष्टिपातम्- देखने को, शिखिनाम्- मयूरों के, प्रतनुषु- हल्की-हल्की, नदीवीचिषु नदियों की तरङ्गों में, उत्पश्यामि- कल्पना करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- चकितहरिणीप्रेक्षणे- चकिताश्च ताः हरिण्यः (कर्मधा.) तासाम् प्रेक्षणे (ष.त.)। दृष्टिपातम्- दृष्ट्याः पातः (ष.त.) तम्, दृष्टि- दृश्+क्तिन्। वक्त्रच्छायाम्- वक्त्रस्य छाया (ष.त.) ताम्। बर्हभारेषु- बर्हाणां भारेषु(ष.त.)। नदीवीचिषु- नदीनां वीचिषु (प.त.)।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्-

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।

अस्मैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥४२॥

अन्वयः- (हे प्रिये!) प्रणयकुपितां त्वां धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य यावत् आत्मानं ते चरणपतितं कर्तुम् इच्छामि तावत् मुहुः उपचितैः अस्मैः मे दृष्टिः आलुप्यते क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् अपि नौ सङ्गमं न सहते।

प्रसङ्ग- इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद- हे प्रिय! प्रणय में कुपित तुम्हारे चित्र को गेरू आदि रंग से पत्थर पर चित्रित कर जैसे ही मैं स्वयं को तेरे चरणों में गिरा हुआ बनाना चाहता हूँ, वैसे ही बार-बार उमड़ते हुए आँसुओं से मेरी दृष्टि लुप्त हो जाती है। निदर्श है। विधाता चित्र में भी हम दोनों के मिलने को नहीं सहता है।

शब्दार्थ- प्रणयकुपिताम्- प्रणय में रूठी हुई, धातुरागैः- गेरू के रंग से, शिलायाम्- पत्थर पर, आलिख्य- चित्र बनाकर, तावत्- वैसे ही, उपचितैः- उमड़े हुए, आलुप्यते- लुप्त हो

जाती है, कृतान्तः- विधाता (दैव)।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- आलिख्य- आ+लिख्+ल्यप्। प्रणयकुपिताम्- प्रणयेन कुपिताम् (तृ.त.), कुपिता- कुप्+क्त+टाप्। धातुरागैः- धातवः एव रागाः तैः (कर्मधा.)। चरणपतितम्- चरणयोः पतितम् (स.त.)।

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे

तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥46॥

अन्वयः- ननु बहु विगणयन् (अहम्) आत्मना एव आत्मानम् अवलम्बे। कल्याणि! तत् त्वम् इपि नितरां कातरत्वं मा गमः। अत्यन्तं सुखम् एकान्ततः दुःखं वा कस्य उपनतम्? दशा चक्रनेमिक्रमेण नीचैः उपरि च गच्छति।

प्रसङ्ग- इस काव्यांश में यक्ष मेघ से यक्षिणी के प्रति संदेश को कहता है।

अनुवाद- हे प्रिय! बहुत विचार करता हुआ (मैं) अपने आप ही अपने को सहारा दिये रहता हूँ। हे सुभगे! इसलिए तुम भी बहुत अधिक व्याकुल मत होओ। अत्यन्त (लगातार) सुख अथवा लगातार दुःख किसे प्राप्त होता है? (लोगों की दशा) पहिले के धार के क्रम से नीचे और ऊपर जाती रहती है।

शब्दार्थ- बहु विगणयन्- बहुत विचार करते हुए, आत्मना- अपने आप, आत्मानम्- अपने को, अवलम्बे- सहारा दिये रहता हूँ, कल्याणि- हे सुभगे, नितराम्- बहुत अधिक, कातरत्वम्- व्याकुल, एकान्ततः- लगातार, उपनतम्- प्राप्त होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- विगणयन्- वि+गण+णिच्+शतृ, प्रथमा एकव.। अवलम्बे- अव+लम्ब (आत्मनेपद) लट्. उ.पु.एकव.। कल्याणि- कल्याण+ङीप् सम्बो. एकव.। नितरा- नि+तरप्+आम्। उपनतम्- उप+नम्+ क्त। चक्रनेमिक्रमेणचक्रस्य- नेमिः (ष.त.) तस्याः क्रमेण (प.त.)।

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा

मा कौलीनादसितनयने! मय्यविश्वासिनी भूः।

स्नेहेनाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-

दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति॥49॥

अन्वयः- हे असितनयने! एतस्मात् अभिज्ञानदानात् मां कुशलिनं विदित्वा कौलीनात् मयि अविश्वासिनी मा भूः। स्नेहान् विरहे ध्वंसिनः किमपि आहुः। ते तु अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।

प्रसङ्ग- यक्ष कहता है कि अभिज्ञान के कारण मुझे सकुशल जानना।

अनुवाद- हे काले नेत्रों वाली! इस पहचान के बताने से मुझे सकुशल जानकर लोकापवाद के कारण मेरे प्रति अविश्वासिनी न हो। (लोग) विरह में स्नेह भाव नष्ट हो जाते हैं, ऐसा व्यर्थ ही कहते हैं। वे (स्नेह भाव) तो भोगे न जाने के कारण प्रिय वस्तु के प्रति प्रेम रस के बढ़ जाने पर प्रेमपुञ्ज बन जाते हैं।

शब्दार्थ- असितनयने- काले नेत्रों वाली, अभिज्ञानदानात्- पहचान के बताने से, कौलीनात्- लोकापवाद के कारण, स्नेहान्- स्नेह भावों को, ध्वंसिनः- नष्ट हो जाने वाले, किमपि- व्यर्थ ही, उपचितरसाः- बढ़े हुए प्रेम रस वाला, प्रेमराशीभवन्ति- प्रेम पुञ्ज बन जाते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- अभिज्ञानदानात्- अभिज्ञानस्य दानात् (ष.त.), अभिज्ञान- अभि+ज्ञा+ल्युट्। विदित्वा- विद्+क्त्वा। कौलीनात्- कुलेभवम् कौलीनम् (तद्धित) तस्मात्। असितनयने- न सिते (नञ्. त.) असिते नयने यस्याः सा (बहु.)। अविश्वासिनी- न विश्वासितीति (उपपद. स.)। अभोगात्- न भोगः अभोगः (नञ्. त.) तस्मात्। उपचितरसाः- उपचितः रसः येषु ते (बहु.), उपचित- उप+चि+क्त। प्रेमराशीभवन्ति- प्रेम्णां राशयः (ष.त.) न प्रेम राशयः प्रेमराशयो भवन्तीति प्रेमराशीभवन्ति (गति तत्पुरुष)।

कच्चित्सौम्य! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे

प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव॥51॥

अन्वयः- सौम्य! त्वया मे इदं बन्धुकृत्यं व्यवसितं कच्चित्? प्रत्यादेशात् भवतः न धीरतां कल्पयामि खलु, याचितः (त्वम्) निःशब्दः अपि चातकेभ्यः जलं प्रदिशसि। हि सताम् ईप्सितार्थक्रिया एव प्रणयिषु उत्तरम्।

प्रसङ्ग- यक्ष मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसकी प्रार्थना निश्चित रूप से स्वीकार करे।

अनुवाद- हे सज्जन! तुमने मुझ मित्र का यह कार्य (करना) निश्चित कर लिया है न? निश्चित ही आपने अस्वीकार नहीं किया, इससे मैं आपके धैर्य की कल्पना कर रहा हूँ। क्योंकि मागने पर चुपचाप रहकर भी चातकों को जल देते हो। सज्जनों का अभिलषित कार्यो को पूरा करना ही याचकों के लिए उत्तर होता है।

शब्दार्थ- बन्धुकृत्यम्- मित्र का कार्य, व्यवसितम्- निश्चित कर लिया, कल्पयामि- सम्भावना करता हूँ, याचितः- माँगने पर, निःशब्दः- चुपचाप, ईप्सितार्थक्रिया- अभिलषित कार्यो को पूरा करना, प्रणयिषु- याचकों के विषय में।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- व्यवसितम्- वि+अव+सो+क्त। बन्धुकृत्यम्- बन्धोः कृत्यम्।
प्रत्यादेशात्- प्रति+आ+दिश्+घञ्, प.एकव। **निःशब्दः-** नास्ति शब्दः यस्मिन् सः (बहु.)।
याचितः- याच्+क्त। **ईप्सितार्थक्रिया-** ईप्सितश्च असौ (कर्मधा.) तस्य क्रिया (ष.त.)।

1.11 अभ्यास प्रश्न :

1.11.1 लघुत्तरात्मक प्रश्न-

1. यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोलिङ्गनोच्छ्वासितानां..... श्लोक की व्याख्या कीजिए।
2. तन्वी श्यामा शिखरदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी.....श्लोक की व्याख्या कीजिए।

1.11.2 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. मेघदूत में प्रकृति- चित्रण पर प्रकाश डालिए।
2. उत्तरमेघ के प्रतिपाद्य विषयवस्तु का वर्णन कीजिए।
3. मेघदूत के भाषाशैली को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

लघुत्तरात्मकप्रश्न-

प्र.1. यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोलिङ्गनोच्छ्वासितानां..... श्लोक की व्याख्या कीजिए।

प्रसङ्ग- इस श्लोक में यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों को होने वाली रतिजन्य थकान चन्द्रकान्त मणियों से दूर होती है।

जहाँ अलकापुरी में अर्ध रात्रि में तुम्हारी रुकावट के हट जाने से निर्मल चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क से स्वच्छ जलकण की बूंदों को टपकाने वाली झालरों में लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियाँ प्रियतमों की भुजाओं से ढीले पड़े आलिङ्गनों वाली स्त्रियों की रतिक्रीड़ा से उत्पन्न शारीरिक थकान को दूर कर देती है।

प्र.2. तन्वी श्यामा शिखरदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी.....श्लोक की व्याख्या कीजिए।

प्रसङ्ग- इस काव्यांश में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के रूप का वर्णन करता है।

वहाँ मेरे घर में कृश शरीर वाली, नवयौवन वाली, नुकीले दाँतों वाली, पके हुए विम्बफल के समान नीचे के ओठ वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान दृष्टि वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार के कारण मन्दगति से चलने वाली, स्तनों के कारण कुछ झुकी हुई, युवतियों के विषय में ब्रह्मा की मानो सर्वप्रथम रचना हो।

निबन्धात्मक प्रश्न-

प्र.1. मेघदूत में प्रकृति-चित्रण पर प्रकाश डालिए।

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में प्रकृति-चित्रण के वैविध्य को देखकर प्रकृति के प्रति उनके अगाध प्रेम तथा सौन्दर्यानुभूति का ज्ञान होता है। वे प्रकृति के पुजारी थे। कालिदास ने प्रमुख रूप से प्रकृति के भव्य मनोरम रूप एवं सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। मानव और प्रकृति दोनों का ही मञ्जुल सम्बन्ध तथा अद्भुत समरसता का प्रदर्शन करके महाकवि ने प्रकृति के अन्दर स्फुरित होने वाले हृदय की पहचान की है। इस प्रकार कालिदास ने प्राकृतिक-चित्रण में प्रकृति को सजीव बना दिया है इसलिए कालिदास को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे प्रकृति के बाह्यरूप का जितना विवेचन करते हैं अन्तःप्रकृति के भी उतने ही पारखी हैं। वे अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर प्राकृतिक दृश्यों का सफल चित्रण करते हैं। उनका प्रकृति वर्णन वैज्ञानिक होने के साथ-साथ प्रतिभा मण्डित है। उनके काव्य में सर्वत्र प्रकृति के रमणीय चित्र उपस्थित होते हैं। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य का अद्भुत चित्रण किया है। मेघदूत में हिमालय के परिसर का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है। यहाँ गंगा स्वर्ग की सीढ़ी के समान ऊपर उठा देने वाली है-

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा

जह्नुः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्।

गौरीवक्तभ्रकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः

शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।। (पू.मे.50)

आम्रकूट पर्वत के वर्णन में कवि का उपमा प्रयोग अत्यन्त चामत्कारिक बन उठा है-

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाग्रैः-

स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां

मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।। (पू.मे.18)

अर्थात् पके हुए फलों से लदे आम के वृक्षों से घिरा हुआ आम्रकूट पर्वत पीला सा हो गया है। उसकी मेघाछन्न चोटी कोमल बालों के जूड़े के समान श्यामल होकर पृथ्वी के स्तन की भाँति प्रतीत होगी। मेघदूत में वर्णित प्रकृति मानव जीवन का अंग बन कर रह गई है। मेघदूत अमर गीतिकाव्य है। इसमें बाह्य प्रकृति की मनोरम झाँकी प्रस्तुत है। इस गीतिकाव्य में मानव जगत् को प्राकृतिक जगत् से सम्बद्ध किया गया है। वर्षा ऋतु और

उसमें होने वाली प्राणियों की विविध उत्कण्ठा का जैसा चित्रण मेघदूत में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भोली भाली ग्राम वधुएँ मेघ को उत्सुकता से देखते हैं और चतुर पौर वधुएँ मेघ को अपने चंचल कटाक्षों का विषय बनाती हैं। महाकवि कालिदास ने अपने प्रकृति चित्रण में समस्त जगत् के स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब देखा। वे प्रकृति को मानव का अभिन्न मित्र मानते हैं और उनका मानना है कि मानवीय भावों का प्रकृति के साथ गम्भीर सम्बन्ध रहता है-

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-

रन्तर्वाष्पशिचरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दुःसंस्थे।। (पू.मे.3)

प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त प्राकृतिक तत्त्वों के संरचनात्मक स्वरूप का भी महाकवि कालिदास ने पर्याप्त रूप से वर्णन किया है-

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः

सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्नुह्यकस्तं ययाचे

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।। (पू.मे.5)

उक्त प्राकृतिक वर्णन को पढ़कर महाकवि कालिदास की प्राकृतिक संवेदना की गम्भीरता का भान होता है। साथ ही पाठक प्रकृति में सजीवता का अनुभव करता है तथा पाठक में प्रकृति के प्रति प्रेम, श्रद्धा तथा संवेदनाएँ झंकृत हो उठती हैं।

प्र.2. मेघदूत के भाषाशैली को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।

महाकवि कालिदास की शैली संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। इस प्रतिष्ठा का श्रेय उनकी शैली को मिलता है कितना भी नीरस कथानक क्यों ना हो कवि उसे अपने अनुकूल कल्पनाप्रसूत अथवा वर्णना नैपुण्य से अत्यधिक चमत्कृत कर देते हैं। इन्होंने अपने काव्य में इतिहास से संग्रहित कथानक लिए और उन्हें अपनी काव्यकला से सजीव बनाकर सदा के लिए अमर कर दिया। कालिदास ने मेघदूत में वैदभएँ शैली का प्रयोग किया है। आचार्य दण्डी ने “तेनेदं वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम्” ऐसा कहकर वैदर्भी रीति के प्रति कालिदास के प्रयोग- बाहुल्य तथा प्रेम को दर्शाया है। साहित्यदर्पण के अनुसार वैदर्भी रीति का लक्षण इस प्रकार है-

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।। (सा.द.9.2)

अर्थात् ऐसी ललित रचना जिसमें माधुर्य व्यञ्जक वर्ण हैं और समाय ना हो अथवा हो तो अति लघु समास हो। मेघदूत की भाषा ललित, स्वाभाविक तथा अत्यन्त सरल है, जो कानों को सुनने में अत्यन्त मनोहर लगती है तथा अर्थ का बोध कराती है। कालिदास की सभी रचनाओं में ललित परिष्कृत प्रसाद गुण पूर्ण शैली ही अधिक प्राप्त होती है। वे शब्दों की व्यञ्जनाशक्ति पर अधिक बल देते हैं। तथा अभिधाशक्ति का कम प्रयोग करते हैं। इस कारण इनके भाव सदैव व्यंग्य ही रहते हैं।

प्र.3. उत्तरमेघ के प्रतिपाद्य विषयवस्तु का वर्णन कीजिए।

यक्ष मेघ को उत्तर दिशा में उपस्थित ऊँचे-ऊँचे प्रसादों से युक्त अलकापुरी की भव्यता को बताता है। अलकापुरी के फर्श मणियों, दीवारें विभिन्न प्रकार के चित्रों से सज्जित तथा रत्नों से युक्त है। अलकापुरी नगरी के वृक्षों पर 12 महीने फल लगे रहते हैं। जहाँ प्रत्येक सायंकाल प्रतिदिन चाँदनी से उज्ज्वल रहती है। जहाँ आनन्द के कारण आँसू, काम के कारण ताप, प्रेम के कारण कलह होती है। जहाँ सभी प्राणी यौवन अवस्था को प्राप्त किए हुए हैं। गृहों में सब प्रकार की विभूतियों एवं सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। वहाँ सर्वत्र प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है।

अलकापुरी में कुबेर के भवन से उत्तर की ओर मेरा घर है। जिसमें विविध रत्न-जटित बाहरी दरवाजा तुम्हें दूर से ही इन्द्रधनुष सा चमकता हुआ प्रतीत होगा। उसके अन्दर ही मेरी प्रिय द्वारा पाले गए मन्दार वृक्ष है। समीप में ही एक बावड़ी है, जिसकी सीढ़ियों मरकत मणियों से निर्मित हैं। जिसके किनारे पर तुम्हारे समान ही क्रीडा-पर्वत है। उद्यान में एक रक्त अशोक और एक बकुल वृक्ष है। समस्त चिह्न एवं द्वार पर चित्रित शंख और पद्म से मेरी अनुपस्थिति के कारण चुने हुए मेरे घर को तुम सहसा ही पहचान लोगे। घर में ही तुम्हें ब्रह्मा की आदि-सृष्टि के समान एक सुन्दरी दिखलाई देगी। जो दुर्बल शरीर, पतली कमर और जिसकी आँखें डरी हुई हिरनी की तरह चंचल प्रतीत होगी, किन्तु चाल नितम्बभार के कारण अलसाई हुई सी प्रतीत होगी। उसे ही तुम मेरी पत्नी मानना। वह उस ग्रह के अन्दर चक्रवाकी के समान अकेली निवास कर रही है क्योंकि उसका सहचर मैं दूर यहाँ रामगिरी आश्रम में उपस्थित हूँ। मेरे वियोग के दुख में वह तुषार-पात से मारी हुई पद्मिनी की तरह प्रतीत हो रही होगी। उसे तुम कभी चित्र बनाने से विफल, गोद में वीणा रखकर गीतिका द्वारा व्यर्थ मनोविनोद, कभी मैना से बात करती हुई 'ओ मीठा बोलने वाली क्या तुझे कभी अपने स्वामी की याद आती है, तू उनके लिए बहुत ही प्यारी थी', कभी वह वियोग के शेष महीनों को देहली पर रखे हुए पुष्पों से गिनती हुई प्रतीत होगी। मेघ! तुम मेरी वियोगिनी पत्नी यक्षिणी को मेरे मित्र होने के विषय में बताते हुए सन्देश कहना-

‘प्रिय! मैं प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, भयभीत हुई मृगियों की दृष्टि में तुम्हारे चितवन की, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख सौन्दर्य की, मयूरों की पूछों में तुम्हारे केश-पाश की और नदियों की लहरों में तुम्हारे विलास की कल्पना करता रहता हूँ, परन्तु दुःख की बात यह है कि उनमें से किसी में भी तुम्हारे अंगों की समता प्राप्त नहीं होती। एक वियोगिनी जिस प्रकार हृदय में कितनी आशाएँ रखे रहती है वैसे ही मैं भी तो अकेला इन वियोग की घड़ियों को किसी तरह काट रहा हूँ। हे यक्षिणी! निराश नहीं होना क्योंकि दुःख और सुख निरन्तर लगे रहते हैं। भाग्य का चक्र कभी ऊपर चला जाता है तो कभी नीचे चला जाता है। मेरे शाप के भी चार महीने ही शेष रह गए हैं। शरद् की चाँदनी रातों में वियोग के कारण बढ़ी हुई इच्छाएँ सहसा ही पूर्ण होंगी।

अपना सन्देश देकर अन्त में यक्ष मेघ से बोला भाई -यह मेरा सन्देश चाहे मित्रता के नाते बोलो चाहे मुझे दुःखी के प्रति दया के नाते बोलो इस तरह मेघ से निवेदन करते हैं।



इकाई-4

दशकुमारचरित (अष्टम-उच्छ्वास)

संरचना

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 आचार्य दण्डी का जीवन परिचय
- 1.3 दण्डी की भाषाशैली
- 1.4 दण्डी का अलंकार विन्यास
- 1.5 दशकुमारचरित की विधा (कथा या आख्ययायिक)
- 1.6 दशकुमारचरित में चरित्र-चित्रण
- 1.7 विश्रुतचरित का कथासार
- 1.8 दशकुमारचरितम् (अष्टमोच्छ्वास) के महत्वपूर्ण गद्यांश
- 1.9 कठिन शब्दावली
- 1.10 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों का अध्ययन कर सकेंगे-

1. गद्यकाव्य के स्वरूप से परिचित होंगे।
2. गद्य साहित्य की परम्परा और विकास से परिचित होंगे।
3. आचार्य दण्डी की जीवनी, रचनाओं और उनके शैली से परिचित होंगे।
4. दशकुमारचरित में आये हुए प्रमुख पात्रों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. अष्टमोच्छ्वास में वर्णित 'विश्रुतचरितम्' के प्रतिपाद्य विषयवस्तु से अवगत होंगे।

1.1 प्रस्तावना :

संस्कृत की श्रेष्ठ गद्य रचनाओं में दण्डी के दशकुमार चरित का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके तीन भाग प्राप्त हैं- पूर्व पीठिका (पांच-उच्छ्वास), मूल भाग (आठ-उच्छ्वास) तथा उत्तरपीठिका (एक-उच्छ्वास)। मूल भाग में आठ कुमारों की कथा का वर्णन है। पूर्वपीठिका को मिलाकर दस कुमारों की कथा पूरी हो जाती है। दशकुमारचरित का कथानक घटना

प्रधान है, जिसमें अनेक रोमांचक घटनाएँ पाठकों को विस्मय और विवाद के बीच ले जाती हैं। कहीं भयंकर जंगल में घटनाक्रम पहुँचता है, तो कहीं समुद्र में जहाज टूटने पर कोई तैरता हुआ मिलता है। घटनाएँ और वर्ण्यविषय दोनों दण्डी के लिए समान महत्त्व रखते हैं। कथावस्तु कहीं भी वर्णनों के क्रम में अवरूद्ध नहीं होती। दण्डी के चित्रण में समाज की प्रधानता है। जिसमें निम्न कोटि का जीवन बिताने वाले धूत, जादूगर, चालाक, चोर, तपस्वी, सिंहासनच्युत राजा, पतिवंचक नारी, ब्राह्मण, व्यापारी और साधु का भी वर्णन है। दण्डी अपने वर्णन में कहीं सहज और कहीं गम्भीर प्रतीत होते हैं। दण्डी की सबसे बड़ी विशेषता सरल और व्यवहारिक किन्तु ललितपदों से युक्त गद्य लिखने में है। वे दीर्घ-दीर्घ समास अलंकृत रचना, कठोरवर्ण के सन्निवेशन और शब्दाडम्बर से दूर रहते हैं। भाषा के प्रयोग में ऐसी स्वाभाविकता किसी अन्य गद्यकाव्य में नहीं मिलती। दशकुमारचरित की कथावस्तु (प्रतिपाद्यविषयवस्तु) भी किसी आधुनिक रोमांचकारी उपन्यास से कम रोचक नहीं है।

1.2 आचार्य दण्डी का जीवन परिचय :

दण्डी संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। उनके जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचनाओं का अभाव है। 'अवन्तिसुन्दरी' कथा के अनुसार 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्य के रचयिता महाकवि भारवी के तीन पुत्र थे, जिनमें मध्यम पुत्र का नाम मनोरथ था। मनोरथ के चार पुत्र हुए जिनमें सबसे छोटा वीरदत्त था, जो विद्वान् दार्शनिक थे। इस भारवी के पौत्र वीरदत्त की पत्नी गौरी से दण्डी का जन्म हुआ। बाल्यावस्था में ही दण्डी के माता-पिता का स्वर्गावास हो गया था। फलतः यह निराश्रय होकर इधर-उधर भटकते रहे। कुछ समय तक इस प्रकार भटकते रहने के पश्चात् ये पल्लव-नरेश की राजसभा में आकर रहने लगे। यहीं रहकर उन्होंने अपने ग्रंथों की रचना की। दण्डी के दक्षिण-कांची के निवासी होने का संकेत "काव्यादर्श" के तरुणवाचस्पतिकृत टीका में मिलता है। अतः वहाँ के पल्लव-नरेश की राजसभा में रहने वाली बात को मान लेना सर्वथा उचित है।

1.2.1 दण्डी का समय :

दण्डी किस समय हुए थे, इसके सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। नवीं शती के ग्रन्थों में 'दण्डी' का उल्लेख हुआ है। डॉ. बार्नेट का यह मत है कि काव्यादर्श को आदर्श मानकर सिंहली भाषा के अलंकार ग्रन्थ 'स्वभाषालंकार' की रचना हुई है। 'महावंश' के अनुसार इसके रचयिता राजसेन प्रथम सन् 846-866ई. तक राज्य करते थे। काव्यादर्श की अत्यधिक प्रभाव कन्नड़ी भाषा के अलंकार ग्रन्थ 'कविराज मार्ग' पर भी पड़ी हुई है। यह अलंकार ग्रन्थ सन् 814ई. के आस-पास का रचा हुआ माना जाता है। अतः इससे सिद्ध होता है कि दण्डी ने काव्यादर्श की रचना नवीं शती के पूर्व ही की होगी।

दण्डी ने कालिदास के एक प्रसिद्ध श्लोक को काव्यादर्श में उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है-

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दण्डी, कालिदास के पश्चात् हुए इसके अतिरिक्त काव्यादर्श में 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृतकाव्य का उल्लेख है, जिसके रचयिता प्रवरसेन पांचवीं शती में उत्पन्न हुए थे। अतः दण्डी 500-800ई. के बीच हुए होंगे।

1.2.2 दण्डी की कृतियाँ :

आचार्य दण्डी के तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं। जैसा कि 'शाङ्गधरपद्धति' में राजशेखर के एक श्लोक का उल्लेख मिलता है, जिसमें बताया गया है कि तीन अग्नि, तीन वेद, तीन देव और तीन गुणों के समान आचार्य दण्डी के तीन ग्रन्थ तीनों लोक में प्रसिद्ध हैं-

त्रयोऽग्नयस्त्रयोवेदा त्रयो देवास्त्रयोगुणाः।

त्रयोदण्डिप्रबन्धाश्च, त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।

'दशकुमारचरित्', 'काव्यादर्श' और 'अवन्तिसुन्दरीकथा' इन तीन ग्रंथों की रचना आचार्य दण्डी ने की, ऐसा लगभग सभी विद्वान् मानते हैं।

काव्यादर्श :

यह तीन परिच्छेदों का पद्यात्मक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। प्रथम परिच्छेद में काव्य का स्वरूप, प्रयोजन, कारण, भेद, तथा माधुर्यदि काव्यगुणों का विवेचन है। द्वितीय परिच्छेद में उपमा, रूपक, दीपक, आक्षेप आदि अलंकारों के भेद-प्रभेदों का विस्तृत वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में चित्रालंकार तथा काव्य दोषों का विस्तृत विवेचन है।

दशकुमारचरित :

'दशकुमारचरित' इस नाम से ही स्पष्ट है कि इस काव्य का विषय दशकुमारों के चरित्र का वर्णन करना है। यह गद्यकाव्य पूर्वपीठिका, उत्तरपीठिका और उपसंहार इन तीन भागों में विभक्त है। इसका अवान्तर वर्गीकरण उच्छ्वासों में हुआ है। पूर्वपीठिका में पांच उच्छ्वास है। उत्तरपीठिका में आठ उच्छ्वास और उपसंहार भाग का कोई वर्गीकरण नहीं है। पूर्वपीठिका में दो राजकुमारों सोमदत्त और पुष्पोद्भव के चरित्र वर्णित हैं। उत्तरपीठिका में राजवाहन, उपहार वर्मा, उपहार वर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और सुश्रूत इन आठ राजकुमारों के चरित्र वर्णित हैं। उपसंहार में विश्रुत का चरित्र वर्णित है।

अवन्तिसुन्दरीकथा :

दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका में मालव-नरेश की पुत्री अवन्तिसुन्दरी का प्रणय-वृत्त संक्षेप में वर्णित है। उसी का सविस्तार निरूपण इस 'अवन्ति सुन्दरीकथा' में किया गया

है। इस ग्रन्थ का आंशिक प्रकाशन 1924ई. में दक्षिणभारती ग्रंथमाला में श्री एम्. आर. कवि के सम्पादन में हुआ था। विद्वानों के अनुसार हस्तलेख को अपूर्णता के कारण यह संस्करण भी अपूर्ण है। प्राचीन साहित्य में दशकुमार चरित की अपेक्षा इसी गद्यकाव्य को दण्डी की रचना के रूप में अधिक ख्याति मिली थी। इस पर 'कादम्बरी' का अतिशय प्रभाव परिलक्षित होता है जैसे अवन्तिसुन्दरी कथा में जो लक्ष्मी का वर्णन मिलता है वह शुकनासोपदेश के लक्ष्मी वर्णन से अनुप्राणित है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है, यह सप्तम सर्ग में समाप्त होता है।

1.3 दण्डी की भाषाशैली :

दण्डी वैदभी गद्यशैली के आचार्य माने जाते हैं, उनकी वर्णन पद्धति सरल, सरस एवं मनोरम है। अलंकारों के आडम्बर से रहित होने के कारण उनकी भाषा शैली अत्यन्त रमणीय और लालित्यपूर्ण है। दण्डी की प्रशस्ति के रूप में 'दण्डिनः पदलालित्यम्' अत्यधिक प्रसिद्ध अभाणक है। पदों का लालित्य समास रहित सौम्य पदावली के रूप में तथा अनुप्रासयुक्त शब्दसौन्दर्य के रूप में दशकुमार चरित में मिलता है। रानी वसुमती का वर्णन ललितपदों में हुआ है-

“तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती।

कुलशेश्वर मणिरमणिबभूव॥”

इनके वाक्य प्रायः लघु, भावानुरूप और ललित होते हैं। शब्दों का यह सुन्दर प्रयोग लालित्य और रसाभिव्यक्ति में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। दण्डी का भाषाशैली पर असामान्य अधिकार है। दण्डी की रचना शब्दाडम्बर रहित होता है। अतः उनकी वाक्य रचना प्रायः सुन्दर, सुबोध और स्वाभाविक होती है। पदलालित्य के सन्निवेश से दण्डी ने साधारण विषयों को भी चमत्कारी बना दिया है। आकर्षण और हृदयाह्लादक वस्तु को 'ललित' कहते हैं। जिस यह रचना से पाठक के हृदय में लोकोत्तर (अलौकिक) आनन्द की उत्पत्ति होती है और साधुवाद करने लगे वह लालित्यपूर्ण होती है। सूर्योदय के वर्णन में कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से ललितपूर्ण गद्यशैली का परिचय दिया है। अनुप्रासयुक्त वाक्यों के प्रयोग में वे बड़े ही कुशल हैं। यथा-

स पुण्यैः कर्मभिः प्राप्य पुरुषार्थं

पुनरपुण्येन प्रजानामगण्यतामरेषु आदि॥

दण्डी लौकिक तथ्यों को व्यक्त करने में भी कुशल है। उदाहरणार्थ- इह जगति हि न निरीहं देहिनां श्रियः संश्रयन्ते आदि।

दण्डी ने राजनीति, कामशास्त्र, चौरशास्त्र आदि का सुन्दर वर्णन किया है, सोती हुई अम्बालिका का वर्णन उसका अनुपम दृष्टान्त है। इनके कथानकों में आश्चर्यजनक घटनाओं के वर्णन से अद्भूत रस का प्रभूत संचार हुआ है। ये कथानक नितान्त सजीव हैं। जिनके भीतर से पाठक तत्कालीन समाज की विचित्रताओं को देख सकते हैं। प्रतिपाद्य विषयवस्तु का वर्णन भी चमत्कारपूर्ण शैली से किया गया है।

दण्डी के रचनाओं में प्रसादगुण, वैदर्भी रीति, सुकुमार मार्ग, तथा समासरहित सौम्य पदावलीओं का सन्निवेश मिलता है। उनकी गद्यशैली में कहीं भी कुत्रिमता या अलंकारों का बाहुल्य नहीं है। अर्थालंकारों में वे प्रमुख रूप से उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा तक ही सीमित रहते हैं। उपमालंकार के कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं-

1. कुसुमसुकुमार कुमारम्।
2. कालायसककशकायम् इत्यादि।

दण्डी के गद्य में शाश्वत सत्य को उद्घाटित करने वाला अनेक सूक्तियाँ उपलब्ध होते हैं। जैसे- जीवन ही चार दिनों का है-

‘जीवितं हि नाम जनुवतां चतुः पंचान्यहानि।

स्वदेशो देशान्तरमिति गणना नेयं विदग्धस्य॥

अर्थात् बुद्धिमान पुरुष देश-विदेश की गणना नहीं करते हैं। इन्हीं समस्त विशेषताओं को लक्षित करके द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री ने लिखा है- रसानुगुण शब्दों की सन्निवेशन, भव्य अर्थों की अभिव्यक्ति, कोमलवर्णों की रमणीयता, समासरहित सौम्य पदावलीओं का गुम्फन गद्यकाव्य के विशेषताएँ हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दण्डी के गद्य शैली में शब्दयोजना सौष्टव, अनुप्रास का लालित्य, चमत्कारपूर्ण पदावली विद्यमान है। इसी ललितपदावली को देखकर आलोचकों के मुख से यह उक्ति अनायास ही निकल पड़ी-

“दण्डिनः पद लालित्यम्।”

1.4 दण्डी का अलंकार विन्यास :

दण्डी ने शब्द और अर्थ उभयविध अलंकारों की सुन्दर प्रयोग की है। इन अलंकारों से उनके वर्णन में वाग्वैचित्र्य, हृदयाह्लाद और सौन्दर्यबोध पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इनकी उपमाएँ उपमान उपमेय आदि के सामंजस्य को प्रस्तुत करती हैं। उनमें कालिदास आदि महाकवियों का सौष्टव पाया जाता है। इनकी अलंकार संयोजना, रसास्वादन तथा कथा के प्रवाह में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती है। वह इन दोनों को सुबोध और सरस बना देती है।

स्वप्न में कन्दुकवती को देखकर मित्रगुप्त उसके सौन्दर्य से इतना मुग्ध हो जाता है कि वह उसके स्वरूप का निर्णय करने में समर्थ नहीं है। उसके मन में अनेकों कल्पनाएँ उठती हैं-

किमियं लक्ष्मीः। नहि नहि। तस्याः किल हस्ते विन्यस्तं कमलम्' अन्यास्तु हस्त एव कमलम्' भूक्तपूर्वा च सा पुरातनेन पुंसा पूर्वराजैश्च, अस्याः पुनरनवद्यमयातयामं च यौवनम्।।

कालिन्दी मातंग की प्रतीक्षा इसी प्रकार करती है जैसे चातकी वर्षा काल की-

“धनशब्दोन्मुखी चातकी वर्षागमनं इव तवालोकन काङ्क्षिणी चिरमतिष्ठम्।”

पंचम उच्छ्वास में मानसार ने भगवान् शंकर द्वारा दी गई गदा के प्रभाव से सभी सैनिकों में अग्रगण्य होकर युद्ध सामग्री सहित मगधदेश में प्रवेश किया। यहाँ 'शक्तिसारो मानसारो' दोनों पदों के अन्त में 'सार' शब्द भिन्न- भिन्न अर्थ को व्यक्त करता है, इसलिए यहाँ 'यमकालंकार' जानना चाहिए-

शितिकण्ठेन शिवेन दत्तायाः शक्तेः सारो बलं यस्य तादृशो मानसारो नाम नृपो योद्धं मनो येषां तेषां अग्रगणी भूत्वा सामग्र्या सहितो नास्तिक्लेशो यस्मिन् तद्यथा तथा मगधदेशं प्रविवेश। अक्लेशं इति क्रियाविशेषणम् (अत्र शक्तिसारो मानसारो इत्यादि सर्वत्र पादान्तगामि यमकं बोध्यम्)।

चतुर्थ उच्छ्वास में काशी की राजकुमारी मणिकर्णिका के वर्णन में प्रयुक्त उत्प्रेक्षालंकार का संयोजन इस प्रकार का है-

“मां दृष्ट्वा सा तथैव अकम्पयत् यथा मलयपवने चन्द्रनलता।”

दण्डी ने 'दशकुमारचरित' में उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अर्थालंकारों, अनुप्रास, यमक और श्लेष आदि शब्दालंकारों का बहुशः प्रयोग किया है। समासों में भी अर्थालंकारों का प्रयोग पाया जाता है, यथा-“कैलासकाशनीकाशमृत्यो” में उपमा का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

1.5 दशकुमारचरित की विधा (कथा या आख्यायिक) :

गद्यकाव्य के दो भेद माने गये हैं- कथा और आख्यायिका, इनमें कथा कल्पित कथानकपर और आख्यायिका ऐतिहासिक या प्रसिद्ध कथानक पर आश्रित होती है। आख्यायिका को उच्छ्वासों में विभक्त किया जाता है। कथा में नायक तटस्थ होकर कोई घटनाक्रम का वर्णन करता है। नायक आत्मचरित नहीं सुनाता। किन्तु आख्यायिका में नायक या उपनायक आत्मचरित का वर्णन करता है। दण्डी ने इस भेद को निरर्थक माना है। काव्यादर्श (1/24) में उन्होंने कहा है कि नायक के द्वारा यदि स्ववृत्त का वर्णन वास्तविक गुणों के आधार पर किया जाता है तो उसमें आत्मप्रशंसा का दोष नहीं लगता (स्वगुणाविक्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः)। नायक आत्मकथा कहे या कोई दूसरा उसका वर्णन करे इसमें कोई अन्तर

नहीं। वक्ता के भेद से काव्यभेद करना उचित नहीं है, जहाँ तक दोनों के स्वरूपगत भेद (जैसे- छन्दप्रयोग, लम्बकों या उच्छ्वासों में प्रतिपाद्यविषयवस्तु का विभाजन) आदि का प्रश्न है यह भी निरर्थक है, वस्तुतः कथा और आख्यायिका एक ही कोटी है, जिसकी दो संज्ञाएँ घट और कलश के समान हैं- (तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयांकिता, काव्यादर्श- 4/28)। वस्तुतः दण्डी ने कथा का समर्थन किया है, जिसमें आख्यायिक के भी लक्षण आ जाये तो कोई आपत्ति नहीं है।

दशकुमार चरित अपने दो लक्षणों (उच्छ्वासों में विभाजन, कुमारों का स्ववृत्तवर्णन) के कारण आख्यायिका की श्रेणी में प्रतिष्ठित हुआ होगा किन्तु दण्डी ने इसे कथा के रूप में रखे जाने की अनुशंसा की थी। इसका मुख्य कारण कल्पित कथानक तो था ही विभाजन और स्ववृत्तवर्णन वाले लक्षणों को भी कथा में मानने की प्रबल अनुशंसा आचार्य के रूप में दण्डी ने की थी। अन्यदृष्टियों से इसमें दोनों गद्यभेदों के लक्षण मिलते हैं। वस्त्र और अपरवस्त्र छन्द के स्थान पर कही- कही आर्या छन्द का इसमें प्रयोग है। अपने युग की अनुभूत परिस्थितियों का वर्णन इसकी वास्तविकता का समर्थक है। उच्छ्वासों में विभाजन और कुमारों के द्वारा अपने अनुभवों का वर्णन आदि तथ्य ध्यान में रखे जायें तो काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसे 'आख्यायिका' कह सकते हैं।

1.6 दशकुमारचरित में चरित्र-चित्रण :

1.6.1 राजवाहन :

शिक्षित और सुन्दर राजवाहन दशकुमारचरित के नायक है। प्रजाओं के सहायता में सदैव तत्पर रहना इनके हृदय की स्वाभाविक सौम्यता का परिचय देता है। पराक्रमी होते हुए भी भाग्याधीन होने के कारण अवन्तीसुन्दरि के संगम पर क्रूद्ध चण्डवर्मा द्वारा अपने वन्दी बनाए जाने को बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लेते हैं। राजवाहन के चरित्रों की टिप्पणियों से उनकी भद्रता और उदारता की झलक मिलती है। वह दूसरों के दोषों को प्रकट कर उन्हें दुःख नहीं देना चाहता है। ये पिता के भक्त हैं और उनकी आज्ञा मिलते ही पितृधर्म का पालन करने के लिए पुष्पपुर को चल पड़ते हैं। वामदेव इन्हें सकल क्लेशों को सहन करने में समर्थ बताते हैं। जीवन की घटनाओं विशेषतः पिंजरे में बन्द होने के काल के वृत्तों से इसकी पुष्टि होती है, मातंग की दृष्टि में वह तेजस्वी और अमानुष शक्ति सम्पन्न है। कवि उसे लोकैक वीर कहकर संबोधन करते हैं। सोमदत्त के अनुसार वह सोमकुल का आभूषण और अलौकिक यश की खान है।

बालचन्द्रिका उन्हें सकल कलाओं में निपूण, युद्ध में प्रवीण तथा मणिमन्त्र और ओषधियों का ज्ञाता कहती है।

1.6.2 सोमदत्त :

सोमदत्त अतिशय साहसी और पराक्रमी है। वह विपत्तियों में भी विचलित नहीं होते हैं। सोमदत्त अपने पराक्रम से अपने आप को मत्तकाल के बन्धन से मुक्त कर मानपाल से प्रशंसित होने तथा युद्ध में जीतकर वामलोचना को प्राप्त करना और युवराजपद का अधिकारी बनने में सफल होता है। यह स्वामीभक्त, शिष्ट, दयालु, योजनाओं में कुशल, तथ्यान्वेषी और अवसर का लाभ उठाने वाला है।

1.6.3 पुष्पोद्भव :

पुष्पोद्भव व्यापारपरायण, पत्नीप्रेमी, सिद्ध तपस्वियों के कथनों में विश्वास रखने वाला, दुःख में विचलित होने वाला, आत्मघात का प्रयास करने वाला, करुणाशील, माता, पिता और स्वामी का भक्त तथा कर्तव्यपरायण है।

1.6.4 अपहार वर्मा :

अपहारवर्मा स्वामीभक्त और विश्वस्त मित्र है। वह कुशल दूरदर्शी और सफल षडयन्त्रकारी है। चौरकर्म, गजारोहण, द्वन्द्व युद्ध तथा शस्त्र चलाने में कुशल है। वेश परिवर्तन में भी वह प्रवीण है। वह झूठ बोलने और धोखा देने में सिद्धहस्त है।

1.6.5 उपहार वर्मा :

उपहार वर्मा क्रियाशील, उत्साही और परदारासक्त है। वह तान्त्रिक विद्या में भी निपुण है। उनकी सहायता से वह विकटवर्मा की हत्या करने में तथा मन्त्रियों और प्रजा आदि में विश्वास को दृढ़ करने में सफल हो जाता है। वह कामशास्त्र और स्त्री मनोविज्ञान में प्रवीण है।

1.6.6 अर्थपाल :

अर्थपाल शूरवीर और कुशल संयोजक है, वह सर्पों के प्रकारों और विष के वेगों के तारतम्य को जानने वाला है। अतः ऐसे सर्प को चुनता है जिसका विष उसके पिता को अचेतन तो कर देता है परन्तु मारने में समर्थ नहीं है। वह विषापनयन विद्या भी जानता है। सूरंग खोदने और अवसर को हाथ से न जाने देने वाला है। वह प्रलोभनों से विचलित नहीं होता है।

1.6.7 प्रमति :

प्रमति सौम्यस्वभाव वाला है, वह अपने उद्देश्य की पूर्ति भद्रता से करता है। वह मानता है कि वनदेवता है और बीहड़ वन में रात को सोते समय प्रार्थना किये जाने पर उसकी रक्षा करते हैं। स्वप्न में ही वह प्रेमपाश में बन्ध जाता है। उसे मुर्गों की लड़ाई में

रूचि है। कपटपूर्ण योजना बनाने में वह कुशल है। वेष बदलने, स्त्रियों के समान आचरण और व्यवहार करने में कुशल है। कन्या के रूप में रहता हुए भी वह राजकुमारी को अपने प्रेम आबद्ध करने और अपने षडयन्त्र में सम्मिलित करने में सफल हो जाता है। वह रानी का विश्वास पात्र है और युद्ध के लिए प्रस्थान करता है।

1.6.8 मित्रगुप्त :

मित्रगुप्त वीर व्युत्पन्नमति है। वह विपत्ति में स्थिर रहता है। बन्दी बना कर समुद्र में फेंक दिए जाने पर भी अपना धैर्य नहीं छोड़ता है। वह तैरना भी खुब जानता है। भीमधन्वा के आक्रमण पर वह अपने युद्ध कौशल और पराक्रम से उसे बन्दी बना लेता है। वह आकाश युद्ध में भी सिद्धहस्त है। अतः आकाश मार्ग में जाते हुए राक्षस को मारने में सफल होता है। मित्रगुप्त लौकिकज्ञान में भी कुशल है। कुशल कथावाचक भी है। राक्षस के प्रश्नों के उसके उत्तर सारगर्भित हैं और उनकी पुष्टि में प्रदत्त कहानियाँ रोचकता, स्वाभाविकता और यथार्थता से पूर्ण हैं।

1.6.9 मन्त्रगुप्त :

मन्त्रगुप्त विलक्षण बुद्धि सम्पन्न और अतिशय साहसी है। वह कनकलेखा का वध बड़े कौशल से उसी के शस्त्र से कर उसके शिर को छिपा देता है और कालान्तर में उससे काम लेकर अपना इष्ट सिद्ध करता है। सिद्ध तपस्वी का रूप धारण कर तदनुरूप आचरण करने में वह महान् कौशल और धैर्य से काम लेता है। वह जल से भरे तालाब के तल में राजा जयसिंह को छल से बुला कर द्वन्द्व युद्ध में लात और घूंसे से मार कर सुरंग में छिपा देता है और सबके की आंखों में धूल झाँक देता है।

1.6.10 विश्रुत :

विश्रुत एक चतुर प्रबन्धक और राजनीति विशारद है। वह बाण से निशाना लगाने तत्काल दीर्घकालव्यापी योजना बना कर उसे कार्यान्वित करने, विषविद्या, कापालिकरीति और वेषभूषा, नृत्य और संगीत आदि में कुशल है। उसकी भुजाओं में विलक्षण शक्ति है, अतः वह दुर्गा की भारी प्रतिमा को भी उठाकर उसके नीचे से निकाल आता है और उसे फिर अपने पक्ष में लाने और वसन्तभानु पर विजय प्राप्त करने में उसका राजनीति ज्ञान और दूरदर्शिता स्पष्ट रूप से सामने आती है।

1.7 विश्रुतचरित का कथासार :

विश्रुत ने कहा- महाराज! मैं विन्ध्याटवी में भ्रमण कर रहा था। वहाँ लगभग आठ वर्ष के एक बालक को देखा। उसने मुझसे सहायता मांगी। क्योंकि उसका रक्षक एक वृद्ध पुरुष उसी के लिए जल निकालने के समय पास ही के एक कुएँ में गिर पड़ा था। मैंने

लताओं की सहायता से उस वृद्ध को बाहर निकाला तथा पत्थर मारकर एक वड़हल के वृक्ष से पांच- छह फल तोड़े। उनसे दोनों की भूख मिटायी। फिर वृद्ध से बालक का परिचय पूछा।

वृद्ध ने कहा- महाशय! विदर्भ देश में पुण्यवर्मा नामक एक सर्वगुणसम्पन्न राजा था। उसके मरने के उपरान्त उसका पुत्र अनन्त वर्मा राजगद्दी पर बैठा। वह कला में प्रवीण होने पर भी राजनीति में कुशल नहीं था। दिन-रात विलासिता में निमग्न रहता था। इसलिए उसके मुख्य मंत्री वसुरक्षित ने उसे एक दिन राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकान्त में बहुत उपदेश दिया। उसने मन्त्री की बात मान ली किन्तु अपने अन्तःपुर में रानियों के समक्ष मन्त्री के उपदेश की चर्चाकर दी। वहाँ विहारभद्र नामक उसके एक महास्वार्थी सेवक ने छुपकर उसकी सब बातें सुन लीं। उसने आकर अनन्तवर्मा के सामने बड़ी नम्रता से राजनीति का खण्डन करते हुए राजा को यथेच्छ भोग परायण होने की सलाह दी। कामातुर राजा पर उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों का असर पड़ गया। फिर क्या था, अनन्तवर्मा मन्त्री की अवहेलना करके भोगासक्त हो गया।

अनन्तर अश्मक देश के अधिपति वसन्तभानु ने अपने मंत्री के पुत्र चन्द्रपालित को गुप्तचरों तथा सुन्दरी स्त्रियों के साथ अनन्त वर्मा के पास भेज दिया। चन्द्रपालित ने ऐसा मायाजाल फैलाया कि अनन्तवर्मा बुरी तरह उसके संगति में आकर दुर्व्यसनी हो गया। उसके देखा देखी नौकर-चाकर, प्रमुख अधिकारी, सामन्त आदि सबके सब कुमार्ग पर चलने लगे। अवसर पाकर अश्मक देश के अधिपति ने अनन्तवर्मा पर आक्रमण कर दिया, जिसमें वह मारा गया।

इस बीच वसुरक्षित कुछ पुराने सेवकों के साथ अनन्तवर्मा के पुत्र इस बालक को और उसकी बड़ी बहन मंजुवादिनी को इनकी माता वसुन्धरा समेत लेकर भाग निकले। दाहज्वर होने के कारण वसुरक्षित मार्ग में ही मर गये। तब सेवकों ने महारानी वसुन्धरा को पुत्र- पुत्री सहित अनन्तवर्मा के सौतेले भाई मित्रवर्मा के पास माहिष्मती नगर में पहुँचा दिया। मित्रवर्मा दृष्ट था। वह महारानी के पुत्र को मारकर उनके साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। इसलिए महारानी ने मुझे इस बालक को लेकर किसी सुरक्षित स्थान में भाग निकलने का आदेश दिया। मैं इसे लेकर भागता हुआ यहाँ आ पहुँचा। इसके लिए जल निकालने के समय कुँएँ में गिर पड़ा। जिस पर आपने अनुग्रह किया। मेरा नाम नालीजंघ है। अब आप ही इस बालक के रक्षक हैं।

तदुपरान्त भास्कर वर्मा की माता के सम्बन्ध में पूछने पर नालीजंघ ने कहा- पाटलीपुत्र के व्यापारी वैश्रवण की पुत्री सागरदत्ता ओर कोसलेन्द्र कुसुमधन्वा से इस कुमार की

माता का जन्म हुआ है। यदि ऐसी बात है तो इसकी माता और मेरे पिता के एक ही मातामह है। यह कहकर मैंने उसका सस्नेह अलिंगन किया। उसी समय दैवात् वहाँ आये हुए एक शिकारी के बाण से मैंने एक हरिण को मारकर आग में पकाकर उन दोनों की तथा अपनी क्षुधा शान्त की। उसी शिकारी से हमें ज्ञात हुआ कि माहिष्मती में मित्रवर्मा मंजुवादिनी का विवाह प्रचण्डवर्मा से करने की तैयारी कर रहा है। तब मैंने नालीजंघ से कहा- तुम महारानी के पास जाकर एकान्त में मेरा सन्देश बताकर कहना कि 'बालक को बाघ खा गया। ऐसी घोषणा करके शोक व्यक्त करना। मित्रवर्मा जब आपको सांत्वना देने के लिए आये तब आप कहें कि यदि मैं पतिव्रता हूँ तो यह माला तुम्हारे लिए तलवार का प्रहार हो जाय। यह कहकर वत्सनाभ नामक विष के साथ जल में डुबोई गई एक माला उसके ऊपर फेंक दें। वह उससे मर जाएगा। तब उस माला को पुनः जल में डुबोकर अपनी पुत्री को पहना दें। उससे पुत्री नहीं मरेगी। इस घटना से प्रजा आपको पतिव्रता मानकर आप पर बड़ी श्रद्धा करेगी। तब आप प्रचण्डवर्मा को संदेश भिजवायें कि वह आकर मंजुवादिनी के साथ पूरा राज्य ले ले। उस समय मैं और राजकुमार भास्करवर्मा कापालिक साधु के वेश में वहीं शमसान में निवास करेंगे। पुनः आप (महारानी) नगर के प्रतिष्ठित लोगों से कहें कि विन्ध्यवासिनी देवी ने मुझसे सवप्न में कहा है- आज से लेकर चौथे दिन प्रचण्ड वर्मा मर जाएगा। पांचवे दिन नर्मदा तटवर्ती मेरे मन्दिर में तुम्हारे पुत्र के साथ एक ब्राह्मण कुमार प्रकट होगा। वह इस राज्य का पालन करता हुआ तुम्हारे पुत्र को राजगद्दी पर बैठायेगा। उसके बाद तुम मंजुवादिनी का विवाह उसी ब्राह्मण कुमार के साथ कर देना।

मैंने नालीजंघ से जो योजना बतायी, उसको पूर्णरूप से कार्यान्वित किया गया। मैं और राजकुमार कापालिक वेश में वहीं पहुँच गए महारानी से भिक्षा लेकर जाते समय नालीजंघ से पूछने पर पता चला कि प्रचण्डवर्मा इस समय राजसभागृह में विद्यमान है। मैं चारण के वेश में प्रचण्ड वर्मा के पास पहुँचकर नाना प्रकार के क्रीड़ाओं से उसका मनोरंजन करने लगा। दिनांत के समय खेल ही खेल में छुरी से उस पर प्रहार करके भाग निकला। आधी रात के समय महारानी का एक नौकर पूर्वनिर्दिष्ट दुर्गामाता के मन्दिर में कीमती आभूषण एवं वस्त्र रखकर चला गया। मैं और राजकुमार उसी मन्दिर में प्रतिमा के पास एक बिल बनाकर बिल के मुँह पर पत्थर रखकर छिपे हुए थे। उन वस्त्र आभूषणों को पहनकर हम दोनों उसी बिल में घुस गये। दूसरे दिन प्रातःकाल महारानी मन्त्रियों तथा सामन्तों के साथ दुर्गामाता के मन्दिर में आयी। पूजन करने के उपरांत किवाड़ सटाकर (कपाट बंदकर) मंदिर के प्रांगण में सब लोग हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा संकेतानुसार नगाड़ा बजाया जाने लगा। नगाड़े का शब्द सुनकर हम दोनों बिल से बाहर निकलकर लोगों के सामने आये। मैंने सबको सम्बोधित

किया- विन्ध्यवासिनी देवी मेरे द्वारा आप लोगों को आदेश देती है कि मैंने व्याघ्री का रूप धारण करके कुमार की रक्षा की। आज से इसे मेरा पुत्र समझो। यह सिंहासन पर बैठाया जाय। इसकी रक्षा के लिए मैंने इस ब्राह्मण कुमार को नियुक्त किया है। ब्राह्मण कुमार के साथ मंजुवादिनी का विवाह कर दिया जाये।

यह सुनकर सभी लोग विस्मित एवं प्रमुदित हुए, उसी दिन राजकुमार को सिंहासन पर बैठाया गया। मंजुवादिनी का विवाह मेरे साथ हुआ। मैं राज्य-शासन करता हुए राजकुमार को राजनीति की शिक्षा देने लगा।

अनन्तर मैंने गुप्तचरों द्वारा वसन्तभानु की प्रजाओं में बुद्धि भेद उत्पन्न करके उसको विनष्ट कर विदर्भ देश का पैतृक राज्य भी राजकुमार को प्राप्त करा दिया। कुछ दिनों के उपरान्त अपनी पत्नी मंजुवादिनी को माता के पास छोड़कर आपको ढूँढता हुआ यहाँ आने पर आपके दर्शन से कृतकृत्य हुआ।

1.8 दशकुमारचरितम् (अष्टमोच्छ्वास) के महत्त्वपूर्ण गद्यांश :

1.8.1 वृद्ध की कथा :

अथ सः अपि आचक्षे- देव मया अपि परिभ्रमता विन्ध्याटव्यां कोऽपि कुमारः क्षुधा तृषा च क्लिश्यन् अक्लेशार्हः क्वचित् कूपाभ्यासे अष्टवर्षदेशीयो दृष्टः। स च त्रासगद्गदं अगदत्- महाभागः क्लिष्टस्य मे क्रियतां आर्य, साहाय्यकम्, अस्य मे प्राणापहारिणी पिपासां प्रतिकुर्तु उदकं उदञ्चन् इह कूपे कोऽपि निष्कलो मम एक शरणभूतः पतितः। तं अलमस्मि नाहं उद्धर्तुं इति।

अनुवाद :

इसके बाद उसने (विश्रुत ने) भी कहा- महाराज, घूमते- घूमते मेरे द्वारा भी, विन्ध्याचल के वन में, क्लेश (पाने) के अयोग्य, भूख तथा प्यास से क्लेशित होता हुआ, लगभग आठ वर्ष का, एक बालक किसी कूँ के पास देखा गया। डर के मारे गद्गद् स्वर में कहा- हे महाभाग, कष्ट में पड़े हुए मुझ (बालक) की (आप के द्वारा) सहायता की जाये। प्राण हरने वाली मेरी प्यास को दूर करने के लिए, जल निकालता हुए एक बूढ़ा, जो मेरा एकमात्र सहारा (शरण) था, इसी कूँ में गिर पड़ा है। उसको निकालने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

आचक्षे- कथयामास (कहा), आ+चक्ष् (अदादि आत्मने पदी) + लिट् प्रथम पुरुष एकवचन। परिभ्रमता- घूमते हुए, परि+भ्रम्+शतृ। क्लिश्यन्नक्लेशार्हः- क्लिश्यन् + अक्लेशार्हः,

कष्ट न सहन करने योग्य, कूपाभ्याशे- कूपसमीपे (कूँ के समीप), त्रासगद्गदम्- त्रासेन गद्गदम् यथा स्यात् तथा इति त्रासगद्गदम्, डर के मारे अवरूद्ध कण्ठ से। अगदत्- अकथयत् (कहा), प्रतिकर्तुम्- दूरीकर्तुम् (दूर करने के लिए) प्रति + कृ + तुमुन् उदंचन्- निष्कासयन्, उद्+अञ्च्+शत्। पतितः-गिरगया, पत्+क्त। उद्धर्तुम्- निस्सारयितुम् (निकालने के लिए)।

1.8.2 पुण्यवर्म का वर्णन :

सोऽश्रुगद्गदमगदत्- श्रूयतां महाभाग विदर्भो नाम जनपदः। तस्मिन् भोजवंशभूषणम्, अंशावतार इव धर्मस्य, अतिस्त्वः, सत्यवादी वदान्यः, विनीतः, विनेता प्रजानाम्, रंजित भृत्यः, कीर्तिमान्, उदग्रः बुद्धिमूर्तिभ्यां उत्थानशीलः, शास्त्रप्रमाणकः वाक्यभव्यकल्पारम्भी संभावयिता बुधान्, प्रभावयिता सेवकान्, उद्भावयिता बन्धून्, न्यग्भावयिता शत्रून्, असम्ब प्रलापेष्वदत्तकर्णः, कदाचिदप्यवितृष्णो गुणेषु, अतिनदीष्णः कलासु, नेदिष्ठो धर्मसंहिताषु, स्वल्पेऽपि सुकृते- सुतरां प्रत्युपकर्ता, प्रत्यवेक्षिता कोशवाहनयोः यत्नेन परीक्षिता सर्वाध्यक्षाणां, उत्साहयिता कृतकर्मणामनुरूपैर्दानमानैः, सद्यः प्रतिकर्ता देवमानुषीणामापदाम्, षड्गुण्योपयोगः निपुणः मनुमार्गेण प्रणेता चातुर्वर्ण्यस्य, पुण्यश्लोकः, पुण्यवर्मा नामासीत्।

अनुवाद :

वह आँसुओं के कारण कण्ठावरूद्ध स्वर में कहने लगा- महानुभाव सुनिए विदर्भ नाम का एक देश है। उस देश में भोजवंश का भूषण तथा धर्म का अंशावतार पवित्र कीर्ति वाला पुण्यवर्मा नाम का एक राजा था। वह पुण्यवर्मा अत्यन्त पराक्रमी, सत्यवादी, दाता, अत्यन्त विनम्र, प्रजा को शिक्षा देने वाला, नौकरों को प्रसन्न रखने वाला, यशस्वी, उन्नत, बुद्धि तथा स्वरूप से उन्नतिशील, शास्त्र को प्रमाण मानने वाला, जो काम अपने से हो सके, साधारण जनता के लिए हितकर हो तथा न्याययुक्त हो ऐसे कामों को करने वाला, पण्डितों का आदर करने वाला, भृत्यों पर प्रभाव रखने वाला, भाई-बन्धुओं को ऊँचा उठाने वाला, शत्रुओं का दमन करने वाला, असम्बद्ध बातों को न सुनने वाला, गुणों से कभी भी तृप्त न होने वाला, कलाओं में अतिनिपुण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में प्रकाण्ड पण्डित, थोड़ी-सी भी उसकी भलाई की जाने पर प्रचुर प्रत्युपकार करने वाला, खजाना और वाहन की देख-रेख करने वाला, उचित पुरस्कार तथा सम्मान द्वारा काम करने वालों का उत्साह बढ़ाने वाला, दैवी तथा मनुषी आपदाओं को तुरन्त दूर करने वाला, षड्गुणों के उपयोग में निपुण तथा महाराज मनु की आज्ञानुसार चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को व्यवस्थित रखने वाला पुण्यवर्मा नाम का राजा था।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

भोजवंशभूषणम्- भोजवंश का आभूषण स्वरूप, भोजस्य वंशः इति भोजवंशः, तस्य भूषणम् इति भोजवंशभूषणम् (षष्ठी तत्पुरुष)। अतिस्त्वः- अत्यन्त पराक्रमी, अतिक्रान्तः स्वम्

इति अतिस्त्वः (प्रादि समास)। वदान्यः- उदार। सुविनीतः- अत्यन्त पराक्रमी, सुतरां अत्यन्तं विनीतः नम्रः इति सुविनीतः। विनेता- शासक। रंजितभृत्यः- जिसके द्वारा भृत्य (सेवक) सदा प्रसन्न रखे जाते थे। रंजिताः भृत्याः येन सः रंजित भृत्यः- (बहुव्रीहि)। कीर्तिमान्- यशस्वी, कीर्ति+मतुप्।

मूर्तिबुद्धिभ्यां उत्थानेशीलः- जो स्वभावतः पुरुषार्थी अथवा उन्नति करने वाला था। शास्त्र प्रमाणकः- जो शास्त्र के नियमों के अनुसार कार्य करता था, शास्त्रं प्रमाणं यस्य सः शास्त्रप्रमाणकः (बहुव्रीहि)। शक्यभव्यकल्पारम्भी- वह व्यक्ति जो सरलता से किए जा सकने वाले तथा साधारण लोगों को अच्छे लगने वाले एवं चिरस्थायी (न्याययुक्त) कार्यों को करता था। शक्यभव्यकल्प+आ+रम्भ+णिनि। शक्यश्च भव्यश्च कल्पश्च इति शक्यभव्यकल्पः (कर्मधाराय), शक्यभव्यकल्पश्चासौ आरम्भश्च इति शक्यभव्यकल्पारम्भः (कर्मधाराय), शक्यभव्यकल्पारम्भः अस्ति अस्य इति शक्यभव्यकल्पारम्भी। बुधान् सम्भावयिता- विद्वानों का सम्मान करने वाला, सम्+भू+णिच्+तृन्। नदीष्णः-निपुणः नदी+स्ना+क। धर्मसंहितासु नेदिष्ठः- धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में प्रकाण्ड विद्वान्, धर्मश्च अर्थश्च इति धर्मार्थौ (द्वन्द्वसमास), तयोः संहिताः इति धर्मार्थसंहिताः, तासु धर्मार्थसंहितासु (षष्ठीतत्पुरुष) अन्तिक+इष्टन्-नेदिष्ठः, अत्यन्त समीपवर्ती, अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ नियम से 'अन्तिक' के सथान पर नेदिष्ठ हो गया। प्रत्यवेक्षिता- अनुसन्धानकर्ता, प्रति+अव+ईक्ष्+तृच्। प्रतिकर्ता- शमयिता, दूर करने वाला, प्रति+कृ+तृच्। षड्गुण्योपयोगनिपुणः- सन्धिविग्रहदि षट्गुणों के प्रयोग में कुशल, षट् च ते गुणाः इति षड्गुणाः, षड्गुणा एव षड्गुण्यम्, षड्गुणस्य उपयोगः इति षड्गुण्योपयोगः (षष्ठी तत्पुरुष), षड्गुण्योपयोगेनिपुणः इति षड्गुण्योपयोगनिपुणः (सप्तमी तत्पुरुष)। पुण्यश्लोकः- पवित्र कीर्तिवाला, पुण्यः (पवित्रः) यशः (श्लोकः) यस्य सः पुण्यश्लोकः (बहुव्रीहि)।

1.8.3 वसुरक्षित का उपदेश :

तमेकदा रहसि वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्धः, पितुरस्य बहुमतः प्रगल्भवागभाषत- तात, सर्वैव आत्मसंपदभिजना-त्प्रभृत्यन्यूनैवात्र भवति लक्ष्यते, बुद्धिश्च निसर्गपट्वी गो कलासु नृत्यतादिषु चित्रेषु च काव्यविस्तरेषु प्राप्तविस्तारा तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते। तथापि असौ अप्रतिपद्य आत्मसंस्कार अर्थशास्त्रेषु, अग्निशोधितेव हेमजातिर्नातिभाति बुद्धिः।

बुद्धिहीनो हि भूभृत् अत्युच्छ्रितोऽपि परैः अध्यारूढ्यमाणं आत्मानं न चेतयते। न च शक्तः साध्यं साधनं वा विभज्य वर्तितुम्। अयथावृत्तश्च कर्मसु प्रतिहन्यमानः स्वैः परैश्च परिभूयते। न चावज्ञतस्याज्ञा प्रभवति प्रजानां योगक्षेमाः माराधनायाय। अतिक्रान्तशासनाश्च प्रजा यत्किंचनवादिन्यो यथाकथंचित् वर्तिन्यः सर्वाः स्थितौः संकिरेयुः।

निर्मर्यादाश्च लोका लोकादितोऽमुतश्च स्वामिनमात्मानं च भ्रंशयेयुः। आगमदीपदृष्टेन खलु अधुना सुखेने वर्तते लोकयात्रा दिव्यं हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवस्थितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्रं नाम अप्रतिहतवृत्तिः। हीनः सतोरप्यायतविशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जन्तुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात्। अतो विहाय बाह्यविद्यासुम् षड्भूमागमय दण्डनीतिं कुलविद्याम् तदर्धानुष्ठानेन चावर्जितशक्तिसिद्धिरस्खलितशासनः शाभिचिरमुदधिमेखलामुवी इति।

अनुवाद :

उसके पिता के द्वारा अत्यन्त सम्मानित, वसुरक्षितनामक वृद्ध मन्त्री ने एकान्त में उसे कहा प्रियवर, कुल (खानदान) इत्यादि सभी आत्मसम्पदाएँ (वैयक्तिकगुण) आप में बहुत ज्यादा दिखाई पड़ती है। नृत्य- गीतादि कलाओं में, चित्र बनाने में, तथा काव्यरचना में खूब बढ़ी-चढ़ी हुई आपकी बुद्धि जो स्वभावतः निपुण है, औरों की अपेक्षा बढ़कर है। तथापि आपकी बुद्धि अर्थशास्त्र (राजनीति) में आत्मसंस्कार न पाकर (शिक्षा न पाने के कारण), न तपाये हुए सुवर्ण के समान, अधिक शोभा नहीं देती।

बुद्धिहीन राजा बहुत बड़ा होने पर भी, शत्रुओं द्वारा आक्रमण किए जाते हुए अपने को समझ नहीं पाता। वह साध्य तथा साधन का (ठीक- ठीक) विभाग कर व्यवहार करने में भी समर्थ नहीं होता। अनुचित रीति से आचरण करने वाला कार्यो में असफल होता हुआ, वह अपने लोगों तथा अन्य लोगों द्वारा तिरस्कृत होता है। उस तिरस्कृत राजा की आज्ञा, प्रजा के योगे (अप्राप्तस्य प्राप्तिः) तथा क्षेम (प्राप्तस्य रक्षणम्) साधन में समर्थ नहीं होती। (फिर तो) शासन का अतिक्रमण करने वाली प्रजायें जो ही चाहती है वही कहने लगती है, जैसा चाहती है वैसा व्यवहार करने लगती है। और (अन्त में) सारी स्थिति (मर्यादा) को छिन्न-भिन्न कर देती है।

मर्यादाहीन प्रजाएँ इस लोक तथा उस लोक दोनों से अपने को तथा स्वामी को भ्रष्ट कर देती है। जीवनयात्रा शास्त्ररूपी दीपक से देखे हुए मार्ग (पर चलने) से ही सुख-पूर्वक चलती है। भूत, भविष्य, वर्तमान तथा एक दूसरे से पृथक् रहने वाले एवं दूरस्थ विषयों में जिस शास्त्र की वृत्ति (गति) की (बिल्कुल) रूकावट नहीं रहा करती वह शास्त्र दिव्यचक्षु है। उस शास्त्र से हीन प्राणी लम्बी- चौड़ी तथा बड़ी- बड़ी आंखों के होते हुए भी, राजनीति में योग्यता न होने के कारण अन्ध ही है। इस कारण बाहरी विद्याओं में आसक्ति त्याग कर, अपने कुल की विद्या अर्थात् दण्डनीति सीखें और उसके अर्थों के अनुसार व्यवहार करने से शक्तिसिद्धि प्राप्त कर प्रतिबन्धकों से रहित शासन वाला बनकर दीर्घकाल तक समुद्ररूपी कटिमेखला वाली (अर्थात् समुद्र से घिरी हुई) पृथ्वी पर शासन करो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

मन्त्रिवृद्धः- मन्त्रिणां मन्त्रिषु वा वृद्धः इति मन्त्रिवृद्धः (सप्तमी अथवा षष्ठीतत्पुरुष)। अन्यनैवात्रभवति, अन्यूना+एव+अत्रभवति निसर्गपट्वी- प्रकृतिनिपुणाः। काव्यविस्तरेषु- काव्यस्य विस्तराः इति काव्यविस्तराः, तेषु काव्यविस्तरेषु (षष्ठीतत्पुरुष), प्रतिविशिष्यते- विशिष्यति, बढ़कर है। अप्रतिपद्य- अलब्ध्वा, न पाकर, आमृसंस्कारम्- आत्मनः संस्कारः इति आत्मसंस्कारः, तम् आत्मसंस्कारम् (षष्ठीतत्पुरुष), अपना संस्कार, अनग्निशोधिता- अग्नौ शोधिता इति अग्निशोधिता (सप्तमी तत्पुरुष), न अग्निशोधिता इति अनग्निशोधिता (नञ्. तत्पुरुष) जो आग में शुद्ध न की गई हो। नातिभाति- न अतिभाति, अधिक सुशोभित नहीं होती। अत्युच्छ्रितोऽपि- अत्यन्त ऊंचा होने पर भी। अध्यारूढमाणम्- आक्रमण किया जाता हुआ, अधि+आ+रूढ कर्मणि शानच्। अयथावृत्तः- यथा (उचित) वृत्तं (आचरणं) यस्य सः यथावृत्तः न यथावृत्तः, अति अयथावृत्तः (नञ्. तत्पुरुष), अनुचितविधि से व्यवहार करने वाला। प्रतिहन्यमानः- विफलीभवन्, असफलता पाता हुआ, प्रति+हन्+कर्माण शानच्। परिभूयते तिरस्कार किया जाता है, तिरस्+कृ+कर्माण शानच्। अतिक्रान्तशासनाः- अतिक्रान्तानि शासनानि याभिः, ताः, (बहुव्रीहि), शासन को उल्लंघन करने वाली। निर्मर्यादाः- (निर्गताः मर्यादाः येभ्यः, ते निर्मर्यादाः, बहुव्रीहि) मर्यादाहीन, आगम दीपदृष्टेन- आगमः एव दीपः इति आगम दीपः, तेन दृष्टः इति आगमदीपदृष्टः, तेन आगम दीपदृष्टेन (तृतीयातत्पुरुष) शास्त्ररूपी दीपक से देखे गये हुए अप्रतिहतवृत्तिः प्रतिहतो वृत्तिः यस्य तत् प्रतिहत वृत्तिः (बहुव्रीहि), न प्रतिहतवृत्तिः इति अप्रतिहतवृत्तिः, जिसकी गति बिल्कुल कहीं भी रूकावट न हो। अभिषङ्गम्- अभिरूचिम्, अभि+षञ्+धञ् अनुष्ठानम्- परिपालनम्, अनु+स्था+ल्युट्। आवर्जित-शक्तिसिद्धि- आवर्जिता शक्तीना सिद्धिः येन तथोक्तः त्वम् (बहुव्रीहि), जिसने शक्तियों की सिद्धि प्राप्त कर ली हो ऐसे बनकर तुम्। न स्वलितशासनः इति अस्वलितशासनः (नञ्. तत्पुरुष), जिसकी आज्ञा कभी उलंघित न की जाती हो। शाधि- शासनं कुरु, शास् धातु अदादिगणी परस्मैपदी, लोट् मध्यम पुरुष एकवचन। उदधिमेखलाम्- उदधिः मेखला यस्याः सा उदधिमेखला ताम् उदधिमेखलाम् (बहुव्रीहि), जिसकी कटिमेखला समुद्र है ऐसी पृथ्वी को यानी जो चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है ऐसी पृथ्वी को।

1.8.4 विहारभद्र का उपदेश :

दैव, दैवानुग्रहेण यदि कश्चिद्भाजनं भवति विभूतेः, तं अकस्मात् उच्चावचैः प्रलोभनैः कदर्ययन्तः स्वार्थं साधयन्ति धूर्ताः। तथाहि, केचित् प्रेत्य किल लभ्यैरभ्युदयातिशयैः आशामुत्पाद्य, मण्डयित्वा शिरः बद्ध्वादभर्जज्जुभिः, अजिनेन आच्छाद्य, नवनीतेन उपलिप्य, अनशनं च शाययित्वा,

सर्वस्व स्वीकरिष्यन्ति। तेभ्योऽपि घोरतराः पाखण्डिनः पुत्रदारशरीरजीवितान्यपि मोचयन्ति। यदि कश्चित् पटुजातीयो नास्यै मृगतृष्णिकायै हस्तगतं त्यक्तुं इच्छेत् तमन्ये परिवार्याहुः।

अनुवाद :

महाराज, यदि भाग्य की कृपा से कोई व्यक्ति ऐश्वर्य का पात्र हो जाता है, तो धूर्त लोग अकस्मात् विविध प्रकार के प्रलोभनों से उसे कोई-कोई तो मरने के बाद मिलने वाले, पचुर ऐश्वर्य की आशा उत्पन्न कर, सिर मुडवाकर, कुश की रस्सी बांधकर, मृगचर्म से ढककर (मृगचर्म ओढ़ाकर), मक्खन से उसे लेपकर, बिना खिलाए-पिलाए सुलाकर, उसका सारा धन आत्मसात् कर लेते हैं उनसे भी अधिक भयंकर पाखण्डी लोग उससे पुत्र, स्त्री, शरीर एवं प्राणतक छुड़वा देते हैं यदि कोई होशियार व्यक्ति हुआ और इस मृगतृष्णा (मिथ्या आशा) के लिए, हाथ के धन को नहीं छोड़ना चाहता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

दैवानुग्रहेण दैवस्य अनुग्रहः, तेन, दैवानुग्रहेण, तृतीयातत्पुरुष। उपलिव्य उप+लिन्+ल्यप्। शाययित्वा- शीङ्+णिच्+क्त्वा, शयनं कारयित्वा।

1.8.5 नीतिशास्त्रज्ञों की निन्दा :

एकामपि काकिणी कार्षापणलक्षमापादयेम शस्त्रादृते सर्वशत्रून् धातयेम, एकशरीरमात्रमपि मर्त्यं चक्रवर्तिनं विदधीमहि यदि अस्मत् उद्दिष्टेन मार्गेण आचर्यते इति।

अनुवाद :

मैं एक कौड़ी से लाखों रुपये बना सकता हूँ। केवल शरीरमात्र धारो निर्धन को भी चक्रवर्ती सम्राट् बना सकता हूँ। परन्तु वे सब बातें तभी सम्मत होगी जब मेरे बताये गये मार्ग का वह व्यक्ति अनुसरण करे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

धातयेम बधं कारयितुं शक्नुमः, हन्+णिच् विधिलिङ् लकार उत्तम-पुरुष बहुवचन। अस्मद् उद्दिष्टेन मार्गेण- अस्मत्कथितेन मार्गेण-हमारे बताये हुये रास्ते से, अस्मद्+उद्दिष्टेन, उद्दिष्ट- उत्+दिश्+क्त, अस्माभिः उद्दिष्टः प्रदर्शितः इति अस्मदुद्दिष्टः तेन अस्मदुद्दिष्टेन (तृतीया तत्पुरुष) आचर्यते- कार्य (क्रियते, आ+चर् लट्लकार आत्मनेपद-प्रथम पुरुष एकवचन।

1.8.6 दण्डनीति में दोष :

पुनरिमे ब्रुवते- ननु चतस्रो राजविद्यास्त्रयो वार्तान्वीक्षिकी दण्डनीतिरिति। तासु तिस्रस्त्रयीर्वार्तान्वीक्षिक्यो महत्यो मन्दफलाश्च तास्तावदासताम्। अधीष्व तावत् दण्डनीतिम्। इयं इदानीं आचार्य विष्णुगुप्तेन मौयार्थे षड्भिः श्लोकसहसैः संक्षिप्ता। स एव इयम् अधीत्य सम्यग्

अनुष्ठीयमाना यथोक्तकर्मक्षमा इति। स तथा इत्यधीते शृणोति च। तत्रैव जरां गच्छति। तत्तु किल शास्त्रं शास्त्रान्तरानुबन्धि। सर्वमेव वाङ्मयमविदित्वा न तत्त्वतो अधिगम्यते। भवतु, कालेन बहुनोल्पेन वा तदर्थविगतिः।

अनुवाद :

यदि उस धूर्त की इन लम्बी चौड़ी बातों पर विश्वास कर कोई पूछता है कि अन्ततोगत्वा आपका वह कौनसा मार्ग है तो वे कहते हैं। चार प्रकार की राजविद्याएँ होती हैं। त्रया- ऋक्, यजुः, साम तीन वेद, अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र और राजनीति। इनमें भी तीन विद्याएँ तो अतिपरिश्रम से प्राप्त होती हैं। परन्तु उनका फल अतिसाधारण है। अतः उनके जानने की आवश्यकता नहीं। तुम उसको छोड़कर दण्डनीति का ही अध्ययन करो। इस विद्या को आचार्य विष्णुगुप्त तथा चाणक्य ने अपने- अपने शिष्यों को अर्थात् यथाक्रम राजपुत्रों को और चन्द्रगुप्त मौर्य को समझाने के लिए केवल छः हजार श्लोकों में ही रचा था। बस यदि इसे तुम जान लो और इसके अनुसार चलो तो जो चाहोगे सो प्राप्त कर लोगे, सभी सिद्धियाँ इसी में निहित हैं।

उस धूर्त के ऐसे उपदेश पर जब शिष्य कह देता है- कि मैं ऐसा ही यथावत् करूँगा तथा वह दण्डनीति पढ़ने एवं सुनने लगता है, तो उसी दण्डनीति को जानते- जानते वह वृद्ध हो जाता है और फिर भी उसे कुछ लाभ नहीं होता। जब वह शिष्य दण्डनीति के मन्थन में घबड़ाता है तो धूर्त उसे समझाता है और कहता है, देखे एक शास्त्र का सम्बन्ध दूसरे शास्त्र से होता है। अतः जब तक तुम सकल शास्त्र न पढ़ोगे तब तक कुछ लाभ नहीं होगा। कुछ समझ में न आवेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

ब्रूवते- कथयन्ति, ब्रू धातु, लट् लकार, प्रथम-पुरुष बहुवचन। मन्दफलाः मन्दं (स्वल्पं) फलं प्राप्ताः ताः मन्दफलाः (बहुव्रीहि), कम फल देने वाली। आसताम्- 'आस्' धातु- लोट् लकार प्रथम-पुरुष बहुवचन का रूप है। संक्षिप्ता- सम्+क्षिप्+क्त+टाप् अनुष्ठीयमाना- व्यवहीयमाणा, अनु+स्था+कर्मणिशानच्+टाप्। यथोक्तकर्मक्षमाः-यथोक्तं च तत् कर्म (फलम्) इति यथोक्त कर्म (कर्मधाराय), तस्मिन् क्षमा (समार्था), सप्तमी तत्पुरुष- उचित फल देने में समर्था। सर्वशास्त्रानुबन्धि- सर्वशास्त्र+अनु+बन्ध+णिनि, सर्वाणि च तानि शास्त्राणि इति सर्वशास्त्राणि (द्विगु), सर्वशास्त्राणि अनुबध्नाति तच्छीलम् इति सर्वशास्त्रानुबन्धि- वह शास्त्र अन्य शास्त्रों से जुड़ा हुआ है। न अधिगम्यते- न प्राप्स्यते, अधि+गम्+कर्मणि+लृट्।

1.8.7 दण्डनीति की निरर्थकता :

येऽप्युपदिशन्ति एवमिन्द्रियाणि जेतव्यानि, एवं अरिषड्वर्गः त्याज्यः, सामादिरूपायवर्गः स्वेषु-
परेषु चाजस्रं प्रयोज्यः सन्धिविग्रहचिन्तयैव नेयः कालः, स्वल्पोऽपि सुखस्यावकाशः न देयः इति,
तैरप्येभिर्मन्त्रिकैर्युष्मतश्चौर्यार्जितं धनं दासोगृहेष्वेव भुज्यते। के चैते वराकाः? येऽपि मन्त्रकर्कशाः
शास्त्रतन्त्रकाराः- शुक्राङ्गिरसविशालाक्षबाहुदन्तिपुत्रपराशरप्रभृतयस्तैः किमरिषड्वर्गो जितः कृतं वास्तैः
शास्त्रानुष्ठनम्।

तैरपि हि प्ररब्धेषु कार्येषु दृष्टे सिद्ध्यसिद्धी। पठन्तश्चापठद्भिरतिसन्धीयमाना बहवः।
नन्विदमुपपन्नं देवस्य यदुत सर्वलोकस्य बन्धा जातिः, आयातयामं वयः दर्शनीयं वपुः
अपरिणामाविर्भूतः। तत्सर्वं सर्वाविश्वास- हेतुनाः सुखोपभोग प्रतिलब्धिना बहुमार्गविकल्पनात्
सर्वकार्येषु अमुक्तसंशयेन तन्त्रावापेत मा कृपा तृथा। सन्ति हिते दन्तिनां देश सहस्राणि हयानां
लक्षत्रयम् अनन्तं च पादातम्। अपि च पूर्णान्येव हेमरत्नैः कोशगृहाणि।

सर्वशेष जीवलोकः समग्रमपि युगसहस्रं भुञ्जानो न ते कोष्ठागाराणि रेचयिष्यति।
किमिदमपर्याप्तं यत् अन्यार्जितायासः क्रियते। जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुःपंचाल्यहानि। तत्रापि
भोगयोग्यमल्पाल्प वयः खण्डम्। अपण्डिताः पुनर्जयन्त एव ध्वंसन्ते। नार्जितस्य वस्तुनो
लवमप्यास्वादयितुमीहन्ते।

अनुवाद :

जो लोग ऐसा उपदेश देते हैं कि- “इस प्रकार से इन्द्रियाँ जीतो जानी चाहिएँ, इस
प्रकार षड् शत्रुओं को त्यागना चाहिए और साम, दान, दण्ड, भेद इत्यादि उपाय अपने लोगों
तथा शत्रु-पुक्ष के लोगों पर प्रयोग किया जाना चाहिए। सन्धि तथा विग्रह की चिन्ता में ही
समय व्यतीत किया जाना चाहिए। जरा- सा भी सुख का अवकाश नहीं दिया जाना चाहिए।
उन बगुला-सरीखे-मन्त्रियों द्वारा, आप से चोरी करके कमाया हुआ धन, वेश्याओं के घरों में
ही भोगा जाता है और ये बेचारे क्या हैं? मन्त्र के विषय में बड़े- बड़े नियमों का पालन
करके जीवन व्यतीत करने वाले शुक्र, अङ्गोरस विशालाक्ष, बाहुदन्तिपुत्र, पराशर इत्यादि जो
शास्त्रकार तथा तन्त्रकार थे क्या उन लोगों द्वारा अरिषड्वर्ग जीत लिया गया था? क्या उन
लोगों द्वारा शास्त्रानुष्ठान किया गया था?

प्रारम्भ किये हुए कार्यों में उनके द्वारा भी सफलता तथा विफलता देखी गयी थी,
बहुत से पढ़ने- लिखने वाले लोग वे पढ़े- लिखे लोगों द्वारा ही ठग लिये जाते हैं। महाराज
को निम्नलिखित वस्तुएँ प्राप्त हैं- सारे संसार द्वारा वन्दनीय कुल, नई उम्र, देखने योग्य शरीर
तथा अपरिमित ऐश्वर्य। इसलिए इन सब चीजों को ऐसे तन्त्रावाप (स्व एवं परराष्ट्र की चिन्ता)
से व्यर्थ न कीजिए जो सभी लोगों के अविश्वास का कारण है, जो सुख के उपभोग में

अड़चन डालने वाला है, जो बहुत से मार्ग बतलाने के कारण सभी कार्यों में संशय उत्पन्न करने वाला है। क्योंकि आपके पास दस हजार हाथी हैं तीन लाख घोड़े हैं और असंख्य पैदल सिपाही हैं और भी, आप का खजाना सुवर्ण रत्नों से भरा है।

सारा संसार हजारों युगों तक खाता हुआ भी आपके भण्डार घरों को खाली नहीं करेगा (खाली नहीं कर सकता)। क्या यह अपर्याप्त है कि और अधिक उपार्जन करने के लिए प्रयत्न किया जाये। यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि प्राणियों का जीवन पांच दिन का होता है। उसमें भी, जो वयः खण्ड (उम्र का जो हिस्सा) भोग विलास भोगने योग्य होता है वह अल्पातिअल्प होता है। फिर, मूर्ख लोग कमाते ही कमाते मर जाते हैं, वे उपार्जित धन का अणुमात्र भी भोगना नहीं चाहते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

त्याज्यः- त्यज्+ण्यत् (त्यागा जाना चाहिए)। सामाद्युपायवर्गः- साम आदिः येषां ते सामादयः (बहुव्रीहि), सामादयश्च ते उपायाः इति सामाद्युपायः (कर्मधाराय), सामाद्युपायानां वर्ग इति सामाद्युपायवर्गः (षष्ठी तत्पुरुष)। प्रयोज्यः- प्र+युज्+ण्यत्। सन्धिविग्रहचिन्तया- सन्धिशच विग्रहश्च इति सन्धिविग्रहौ (द्वन्द्व), सन्धिविग्रहयोः चिन्ता इति सन्धिविग्रहचिन्ता, तया सन्धिविग्रहचिन्तया (षष्ठी तत्पुरुष) सम्+धा+किः- सन्धि। नेयः कालः- समयः यापयितव्यः। मन्त्रिबकैः- धूर्तसचिवैः, मन्त्रिणः बकाः इव इति मन्त्रिवकाः, तैः मन्त्रिवकैः। प्रारब्ध- प्र+आ+रभ्+क्त। अतिसन्धायमानाः- वंचमानाः, अति+सम्+धा+कर्मणिशानच्। अयातयामम्- यामः (उपभोग कालः), न यातः (गतः) यामः यस्य तत् अयातयामम् (बहुव्रीहि)। विभूतिः- ऐश्वर्यम् (वि+भू+कित्)। सुखोपभोगप्रतिबन्धिना- सुखोपभोगस्य प्रतिबन्धी (अवरोधकः) इति सुखोपभोग प्रतिबन्धी, तेन सुखोपभोग प्रतिबन्धिना (षष्ठी तत्पुरुष)। प्रति+बन्ध्+णिनि- प्रतिबन्ध। भुञ्जानः- भक्षयन्, भुज्+शानच्। अन्यार्जनाय- अन्यस्य अर्जनम् इति अन्याजनम्, तस्मै- अन्यार्जनाय (षष्ठी तत्पुरुष)। आस्वादयितुम्- उपभोक्तुम्, आ+स्वद्+णिच्+तुम्। न ईहन्ते- न इच्छन्ति।

1.8.8 चन्द्रपालित के द्वारा मृगया की प्रशंसा :

देव यथा मृगया हि औपकारिकी न तथाऽन्यत्। अत्र हि व्यायामोत्कर्षात् आपत्सु उपकर्ता दीर्घाध्वलंघनक्षमः जंघाजवः। कफापचयात् आरोग्यैकमूलाशयात् अग्निदीप्तिः। मेदः अपकर्षात् अङ्गानां स्थैर्य- कार्कश्यलाघवादीनि। शीतोष्णवात-वर्ष-क्षुत्पिपासा-सहत्वं, स्त्वानां अवस्थान्तरेषु चित्रचेष्टितज्ञानं, हरिण-गवल- गवयादि वधेन सस्यलोप प्रतिक्रिया, वृकव्याभ्रादिघातैः स्वल्प-शल्यशोधन-शैलाटवी- प्रदेशानां विविधकर्मक्षमाणां आलोचनम्, आटविकत्वर्ग- विश्रम्भणम्, उत्साहशक्तिसंधुक्षणेन प्रत्यनीक- वित्रासनमितिबहुतमा गुणाः।

अनुवाद :

महाराज शिकार जितना उपकारी (लाभकारी) होता है- उतना दूसरी कोई चीज नहीं। इसमें (मृगया या शिकार में), व्यायाम की उत्कृष्टता होने के कारण, विपत्तियों में उपकार करने वाला तथा लम्बी यात्रा को स्थिर करने में समर्थ जंघाओं में वेग आता है, कफ का नाश हो जाने के कारण आरोग्य की एकमात्र जड़ जठराग्नि की तेजी होती है, मेदस् (चरबी) की कमी हो जाने के कारण अंगों में मजबूती, कर्कशता (अधिक परिश्रम- सहिष्णुता) तथा बहुत ज्यादा फुर्ती आदि आती है। सर्दी, गर्मी, वायु, वर्षा, भूख, तथा प्यास इन सब को सहन करने का शक्ति आती है, भिन्न- भिन्न अवस्थाओं में जीवों की चित्तवृत्ति तथा चेष्टाओं (क्रियाओं) का ज्ञान होता है। हिरण, जंगली भैंस तथा नील गाय आदि के वध के कारण, फसल की बरबादी का इलाज (फसल की तबाही को बचाने का उपाय), भेड़िया, बाघ आदि के वध होने के कारण स्थल मार्ग के विघ्न बाधाओं की सफाई, विविध कार्यों के लिए उपयोगी पहाड़ी प्रदेशों तथा जंगली प्रदेशों का अवलोकन जंगली प्रजाओं के हृदय में विश्वासोत्पादन और उत्साह शक्ति के बढ़ जाने के कारण शत्रु सेना का वित्रासन (शत्रु सेना के हृदय में भयोत्पाद) इत्यादि बहुत से गुण हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

मृगया- आखेट, शिकार। औपकारिकी- उपकार+अण्+इक+डीप्, उपकार करने वाली। व्यायामोत्कर्षात्- शारीरिक-परिश्रमाधिक्यात्, व्यायामस्य उत्कर्ष इति व्यायामोत्कर्षः, तस्मात् व्यायामोत्कर्षात् (षष्ठीतत्पुरुष), व्यायाम के उत्कृष्टता के कारण। आपत्सूपकर्ता- आपत्सु+उपकर्ता, संकटेषु हितकरः, आपत्तिओं में लाभ पहुँचाने वाला। दीर्घाध्वलंघनक्षमः- दीर्घश्चासौ अध्वा च इति दीर्घाध्वा (कर्मधाराय), दीर्घाध्वनः लंघनम् (तरणम्) इति दीर्घाध्वालंघनम्- (षष्ठीतत्पुरुष), दीर्घाध्वलंघने क्षमः (समर्थ) इति दीर्घाध्वलंघनक्षमः (सप्तमीतत्पुरुष) दूर यात्रा करने में समर्थ। आरोग्यैकमूलम्- (षष्ठीतत्पुरुष) स्वस्थ होने का प्रधान कारण। आशयाग्निदीप्तिः आशयस्य अग्निः इति आशयाग्निः (षष्ठी तत्पुरुष) आशयानैः अग्नि इति आशयाग्निः (षष्ठी तत्पुरुष) आशयाग्नेः दीप्तिः इति आशयाग्निदीप्ति (षष्ठी तत्पुरुष), जठरानल का जलना। मेदोऽपकर्षात्- मेदो नाशात्, चर्बी की नाश होना। स्त्वाना-जीवानाम्, जानवरों की। चित्र चेष्टित ज्ञानम्-चित्तं च चेष्टितानि इति चित्तचेष्टितानि (द्वन्द्वसमास), तासां ज्ञानम् इति चित्तचेष्टितज्ञानम्, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पड़कर पशुओं की चित्तवृत्ति कैसी रहती है तथा वे अमुक अवस्था में क्या चेष्टा करते हैं इत्यादि बातों का खूब ज्ञान हो जाता है। शोधनम्-प्रक्षालनम्, निराकरण करना। शल्यः-कण्डक, बाधा। शैलाटवी प्रदेशानाम् शैलाश्च आटव्यश्च इति शैलाटव्यः (द्वन्द्व), तासां प्रदेशाः इति शैलाटवीप्रदेशाः तेषाम् शैलाटवी प्रदेशानाम् (षष्ठीतत्पुरुष), पहाड़ी प्रदेशों का। विविधकर्मक्षमाणाम्- नानाप्रकार कार्ययोग्यानाम्, विविध कार्यों के लिए अत्यन्त उपयुक्त। आटविक- वर्ग-विश्रम्भणम्- अरण्यवासिनां हृदये विश्वासोत्पादनम्, जंगल में रहने वाले लोगों के हृदय में विश्वास हो जाता है।

1.8.9 जुआ (द्युत का लाभ) :

द्युते अपि द्रव्यराशेः तृणवत् त्यागात् अनुमानं आशय औदार्यम्, जयपराजय अनवस्थानात् हर्षविषादयोः अविधेयत्वम्, पौरुषैकनिमित्तस्य अमर्षस्य वृद्धिः। अक्ष-हस्त भूम्यादि गोचराणां अत्यन्त दुरूपलक्ष्याणां कूटकर्मणां अलक्षणात् अत्यन्तं बुद्धि नेपुण्यम्। एक विषयोपसंहारात् चित्तस्य अतिविचित्रं ऐकाग्र्यम् अध्यवसायसहचरेषु साहसेषु अभिरतिः। अतिकर्कशपुरुषप्रतिसंस्पर्गात् अनन्यधर्षणीयता। मानावधीरणां अकृपणं च शरीरयापनमिति।

अनुवाद :

जुआ में भी द्रव्य की राशी को तृणवत् खर्च करने के कारण अनुपम चित्त की उदारता आती है। जीत तथा हार के अनिश्चित रहने के कारण हर्ष तथा विषाद का अभाव रहता है तथा पुरुषार्थ के एकमात्र कारण अमर्ष (क्रोध) की वृद्धि होती है, पासा हाथ तथा (पासा फेंकने की) जमीन पर होने वाले अत्यन्त दुरूह (बिल्कुल ही समझ में न आने वाले) कपट व्यापारों को जानने से अत्यन्त बुद्धि-निपुणता आती है। एक ही विषय में चित्त लगाने के कारण चित्त की अत्यन्त आश्चर्यजनक एकाग्रता बढ़ती है। अध्यवसाय के साथी साहस में रूचि पैदा होती है। अत्यन्त कठोर-स्वभाव वाले पुरुषों के संस्पर्ग में आने के कारण वह गुण उत्पन्न होता है जिससे दूसरा अपने को दबा नहीं सकता। अभिमान का प्रदर्शन होता है तथा कृपणता हीन जीवन बीतता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

तृणवत्- तृण तुल्यम्, तिनके के समान, तृण+वत्। त्यागात्-व्ययकरणात्, खर्च करने के कारण। अनुपमानम्- उपमारहित, न विद्यमानं उपमानं यस्य तत् अनुपमानम् (बहुव्रीहि), अद्वितीयम्, अनवस्था नम् अस्थिरता, न अवस्थानम् इति अनवस्थानम् (नञ्+तत्पुरुष), न+अव+स्था+ल्युट्। अविधेयत्वम्- अवशीभूतत्वं, वश में न होना। पौरुषैकनिमित्तस्य- पौरुषस्य एकनिमित्तम् इति पौरुषैकनिमित्तम्, तस्य पौरुषैकनिमित्तस्य (षष्ठी तत्पुरुष), पुरुषार्थ के प्रधान कारण। कूटकर्मणाम्- कपट भरे कामों का। एकविषयोपसंहारात्- एक हि विषय में मन लगे रहने के कारण, एकश्चासौ विषयश्च इति एकविषयः (द्विगुसमास) तस्मिन् उपसंहारः अभिनिवेशः इति एकविषयोपसंहारः, तस्मात् एकविषयोपसंहारात् (सप्तमी तत्पुरुष)। अध्यवसायसहचरेषु- अध्यवसायाः सहचरः येष तानि साहसानि, तेषु अध्यवसायसहचरेषु साहसेषु (बहुव्रीहि), यानी ऐसे साहसपूर्ण कार्यों में जिनका मित्र अध्यवसाय है अर्थात् जो केवल अध्यवसाय द्वारा ही सिद्ध हो सकते हैं। अभिरतिः- प्रीतिः। अनन्यधर्षणीयता- अन्यानभिभवनीयता, वह गुण जिससे दूसरा व्यक्ति अपने को दबा न सके, न अन्यधर्षणीयता इति अन्यधर्षणीयता (नञ्. तत्पुरुष)। शरीरयापनम्- कालक्षेपः, जीवन निर्वाहः, शरीरस्य यापनम् इति शरीरयापनम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

1.8.10 अनन्तवर्मा के राज्य में अनाचार :

असौ अपि गुरुपदेशमिवादरेण तस्य मतं अन्ववर्तत ततः तत् शीलानुसारिण्यश्च प्रकृतयः विशृङ्खलं असेवन्त व्यसनानि। सर्वेश्च समानदोषतया न कस्यचित् छिद्रान्वेषणाय अयतिष्ठ। समानभर्तृ- प्रकृतयः तन्त्राध्यक्षाः यानि यानि कर्मफलानि अभक्षयन्। ततः क्रमादाय द्वाराणि व्यशीर्यन्त। व्ययुमुखानि- विटविधेयतया विभोरहरहव्यवर्धन्त। सामन्तपौरजानपदमुख्याश्च समानशीलतयोपारूढविश्रम्भेण सजातयः पानगोष्ठीषु अभ्यन्तरीकृताः स्वं स्वं आचारं अत्यचारिषु।

अनुवाद :

वह राजा (अनन्तवर्मा) भी उस चन्द्रपालित के उपदेश को गुरु के उपदेश के समान बड़े आदर के साथ मानने लगा। फिर तो राजा के आचरण को अनुसरण करने वाली प्रजा इच्छानुसार व्यसनों का सेवन करने लगा। सभी लोग एक समान दोषयुक्त हो जाने के कारण कोई किसी के छिद्रान्वेषण (दोषोद्घाटन) के लिए प्रयत्न नहीं करता था। प्रजा और राजा एक समान हो गए। विभिन्न विभागों के अध्यक्ष जिनकी प्रकृति राजा के समान हो गयी थी, अपने कर्मों का फल भोगने लगे यानी जो अधिकारी जितना कर वसूल कर लाता था उतना अपने काम में लगा लेता था। तब तो धीरे धीरे आमदनी के रास्ते बन्द हो गए। कामुकों अथवा धूर्तों की आज्ञा से चलने के कारण, दिन-प्रतिदिन, खर्च के मार्ग बढ़ने लगे। भूस्वामी, पुरवासी तथा राज्य के जो प्रमुख लोग थे वे, सब के सब स्त्रियों समेत (राजा के) समान आचरण वाले होने के कारण, जिसके हृदय में विश्वास उत्पन्न हो गया था उस राजा द्वारा मदिरा पान की गोष्ठी में शामिल कर लिए गए और अपने मर्यादा पूर्ण आचरणों का उल्लंघन करने लगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

अन्ववर्तत- अन्वसरत्, अपालयत, अनुसरण किया। तच्छीलानुसारिण्यः- नृपाचरणानुगामिन्यः, तस्य शीलम् (प्रकृतिः) इति तच्छीलम् (षष्ठी तत्पुरुष) तच्छीलम् अनुसरन्ति तच्छीलाः इति तच्छीलानुसारिण्यः, तच्छील+अनु+सृ+णिनि+डीप्, राजा की प्रकृति का अनुसरण करने वाली प्रजाएँ। विशृङ्खलम्- नियन्त्रण रहितम् विगता शृङ्खला यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा विशृङ्खलम्। स्वसमानदोषतया- स्वेन स्वस्य वा समानाः इति स्वसमानाः, स्वसमानाः दोषाः येषु ते स्वसमान दोषाः, तेषां भावः स्वसमानदोषता तथा स्वसमानदोषतया, (तृतीया तत्पुरुष मूलक बहुव्रीहि)। समानभर्तृप्रकृतयः- भर्ता च प्रकृतयश्च इति भर्तृप्रकृतयः (द्वन्द्वसमास) समानाः भर्तृप्रकृतयः येषां ते समान भर्तृप्रकृतयः (बहुव्रीहि समास), जिनका राजा तथा जिनकी प्रजाएँ एक समान थी। व्यशीर्यन्त- क्षीणाः बभूवः, नष्ट हो गए। व्ययमुखानि- व्ययपस्य मुखानि इति व्ययमुखानि (षष्ठी तत्पुरुष), खर्च के स्रोत। समानशीलतया- तुल्याचरणतया, समानं शीलं (आचरणं) येषां ते समानशीलाः (बहुव्रीहि), तेषां भावः समानशीलता, तथा समानशीलया (तृतीया तत्पुरुषमूलक

बहुव्रीहि), एक सामान आचरण होने के कारण। उपारूढविश्रम्भेण- उपारूढः विश्रम्भः (विश्वासः) यस्य स उपारूढविश्रम्भः, तेन उपारूढ विश्रम्भेण (बहुव्रीहि समास), जिस राजा के हृदय में विश्वास पैदा हो गया था ऐसे राजा द्वारा पानगोष्ठीषु- मदिरापानमण्डलीषु, शराब पीने की मण्डलियों में। अभ्यन्तरीकृताः- सम्मिलित किये गये, अभ्यन्तर+च्चि+कृ+क्त। अत्यचारिषु- अतिक्रमण करने लगे, अति+चर्+सामान्यभूत प्रथम पुरुष बहुवचन।

1.9 कठिन शब्दावली:

स्वीकृति देना- अनुमति देना।

सम्मिलित नहीं करता- विश्वास नहीं करता।

आँखों में चुभने वाला- द्वेष किये जाने वाला योग्य या खटकने वाला।

दक्षिणा- राजा के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त नीतिज्ञ।

चित्तज्ञानुवर्तिन- चित्त अथवा मन के विकार को समझकर अनुकूल व्यवहार करने वाला।

1.10 अभ्यास प्रश्न :

अति-लघुत्तरात्मकप्रश्न :

1. राजा अनन्तवर्मा रात्रिचर्या के अष्टम भाग में क्या करता था?
2. दुःस्वप्न को नष्ट करने का क्या उपाय है?
3. शान्तिकर्म में दिया गया दान.....कराने वाला है।(स्वर्ग को प्राप्त/नरक को प्राप्त)
4. दरिद्रता की जन्मभूमि.....है। (अविश्वास / विश्वास)

लघुत्तरात्मकप्रश्न :

1. अनन्तवर्मा मंत्री वसुरक्षित का किस प्रकार तिरस्कार करता है?
2. अनन्तवर्मा द्वारा तिरस्कृत वसुरक्षित क्या महसूस करता है?

अति-लघुत्तरात्मकप्रश्नों के उत्तर :

1. पुरोहितों के द्वारा दुःस्वप्न वृत्तान्त
2. शान्तिकर्म
3. स्वर्ग को प्राप्त
4. अविश्वास

लघुत्तरात्मकप्रश्नों के उत्तर :

प्र.1. वसुरक्षित स्नेहवश हितकामना से राजा को राजनीति में रुचि लेने का परामर्श देता है। अनन्तवर्मा उसकी बातों से प्रभावित होता है और तदनुसार व्यवहार करने का

वचन देता है, किन्तु विहारभद्र अपनी चाटुकारितापूर्ण बातों से अनन्तवर्मा को पुनः राजनीति और वसुरक्षित दोनों से विमुख कर देता है। अनन्तवर्मा के व्यवहार में आए हुए परिवर्तन को वसुरक्षित अनुभव कर लेता है और सोचता है कि मैं मोहवश कैसी मूर्खता कर रहा हूँ ? राजनीति में इसकी रुचि नहीं है और मैं इसके उपहास का पात्र बन गया हूँ। इसका व्यवहार अब पहले के समान नहीं रहा, न ही मुझे प्रेम से देखता है, न मुस्कराकर बोलता है, न रहस्यों को प्रकट करता है, न उपहाररूप में प्राप्त आकर्षक वस्तुओं को (मेरे घर) भेजता है, न मेरे द्वारा किए गए अच्छे कार्यों का मान करता है, न मेरे घर की वार्ता को पूछता है, न मेरे पक्ष के लोगों की ओर देखता है, न अत्यन्त गोपनीय कार्यों में सम्मिलित करता है और न ही अन्तःपुर में मुझे प्रवेश करवाता है। इतना ही नहीं, वसुरक्षित यह भी अनुभव करता है, उसके शत्रुओं पर विश्वास प्रदर्शित करता है। उसके वचनों का उत्तर नहीं देता है। उसके समान दोष वालों की निन्दा करता है और उसके मर्म का उपहास करता है।

प्र.2. राजा केवल वसुरक्षित के विचारों की ही अवहेलना ही नहीं करता था, अपितु उसके द्वारा कहे गए अपने मत का भी तिरस्कार करता था। वसुरक्षित आचार्य चाणक्य के मत को स्मरण करता है, जिसके अनुसार जो लोग राजा के मन के अनुकूल व्यवहार करने वाले होते हैं, वे अहितकारी होते हुए भी प्रिय होते हैं-चित्तज्ञानानुवर्तिनोऽनर्थ्या अपि प्रियाः स्युः। जबकि उसका हित चाहने वाले, उसके मन के विपरीत आचरण करने वाला होने से ईर्ष्या के पात्र बन जाते हैं। कुलपरम्परा से राजसेक में रत रहने के कारण, इतना अपमानित होने पर भी वसुरक्षित, राजा का परित्याग करने में स्वयं को विवश पाता है-तथापि का गति। अविनोतोऽपि न परित्याज्यः । यद्यपि वह यह भी जानता है कि जब राजा उसके वचनों की ओर ध्यान नहीं देता, तो वह भला उसका क्या उपकार कर पायेगा। नीतिज्ञ अश्मकराज, वसन्तभानु की चक्रदृष्टि विदर्भ पर है और वह इस राज्य पर अपना अधिकार स्थापित करके ही रहेगा, ऐसी आंशका उसके मन में व्याप्त होने लगती है। वह अपने मन को आश्वासन देता है कि सम्भवतः भविष्य में आने वाले संकटों के कारण अनन्तवर्मा राजनीति में रुचि लेने लगे अथवा सहज पीड़ा से युक्त उन स्थितियों में उत्पन्न हुए द्वेष के कारण दण्डनीति इसे रुचिकर ही न लगे। परिस्थितियों से मानों हार मानते हुए वह कहता है कि अनर्थ तो अवश्यम्भावी है। अच्छा है कि अपनी वाणी को वश में रखते हुए मैं अपने पद पर बना रहूँ।



इकाई-5

हर्षचरित (पंचम-उच्छ्वास)

संरचना

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 महाकवि बाणभट्ट का स्थितिकाल
- 1.3 बाणभट्ट का जीवनवृत्त
- 1.4 बाणभट्ट की वंश-परम्परा
- 1.5 बाणभट्ट की कृतियाँ
- 1.6 बाणभट्ट की गद्यशैली
- 1.7 हर्षचरित के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण
- 1.8 पञ्चम-उच्छ्वास का सार
- 1.9 बाणभट्ट की प्रशंसा
- 1.10 हर्षचरित के प्रमुख गद्यांश
- 1.11 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्-

1. गद्यकाव्यकारों में बाणभट्ट के स्थान के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. गद्यकाव्य में बाणभट्ट कृत हर्षचरित के विशेषता जान सकेंगे।
3. 'हर्षचरित' के पंचम उच्छ्वास में प्रतिपाद्यविषयवस्तु से अवगत हो सकेंगे।
4. 'हर्षचरित' के प्रमुख पात्रों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. बाणभट्टकालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को समझेंगे।
6. बाणभट्ट की रचनाओं के विषय में परिचित होंगे।
7. हर्षचरित की भाषा शैली से परिचित हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना :

हर्षचरित बाणभट्ट की प्रथम रचना है। सम्राट हर्षवर्धन के जीवनवृत्त को आधार बनाकर यह ऐतिहासिक काव्य निर्मित किया गया है। गद्य के जो 'आख्यायिका' एवं 'कथा' ये दो भेद हैं उनमें से हर्षचरित 'आख्यायिका' के अन्तर्गत परिगणित होता है। हर्षचरित में आठ-उच्छ्वास है। इसमें महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष के समकालीन युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का नितान्त प्रभावशाली चित्रण किया है। यही कारण है कि 'हर्षचरित' को 'सम्यता का विश्वकोश' माना जाता है।

महाकवि बाणभट्ट की शैली उनकी काव्यविषयक मान्यता के अनुरूप परमहृद्य है। बाणभट्ट ने अपने गद्यकाव्यों में तीन शैलियों का अत्यधिक प्रयोग किया है। ये तीन गद्यशैलियाँ हैं- उत्कलिका, चूर्णक तथा आविद्ध, गद्यकाव्य की उत्कृष्टता का मानदण्ड चूंकि 'समास-भूयत्व' को माना गया है। अतः लम्बे- लम्बे समासों वालो उत्कलिका: शैली के प्रति बाणभट्ट का सर्वाधिक पक्षपात होना स्वाभाविक ही है।

1.2 महाकवि बाणभट्ट का स्थितिकाल :

संस्कृत-साहित्य अपनी समृद्धि के साथ साथ अपनी प्राचीनता के लिये भी विश्वविश्रुत रहा है। वैदिक काल से लेकर अद्यावधि निरन्तर सर्जनाओं का क्रम इसमें बना रहा है। यही कारण है कि अनेक संस्कृत कवियों या आचार्यों के स्थितिकाल या उनके जीवन वृत्त के विषय में प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध न होने से निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना असम्भव हो जाता है। प्राचीन परिपाटी के अनुसार चूंकि व्यक्तित्व की तुलना में कर्तृत्व का महत्त्व अधिक दृष्टिगोचर होता है इसीलिए अनेक यशस्वी रचयिताओं को उनकी कृतियों के माध्यम से जाना तो जा सका किन्तु उनके स्थिति-काल या जीवन-वृत्त का विस्तृत एवं प्रामाणिक ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सका। कालिदासादि ऐसे अनेक महाकवि आज भी इस सन्दर्भ में विवादास्पद ही बने हुए हैं। केवल अनुमान का आश्रय लेकर इस सम्बन्ध में विचार किया जाता रहा है किन्तु सौभाग्य से महाकवि बाणभट्ट के विषय में जिज्ञासुओं की इस समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।

बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक उच्छ्वासों में अपना सुविस्तृत परिचय प्रस्तुत कर डाला है। 'हर्षचरित' में बाणभट्ट के जीवनवृत्तादि के विषय में इतनी सामग्री उपलब्ध है कि जिज्ञासुओं को इस विषय में सन्देह की तनिक भी गुञ्जाइश नहीं रह पाती। 'हर्षचरित' के अध्ययन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसके अन्तर्गत 'हर्षचरित' के साथ-साथ 'बाणचरित' भी विशिष्ट रूप से निबद्ध है। सम्राट हर्षवर्धन का स्थितिकाल चूंकि, निर्णित है इसलिए बाणभट्ट के स्थितिकाल के विषय में निर्णय देना सरल हो गया है। बाणभट्ट चूंकि

हर्षवर्धन के समकालीन थे तथा हर्षवर्धन का स्थितिकाल ईसा के सप्तम शतक का पूर्वार्ध (606-648 ई.) माना जाता है, अतः बाणभट्ट का भी वही स्थितिकाल सिद्ध होता है। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में अपना विस्तृत परिचय देकर वस्तुतः संस्कृत-कवियों पर महती कृपा की है अन्यथा जिस प्रकार कालिदास आदि अनेक कवियों के स्थितिकाल या जीवनवृत्त के विषय में ऊहापोह होता रहा है तथा गवेषक समाज निर्णयात्मक स्थिति से आज तक वञ्चित रहा है उसी प्रकार बाणभट्ट के विषय में भी तर्क-वितर्क एवं अनुपान का आडम्बर ही चलता रहता।

1.3 बाणभट्ट का जीवनवृत्त :

'हर्षचरित' के प्रारम्भिक दो-तीन उच्छ्वासों में बाणभट्ट अपनी जीवन गाथा का सविस्तार उल्लेख किया है। बाणभट्ट के जीवनवृत्त से सुपरिचित होने के लिए प्रस्तुत की गयी-यह सामग्री नितान्त सहायिका सिद्ध हुई है। बाणभट्ट का जीवन बाल्यावस्था से ही कितना संघर्षपूर्ण रहा तथा एक यशस्वी कवि के रूप में स्वयं को स्थापित करने में उन्हें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; इन सभी बातों का उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है। बाणभट्ट को यह आत्मकथा उनके जीवनवृत्त की परिचायिका होने के साथ-साथ जिज्ञासुओं के लिए नितान्त प्रेरणाप्रद भी है।

बाणभट्ट के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। बाल्यावस्था में ही बाणभट्ट को मातृवियोग का असह्य दुःख झेलना पड़ा तथा उनके पिता ने ही मातृस्नेह के साथ उनका पालन-पोषण किया। घर पर ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई तथा उनके उपनयन आदि संस्कार भी उनके पिता ने ही सम्पन्न कराये। बाण जब चौदह वर्ष के हुए तो उनके पिता भी उन्हें छोड़कर चल बसे। तब तक बाण का समावर्तन संस्कार एवं विवाह भी हो चुका था। पिता के आकस्मिक निधन ने बाण को अत्यन्त उद्वेलित कर दिया किन्तु इस अप्रत्याशित विपत्ति को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए उन्होंने अपना कुछ समय घर पर ही बिताया। कुछ दिनों के बाद बाण का पितृशोक जब कुछ कम हुआ तो उनकी स्वतन्त्र प्रकृति मचल उठी। उनकी बिनम्रता में कमी आने लगी तथा अपने अल्हड़ स्वभाव के कारण नित्य नूतन वस्तुओं के प्रति उनके मन में उत्सुकता जगने लगी। परिणामतः बाण युवावस्था के प्रारम्भ में ही घुमक्कड़ एवं आवारा बन गये। अपने पैतृक वैभव की उपेक्षा कर देश-देशान्तरों में वे भ्रमण करने लगे। इस अवधि में उनके साथ अनेक सहायक तथा मित्र भी थे जिनका विस्तृत उल्लेख उन्होंने 'हर्षचरित' में यथास्थान किया है।

अपने उच्छृङ्खल भ्रमण के क्रम में ही बाण ने तत्कालीन जीवन का गम्भीर अध्ययन किया। वे राजकुलों में पहुँचे, जहाँ के व्यवहार अत्यन्त उदार होते थे, गुरुकुल या तत्कालीन

शिक्षा संस्थानों में भी कुछ समय तक रहे, बहुमूल्य बात-चीत करने वाले गुणवान् व्यक्तियों की गोष्ठियों में भी बैठे तथा विदग्ध लोगों के बीच भी वे पहुँचे। इस प्रकार युवक बाण को जीवन के आरम्भ में ही अनुभव के चार स्रोत उपलब्ध हो गये। अनुभव प्राप्त होने पर बाण की चंचल प्रकृति परिचित हो गयी। वे वात्स्यायन वंश के अनुरूप गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति बन गये। बहुत समय तक देश- देशान्तरों का चक्कर काटकर वे पुनः अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट लौट आये तथा अपने बाल- सखाओं से अत्यन्त स्नेह के साथ मिले।

प्रीतिकूट लौटने पर बाण अपने बन्धु-बान्धवों से मिलकर परम प्रसन्न हुए दीर्घकाल तक वे प्रीतिकूट में ही सानन्द निवास करते रहें। एक दिन स्थाण्वीश्वर के महाराज श्रीहर्ष के भाई द्वारा प्रेषित मेखलक नाम का दीर्घाध्वग् गर्मी के दिनों में बाण से आकर मिला। उस समय बाण भोजन करने के बाद अपने घर में आराम कर रहे थे। उनके पारशव (शूद्रा जननी से उत्पन्न) भाई ने भीतर आकर उसके आगमन की सूचना दी। बाण ने कहा- 'उसे शीघ्र अन्दर ले आओ।' तब वह दीर्घाध्वग् भीतर जाकर बाण के समीप कुछ हट कर बैठा। बाण के पूछने पर उसने श्रीहर्ष के भाई कृष्ण का कुशल-समाचार सुनाया तथा उनका पत्र बाण को दिया। बाण ने पत्र को स्वयं पढ़ा। फिर मेखलक ने मौखिक सन्देश के रूप में कृष्ण की ओर से कहा- मैं तुमसे अकारण ही अपने बन्धु के समान प्रेम करता हूँ। तुम्हारी अनुपस्थिति में कुछ दृष्ट लोगों ने सम्राट् के कान भर दिये हैं किन्तु वह सत्य नहीं है किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने तुम्हारी बाल-चपलताओं से चिढ़ कर कुछ ऐसी- वैसी बातें महाराज से कह दी हैं। दूसरे लोगों ने भी ठीक वैसा ही समझा, वे लोग भी महाराज से तुम्हारी शिकायत करने लगे। सम्राट् ने वैसे मूर्खों की एक- सी बात सुन कर अपना मत स्थिर कर लिया। तुम्हारे विषय में मैंने महाराज से निवेदन किया और उन्होंने मेरी बात मान ली। अब अपने घर पर व्यर्थ समय बिताना ठीक नहीं। तुम शीघ्र राजकुल आ जाओ।

यह सुन कर बाण ने चन्द्रसेन को यह आज्ञा दी कि वह मेखलक को ले जाकर भोजन करावे तथा उसके विश्राम की व्यवस्था कर दे। उस समय दिन ढल चुका था। बाण सन्ध्योपासना से निवृत्त होकर पुनः अपने शयनीय पर आ गये तथा सम्राट् से मिलने के विषय में एकाकी सोचने लगे- क्या करूँ? महाराज ने मुझे कुछ और ही समझ लिया है, मेरे अकारण बन्धु कृष्ण ने ऐसा सन्देश भेजा है, सेवा बहुत कष्टदायिनी हुआ करती है, नोकरी करना मेरे अनुकूल नहीं, राजकुल अतिगम्भीर और विशाल है, न तो मेरे पूर्वजों का राजकुल से सम्बन्ध रहा है जिससे प्रेमभाव बना है, न तो मुझमें कुल क्रमागत क्षमता ही है, न तो पहले राजकुल के द्वारा किये हुए उपकार का स्मरण मुझे आता है, न तो बाल्यावस्था में मुझे राजकुल से ऐसी सहायता मिली है जिसका स्नेह मान कर चला जाय, न तो बड़े होने का

अब तक गौरव मिला है, न पहली मेल- मुलाकात की अनुकूलता है, न तो बुद्धि सम्बन्धी आदान-प्रदान करने का प्रलोभन है, न तो अपनी विद्या के अतिशय प्रदर्शन का कुतूहल है, न तो अपनी सुन्दर आकृति से मिलने वाले आदर की आकांक्षा है, न सेवावृत्ति के अनुरूप चापलूसी करने की कला मुझे आती है, न तो मुझमें ऐसा चातुर्य है कि विद्वानों की गोष्ठियों में भाग ले सकूँ, न तो धन खर्च करके दूसरों को मुट्ठी में कर लेने की आदत है और न तो राजा के प्रियजनों से मेरा परिचय है, किन्तु कृष्ण के सन्देशानुसार जाना भी आवश्यक ही है। त्रिभुवन गुरु भगवान् शंकर वहाँ जाने पर सब भला करेंगे। यह सोच कर बाण ने कृष्ण के सन्देशानुसार महाराज हर्ष की सेवा में उपस्थित होने का निश्चय कर लिया।

अगले दिन, बाण ने प्रातःकाल स्नान करने के बाद उज्ज्वल वस्त्र धारण किया तथा हाथ में अक्षमाला लेकर प्रास्थानिक सूक्तों एवं मन्त्रपदों को बार-बार उच्चारण किया। फिर देवों के देव भगवान् शङ्कर को साङ्गोपाङ्ग अर्चना की तथा तिल एवं घृत की आहुतियों से हवन कार्य सम्पन्न किया। ब्राह्मणों को दक्षिणा में धन दिया। होमधेनु की परिक्रमा की। शुक्ल अङ्गराग, शुक्ल माल्य, शुक्ल वस्त्र एवं रोचना चित्रित तथा दूर्वाग्र ग्रथित गिरिकर्णिक नामक पुष्प का कर्णपूर और शिखा में सिद्धार्थक आदि भाङ्गलिक द्रव्यों से परिष्कृत होकर बाण प्रस्थान के लिए तैयार हो गये। माता के समान स्नेह से आर्द्र हृदय बाली पिता की छोटी बहन मालती ने बाण के प्रस्थान की माङ्गलिक तैयारी की। गाँव की बान्धव तथा बृद्धाओं ने आशीर्वाद दिये, परिजनों की वृद्ध स्त्रियों ने बाण का अभिनन्दन किया, पूजित चरण गुरुओं ने बाण के प्रस्थान का समर्थन किया, कुलवृद्धों ने उनको मंगल आशीर्वाद दिये, शुभ शकुनों से उनका उत्साह और भी बढ़ा, ज्योतिषियों ने नक्षत्र की गणना की, फिर शुभ मुहूर्त में जल से पूर्ण कलश की और दृष्टिपात करते हुए कुलदेवताओं को प्रणाम कर बाण प्रीतिकूट से निकल पड़े।

पहले दिन गर्मी में किसी प्रकार धीरे-धीरे चण्डिका यवन-कानन पार कर वे मल्लकूट नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ बाण का भाई तथा उनका हार्दिक मित्र जगत्पति रहता था, जिसने समागत बाण का सत्कार किया। बाण उस दिन वही सुखपूर्वक ठहरे। दूसरे दिन उन्होंने गङ्गा को पार कर यष्टिगृहक नामक वनग्राम में रात बितायी। फिर राप्ती (अजिरवती) के किनारे मणितारा नामक गाँव के पास हर्ष के स्कन्धावार (छावनी) में वे पहुँचे जो राजभवन के सन्निकट ही था। वहाँ स्नान, भोजन एवं विश्राम के बाद जब एक पहर दिन बाकी था, और जब सम्राट् हर्ष भी भोजनादि से निवृत्त हो चुके थे तब मेखलक के साथ वे राजद्वार के लिए चल पड़े। मार्ग में अनेक प्रसिद्ध राजाओं के शिबिर सन्निवेश मिले। राजद्वार पर सम्राट् के दर्शनार्थ नाना देशों से सामन्त लोग पधारे हुए थे। झुण्ड के झुण्ड हाथी, घोड़े और ऊँट

खड़े थे और हजारों आतपत्रों से वहाँ श्वेतद्वीप का सादृश्य था। सब लोग राजद्वार के राजकीय अनुयायियों से यह पूछते नहीं थकते थे कि बाह्य कक्ष में उपस्थित होकर सम्राट् कब दर्शन देंगे? एक और एकान्त में बौद्ध, जैन, पाशुपत, संन्यासी, बर्णी सम्प्रदायों के साधु, सब देशों के लोग, समुद्रीतटों के निवासो, म्लेच्छ और समस्त द्वीपों से संवाद लेकर लौटे हुए दूत एकत्र थे। राजद्वार के उस दृश्य को देख कर बाण के मन में आश्चर्य हुआ। द्वारपालों ने में खलक को दूर से पहचान लिया, मेखलक बाण से “क्षण भर आप यही ठहरें” यह कह कर बेरोक भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद वह महाप्रतीहारों के प्रधान दौवारिक पारिपात्र के साथ वापस आया। मेखलक द्वारा परिचित होकर पारिपात्र ने बाण को प्रणाम किया और विनम्रता पूर्वक कहा- “देव के दर्शन के लिए भीतर पधारिये, आप पर देव को प्रसन्नता है।” बाण मैं “धन्य हूँ, जो देव मुझे इस प्रकार अपने अनुग्रह का पात्र समझते हैं” कह कर उसके साथ भीतर प्रविष्ट हुए, तब बाण ने वनायु, आरट्ट, काम्बोज, भरद्वाज, सिन्ध ओर पारस देश के राजबल्लभ अश्वों से भरी हुई मन्दुरा देखो। कुछ दूर हट कर बायीं ओर इमष्टियागार का हाथियों का लम्बा-चौड़ा बाड़ा मिला। वहाँ बाण ने सम्राट् के मुख्य हाथो दर्पशात को देखा। उसे देख कर बाण बहुत प्रसन्न हुए और सोचने लगे- निश्चय ही इन महाराज के निर्माण में बड़े-बड़े पर्वत परमाणु बनाये गये होंगे, नहीं तो यह गौरव इनमें कहाँ से आता? इस प्रकार पुनः तीन कक्षाओं को पार कर बाण ने मुक्तास्थान मण्डप के सामने बाले आंगन में सम्राट् हर्ष के दर्शन किये।

सम्राट् हर्ष के समक्ष उपस्थित होकर बाण ने अपना दायां हाथ उठा कर ‘स्वस्ति’ शब्द का उच्चारण किया। हर्ष ने उसे देख कर दौवारिक से पूछा- यह बही बाण है? दौवारिक ने कहा- देव का कथन सत्य है, वह यही बाण है। इस पर हर्ष ने कहा- मैं इसे तब तक नहीं देखना चाहता जब तक मेरी प्रसन्नता न प्राप्त कर ले। यह कह कर उन्होंने अपने पीछे बैठे हुए मालवराज के पुत्र (माधव गुप्त) से कहा- यह भारी भुजङ्ग (आवारा) है।

बाण राजा के अभिप्राय को नहीं समझ सके। समस्त राजमण्डली में सन्नाटा साधा गया। बाण कुछ देर तक मौन रहकर बोले- आप इस प्रकार की बात कैसे कहते हैं? जैसे आपको मेरे विषय में वास्तविकता का ज्ञान न हो, या मेरा विश्वास न हो, या आपकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती हो अथवा आप स्वयं लोक-वृत्तान्त से अनभिज्ञ हों। लोगों के स्वभाव और फैली हुई बात मनमानी और तरह-तरह की होती है किन्तु श्रेष्ठ लोगों को ठीक-ठीक देखना चाहिएँ मुझे साधारण समझकर अनापशनाप कल्पना न करें। मैं सोमपान करने वाले वात्स्यायन ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुआ है। समय से मेरे यज्ञोपवीतादि संस्कार सम्पन्न हुए हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेदों का सम्यक्तया स्वाध्याय किया है। अपनी शक्ति के अनुसार

शास्त्रों का भी श्रवण मैंने किया है। विवाह के क्षण से लेकर मैं नियमित गृहस्थ हूँ। तो मुझे आखिर कैसी भुजङ्गता (आवारगी) है? मेरी नयी अवस्था की कुछ चपलताएँ अवश्य हैं किन्तु वे ऐसी नहीं हैं। जिनसे इहलोक या परलोक का परस्पर कुछ विरोध हों; मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता। मुझे इसी बात का बहुत पश्चात्ताप है। हे देव! आप भगवान् बुद्ध की भाँति शान्तचित्त, मनु के सदृश वर्णाश्रम मर्यादा के रक्षक तथा यम के समान दण्डधर हैं। सातों समुद्रों की करधनी और द्वीपों की माला से विराजित पृथिवी पर आपका एकच्छत्र शासन है, तो कौन ऐसा निर्भीक है जो सर्वथा दुःखद अभिनय करने की कल्पना मन से भी कर सके? समय से आप स्वयं मेरे विषय में सब जान लेंगे क्योंकि बुद्धिमानों का यह स्वभाव होता है कि वे किसी विषय में विपरीत हठ नहीं करते। इतना कहकर बाण चुप हो गये। सम्राट् ने भी मैंने ऐसा ही सुना था बस इतना ही कहा किन्तु बात-चीत तथा आसनदानादि के प्रसाद से बाण को अनुगृहीत नहीं किया। केवल स्नेहामृत की वर्षा करने वाले दृष्टिपात मात्र से बाण को स्थापित करते हुए उन्होंने बाण के प्रति अपने हृदय में अवस्थित प्रेम को प्रकट किया। जब सूर्यास्त होने लगा तो सम्राट् राजसमूह से बिदा लेकर महल के अन्दर चले गये।

बाण वहाँ से निकल कर अपने निवास स्थान स्कन्धावार में लौट आये। तब वे अपने मन में सोचने लगे 'सचमुच देव हर्ष बड़े उदार हैं क्योंकि मेरे बाल्यकाल की चपलताओं से फँसे हुए जनापवाद को सुनकर भी मन में मेरे प्रति स्नेह अवश्य रखते हैं। मैं उनकी आँखों पर चढ़ा हुआ (अक्षिगत अर्थात् कोपभाजन) होता तो वे दर्शन देने की कृपा कैसे करते? वे मुझे गुणी देखना चाहते हैं। बड़ों की यही रीति है कि छोटों को बिना मुख से कहे ही केवल व्यवहार से विनम्रता की शिक्षा दे डालते हैं। मुझे धिक्कार है; यदि अपने ही दोषों से अन्धा होकर और केवल अनादर से दुःखी होकर मैं ऐसे गुणवान् राजा के विषय में कुछ सोचने लगूँ। अब मैं सर्वथा वही करूँगा जिससे समय से वे मुझे सही रूप में पहचान लें। ऐसा निश्चय कर बाण दूसरे दिन स्कन्धावार से निकल पड़े तथा मित्रों एवं सम्बन्धियों के यहाँ जा ठहरे। तब तक सम्राट् हर्ष भी उनके स्वभाव से परिचित होकर उन पर प्रसन्न हो गये और फिर तो बाण राजभवन में आकर जम गये। थोड़े ही दिनों में सम्राट् उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें अपने प्रसादजनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिये।

सम्राट् हर्षवर्धन से पर्याप्त सम्मान प्राप्त कर लेने के बाद एक समय शरत्काल के प्रारम्भ में बाण अपने बन्धु-बान्धवों से मिलने की उत्कण्ठा से प्रीतिकूट आये। बाण के भाई-बन्धु उनकी प्रशंसा करते हुए उनके स्वागत में निकल पड़े। उन सबों से मिलकर बाण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने सबसे पूछा- आप लोग सुख पूर्वक तो रहे? यज्ञ का कार्य तो चल रहा है? प्रतिदिन वेदाभ्यास अविच्छिन्न है न? व्याकरण के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ तो

होते रहते हैं? काव्य-चर्चा होती रहती है न? तब उन सबने बाण से कहा 'हम लोग सब प्रकार से सकुशल हैं। अपनी शक्ति और विभव के अनुसार समय से सब लोग ब्राह्मणोचित क्रियाकलाप करते हैं। जब तुम परमेश्वर महाराज हर्ष के पार्श्व भाग में वेत्रासन पर स्थित हो तो विशेषरूप से हम लोग प्रसन्न हैं। इस प्रकार अनेक बातों से मन बहलाते हुए बाण उनके साथ देर तक ठहरे। मध्याह्न में उठकर वे स्नानादि से निवृत्त हुए भोजन के बाद जब वे पुनः बैठे तो सबके सब उनके पास जुट गये और उन्हें घेर कर बैठ गये। इसी बीच सुदृष्टि नामक बाण का पुस्तकवाचक वहाँ आ गया तथा उनके कुछ दूर पर रखी वेत्र- पीठिका पर बैठ गया। क्षण भर रुककर तत्काल उसने सूत की बेटन खोल दी। पुस्तक को उसने सरकंडों के बने पीढ़े पर रख दिया। पीछे समीप में बैठे हुए मधुकर और पारावत नामक वंशीवादक बाण के दो मित्रों ने जब अवकाश दिया, तब सुष्टि वायुपुराण का पाठ करने लगा।

सुदृष्टि जब वायुपुराण के पाठ में संलग्न था तभी सूचीबाण नामक बन्दी ने दो आर्या छन्दों का गान किया। उसने कहा कि वायु-पुराण हर्ष के चरित से अभिन्न प्रतीत होता है। आर्याओं को सुन कर बाण के चार चचेरे भाइयो- गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल ने एक दूसरे की ओर देखा। उसके बाद उन चारों में सबसे छोटा बाण का अत्यन्त प्रिय श्यामल बोला- तात बाण, प्रातःस्मरणीय, पुण्यों के राशि देव हर्ष का चरित पूर्वपुरुषों की वंश परम्परा के साथ हम सुनना चाहते हैं। बहुत दिनों से हम लोगों की यह इच्छा बनी हुई है। अतः आप कहे- यह भार्गव वंश पुण्यवान् राजर्षि के पावन चरित को सुन कर और अधिक पावन बन जाय। बाण ने हँस कर अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए दूसरे दिन हर्षचरित का वर्णन आरम्भ करने के लिए निश्चय किया तथा सन्ध्योपासना के लिए वे शोण के तट पर चले गये।

इस प्रकार बाण ने दूसरे दिन हर्ष के पूर्वपुरुषों की वंश-परम्परा के साथ हर्षचरित का वर्णन प्रारम्भ किया। बाण के जीवन के विषय में इसके अतिरिक्त कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता।

बाण ने अपनी दूसरी विश्वविश्रुत कृति कादम्बरी के प्रारम्भ में भी संक्षेप में अपनी वंश- परम्परा का उल्लेख किया है। कादम्बरी में जो वंश-परम्परा दी गयी है, तदनुसार कुबेर के बाद अर्थपति का उल्लेख आता है। बीच में पशुपत का नाम छूट गया है। हर्ष की मृत्यु के बाद बाण प्रोतिकूट लौट आये। वहीं इन्होंने अपने दोनों ग्रन्थों को लिखा। हर्षचरित से बाण के जीवनवृत्त से सम्बद्ध आकांक्षा की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में बाण ग्रन्थ को पूरा करने के प्रति उदासीन हो गये। कादम्बरी को भी वे अपूर्ण ही छोड़ गये। सौभाग्य से उनके सुयोग्य पुत्र ने उसे पूरा किया। कुछ लोगों के

अनुसार बाण के पुत्र का नाम भूषणबाण या भूषणभट्ट था। कादम्बरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में 'पुलिन' या 'पुलिन्द' नाम मिलता है। धनपाल विरचित 'तिलकमंजरी' में पुलिन्द ही का उल्लेख है-

“केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।

किं पुनः क्लृप्तसन्धानं पुलिन्दकृतसन्निधिः।।” (ति.म.26वाँ पद्य)

बाण के समकालीन कवियों में मातंगदिवाकर तथा मयूर का उल्लेख आता है। जनश्रुति के अनुसार मयूर कवि बाण के साले बताये गये हैं। बाण ने अपने विवाह का उल्लेख सम्राट् हर्ष से मिलने के प्रसंग में ही किया है- 'दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि।' इसके अतिरिक्त बाण के वैवाहिक जीवन विषय में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती।

'हर्षचरित' में उपलब्ध बाण के जीवनवृत्त से यही ज्ञात होता है कि वे प्रारम्भ में अत्यन्त मनमोजी स्वभाव के थे किन्तु देश-देशान्तर का पर्याप्त भ्रमण करने के बाद उन्हें सांसारिक अनुभवों की ऐसी पूंजी हाथ लग गयी जिसने उन्हें पूर्ण गम्भीर बना दिया। प्रतिभाशाली तो वे थे ही साथ ही सम्राट् हर्षवर्धन के कृपापूर्ण सान्निध्य में उनकी प्रतिभा को निखरने का पर्याप्त अवसर मिला और इस स्वर्णिम अवसर का पूरा लाभ बाण ने उठाया।

1.4 बाणभट्ट की वंश-परम्परा :

महाकवि बाणभट्ट ने अपने जन्मकुल के विषय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। बाणभट्ट के जन्मकुल का तथा स्वयं बाणभट्ट के जीवन का परिचय प्राप्त करने में बाणभट्ट द्वारा वर्णित उनकी वंश-परम्परा नितान्त सहायिका सिद्ध हुई है। बाण ने अपनी वंश-परम्परा का वर्णन पौराणिक शैली में किया है। एक बार इन्द्रादि देवताओं के बीच भगवान् ब्रह्मा अपने कमलासन पर विराजमान थे। देवताओं की उस गोष्ठी में मनु, दक्ष, चाक्षुष आदि प्रजापति तथा मुनिगण भी उपस्थित थे तथा वे सभी ब्रह्म के विषय में विचार कर रहे थे। उस समय ऋक्, यजुः तथा साम का पाठ भी चल रहा था तथा वेदार्थ के सम्बन्ध में परस्पर विवाद का भी प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता था। इसी क्रम में स्वभाव से ही अत्यन्त क्रोधी समझे जाने वाले महामुनि दुर्वासा तथा उपमन्यु नामक मुनि के बीच विवाद छिड़ गया। क्रोधाभिभूत दुर्वासा ने सामगान करते हुए विस्वर पाठ कर दिया। दुर्वासा के इस विस्वर सामगान को सुन कर गोष्ठी में उपस्थित सभी देवता एवं मुनि लोग स्तब्ध हो गये तथा महाक्रोधी दुर्वासा शाप न दे दें इस भय से किसी ने कुछ बोलने का साहस न किया। भगवान् ब्रह्मा ने भी प्रयास किया कि यह भयावह प्रसङ्ग टल जाय किन्तु उनके पार्श्वभाग में चामर लेकर खड़ी देवी सरस्वती अपने चंचल स्वभाव के कारण महामुनि दुर्वासा के उस विस्वर सामगान पर हँस पड़ी। देवी सरस्वती का अपने पर हँसते हुए देखकर दुर्वासा क्रोध से तिलमिला उठे तथा साप देने के

लिए उन्होंने हाथ में जल उठा लिया, सरस्वती को शाप देने तत्पर हुए दुर्वासा को स्वयं ब्रह्माजी ने काफी फटकारा, अत्रि मुनि ने उन्हें रोकने का प्रयास किया तथा सरस्वती की सखी सावित्री ने भी उनसे शाप न देने के लिए प्रार्थना की किन्तु दुर्वासा ने उन सभी के अनुरोध एवं प्रार्थना को ठुकराते हुए अन्त में सरस्वती को शाप दे ही डाला कि सरस्वती को ब्रह्मलोक का परित्याग कर तब तक अन्यत्र निवास करना होगा जब तक कि वह अपने पुत्र का मुंह न देख ले। दुर्वासा द्वारा अभिशप्त होने पर सरस्वती ने किसी प्रकार अपनी सखी सावित्री के साथ मृत्युलोक के लिए प्रस्थान किया। स्वर्गगंगा के तट- मार्ग से होते हुए वह मृत्युलोक के हिरण्यवाह शोणनदी के समीप उतरी। सरस्वती ने शोणनदी के तट पर ही निवास करने का आग्रह किया। दोनों शोणनदी के तट पर एक लतामण्डप में निवास करने लगी। शोण में नित्य स्नान तथा देवपूजन करते हुए उन दोनों ने कुछ दिन बिताये।

एक समय, दिन जब एक पहर चढ़ गया था तो उत्तर दिशा की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट सुन पड़ी। सरस्वती उत्सुकतावश लतामण्डप से निकली और उसने देखा कि धूल उड़ाता हुआ घोड़ों का समूह चला आ रहा था, जिसके साथ हजारों पैदल युवक चले आ रहे थे। अश्वारोहियों के बीच अट्टारह वर्ष की आयु का एक युवक भी था जो अत्यन्त सुन्दर था। उसके साथ- साथ एक प्रौढ़ व्यक्ति भी चल रहा था। वह युवक दिव्य आकृति वाली दोनों कन्याओं को देखता हुआ कुतूहल से लतामण्डप के समीप आ पहुँचा और घोड़े से उतर गया। अपने अन्य सहयोगियों को उसने दूर पर ही रोक दिया तथा उस दूसरे सज्जन के साथ पैदल ही वहाँ आ गया। सरस्वती के साथ सावित्री ने वनवासोचित सामग्री से उसका सत्कार किया तथा उस वृद्ध व्यक्ति से पूछा- “यह युवक कहाँ से आया है? इसे जाना कहाँ है? इसके पिता कौन हैं, माता का क्या नाम है और इसका क्या नाम है?” सावित्री के इस अनुरोध पर उस पुरुष ने कहा- “यह च्यवन का पुत्र दधीच है। इसकी माता का नाम सुकन्या है जो राजा शर्यात की पुत्री है। राजा शर्यात पुत्री को गर्भवती जानकर उसे पति के घर से अपने घर ले गये। वही उसने इसे जन्म दिया। इस प्रकार अपने ननिहाल में ही यह बढ़ा। जब इसकी माता अपने पति के घर जाने लगी तब इसके नाना ने स्नेहवश इसे अपने ही साथ रख लिया, वही पर इसने समस्त विद्याओं एवं कलाओं में निपुणता प्राप्त की तब किसी प्रकार नाना ने इसे पिता के पास जाने के लिए छोड़ा। मैं उन्हीं शर्यात का आज्ञाकारी भृत्य हूँ तथा मेरा नाम विकुक्षि है। मुझे इसे पिता के घर पहुँचाने के लिए भेजा गया है। शोण के उस पार भगवान् च्यवन का आश्रम है, हम वही जा रहे हैं।” यह कहकर उस पुरुष ने उन दोनों का भी परिचय पूछा। तब सावित्री ने कहा- “आर्य, हम दोनों का यहाँ बहुत दिनों तक रहने का विचार है अतः धीरे- धीरे सब कुछ ज्ञान हो जायगा।” फिर

दधीच और वह पुरुष दोनों घोड़ों पर चढ़कर च्यवनाश्रम की ओर चल पड़े। इधर सरस्वती दधीच के चले जाने पर उस दिशा की ओर ही देर तक आखें फैलाये बैठी रही, फिर किसी प्रकार वह दिन बीता। रात में भी दधीच के दर्शन की चिन्ता में सरस्वती निमग्न रही। इस प्रकार जब कई रातें बीती तो अपने देश की ओर लौटते हुए बिकुक्षि वहाँ पहुँचा। सावित्री ने दधीच का कुशल पूछा। बिकुक्षि ने दधीच को मालती नाम की दूती के आने का समाचार कहकर बिदा ली। बिकुक्षि के जाने पर अश्वारूढ़ होकर मालती वहाँ पहुँची। दोनों ने उसका सम्मान किया। मालती कुछ देर तक ठहरी और फिर दधीच को लाने के लिए च्यवनाश्रम गयी और दधीच को साथ लेकर लौटी। प्रणय हो जाने पर दधीच सरस्वती के साथ एक वर्ष तक वही रह गये। दैवयोग से सरस्वती ने गर्भ धारण किया और समय पर पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के जन्म लेते ही सरस्वती ने उसे समस्त वेदों, शास्त्रों और कलाओं में निष्णात हो जाने का वर प्रदान किया। इसके बाद दधीच एवं पितामह के आदेश से वह सावित्री के साथ ब्रह्मलोक चली गयी क्योंकि दुर्वासा ने उसे जो शाप दिया था उसको समाप्ति हो चुकी थी। सरस्वती के चले जाने पर दधीच ने भार्गव वंश में उत्पन्न अपने भाई की अक्षमाला नाम की पत्नी के पास उस सारस्वत पुत्र को पालने के लिए छोड़कर स्वयं तपस्या करने के लिए प्रस्थान किया। जिस समय सरस्वती ने पुत्र को जन्म दिया था उसी समय अक्षमाला ने भी अपने गर्भ से एक पुत्र को जन्म दिया था। अक्षमाला ने दोनों पुत्रों का समुचित पालन-पोषण कर उन्हें बढ़ाया। उनमें से एक का नाम सारस्वत तथा दूसरे का नाम वत्स था। दोनों में सहोदर भाई जैसा स्नेह था। माता के वरदान से सारस्वत युवावस्था के प्रारम्भ में ही समग्र शास्त्रों का पारंगत विद्वान् बन गया। उसने वत्स को भी अपनी सारी बिद्या दे दी तथा उसका विवाह करवाकर प्रीतिकूट नामक स्थान बनवा दिया। उसके बाद सारस्वत स्वयं दण्ड-चीवर धारण करके तपस्या करने के लिए वही चला गया जहाँ उसके पिता दधीच तपस्या कर रहे थे।

उसी वत्स से वंश प्रवर्तन हुआ। उसी वंश की परम्परा में बाणभट्ट का जन्म हुआ। बाण ने वात्स्यायनवंश की परम्परा भी प्रस्तुत की है। वत्स के पश्चात् अनेक वर्ष बीते तथा बहुत-से वात्स्यायन ब्राह्मण उस वंश में उत्पन्न हुए, उसी क्रम में कुबेर नामक ब्राह्मण उत्पन्न हुआ जिसके चार पुत्र हुए- अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत। पाशुपत के अर्थपति नामक पुत्र हुआ जिसने- भृगु, हंस, शुचि, कक्षि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, लक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप नामक बारह पुत्रों को उत्पन्न किया। चित्रभानु के ही पुत्र बाणभट्ट थे। बाण की माता का नाम राजदेवी था। बाण के दो पारशव (शूद्र स्त्री से उत्पन्न) भाई थे- चित्रसेन और मित्रसेन और चार चचेरे भाई थे- गणपति, अधिपति, तारापति तथा श्यामल।

इस प्रकार बाणभट्ट ने अपने वात्स्यायन वंश का उद्भव तथा उसमें उत्पन्न हुए अपने कुलपुरुषों की क्रमिक वंशावली का उल्लेख किया है। इसी प्रसंग में अपनी भी चर्चा उन्होंने की है।

1.5 बाणभट्ट की कृतियाँ :

महाकवि बाणभट्ट की समुपलब्ध प्रामाणिक रचनाओं में हर्षचरित तथा कादम्बरी को ही परिगणित किया जा सकता है। वैसे बाणभट्ट के नाम से अन्य कई रचनाएँ संस्कृत साहित्य में उल्लिखित हैं। जिनमें चण्डीशतक, पार्वती-परिणय तथा मुकुटताडितक प्रसिद्ध हैं। चण्डीशतक में 100 पद्यों में भगवती दुर्गा की स्तुति की गयी है। पार्वती-परिणय तथा मुकुटताडितक- ये दोनों नाटक हैं। इन सभी कृतियों का रचयिता बाण को ही बताया जाता है किन्तु डॉ. ए. बी. कीथ के अनुसार 'पार्वती परिणय' नामक नाटक बस्तुतः ईसा की 15 वी शताब्दी में उत्पन्न तैलंगदेशीय तथा वत्सगोत्रीय कवि वामनभट्ट बाण की रचना है। नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल तथा गुणविजय गणि के अनुसार महाभारतीय कथा पर आश्रित 'मुकुटताडितक' नामक नाटक की रचना बाणभट्ट ने ही की है किन्तु वह ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

यह भी अनुमान लगाया जाता है कि बाण ने अपनी कादम्बरी की रचना पद्य में भी की होगी। बाण की रचना शैली की प्रशंसा करते हुए भोज ने कहा है-

“यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः।” (सरस्वतीकण्ठाभरण. 21.20)

अर्थात् गद्यरचना में बाण को जैसी नैपुण्य प्राप्त है वैसी पद्यरचना में नहीं। भोज के इस कथन का आधार पार्वती परिणय आदि नाट्य ग्रन्थ नहीं हो सकते, अतः निश्चय ही बाण द्वारा विरचित कोई पद्य ग्रन्थ अवश्य रहा होगा। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' में कादम्बरी के कुछ पद्यों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त सुभाषित ग्रन्थों में उद्धृत पद्यों के साक्ष्य पर भी यह सिद्ध होता है कि बाण ने पद्यरचना में भी अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्य का उपयोग अवश्य किया होगा किन्तु प्रबल प्रमाणों के अभाव में तत्काल यही मान लेना उचित है कि हर्षचरित तथा कादम्बरी ये दो महनीय गद्य ग्रन्थ ही बाणभट्ट की वास्तविक रचनाएँ हैं। बाण की रचनाशैली एवं कल्पना के आधार पर भी ये दोनों ग्रन्थ ही प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। इसलिए इन्हीं दोनों काव्यग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

1.5.1 हर्षचरित :

'हर्षचरित' बाणभट्ट की प्रथम रचना है। सम्राट् हर्षवर्धन के जीवनवृत्त को आधार बनाकर यह ऐतिहासिक काव्य निर्मित किया गया है। गद्य के जो 'आख्यायिका' एवं 'कथा' ये दो भेद हैं, उनमें से हर्षचरित 'आख्यायिका' के अन्तर्गत परिगणित होता है।

संस्कृत में ऐतिहासिक काव्य के प्रणयन की परिपाटी बाणभट्ट से ही प्रारम्भ हुई। इससे पूर्व इस प्रकार के काव्य का निर्माण नहीं हुआ था। प्राकृतनायक को अपने काव्य का नायक बनाना हेय समझा जाता था, इसीलिए बाणभट्ट के पूर्व किसी कवि ने ऐतिहासिक काव्य के निर्माण में अपनी रुचि नहीं प्रकट की। संस्कृत साहित्य के इस खटकने वाले अभाव की पूर्ति सर्वप्रथम बाण द्वारा ही सम्भव हुई।

हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में निबद्ध है। प्रारम्भ के समग्र दो उच्छ्वासों में तथा तृतीय उच्छ्वास के लगभग चतुर्थांश में बाण ने आत्मकथा प्रस्तुत की है। इसके बाद अपने इस काव्य के नायक सम्राट् हर्षवर्धन के चरित का वर्णन किया है। हर्षवर्धन के वंशप्रवर्तक पुष्पभूति के वर्णन से हर्षचरित का प्रारम्भ किया गया है। हर्ष के पिता का नाम प्रभाकरवर्धन तथा माता का नाम यशोवती था। उनके अग्रज का नाम राज्यवर्धन था। राज्यवर्धन का जन्म 588 ई. में हुआ। दो वर्ष के बाद हर्ष का जन्म हुआ तथा तीन वर्ष के बाद हर्ष की बहन राज्यश्री का जन्म हुआ। राज्यश्री का विवाह मौखरि क्षत्रिय अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ हुआ। राज्य के उत्तरी क्षेत्र पर जब हूणों ने आक्रमण कर दिया तो राज्यवर्धन उनका प्रतिकार करने हेतु गये। वहाँ से राज्यवर्धन लौटे न थे कि इधर उनके पिता प्रभाकरवर्धन का निधन हो गया। हर्ष की माता महारानी यशोवती पति की मृत्यु होने से पूर्व ही चिता में बैठकर सती हो गयी। इधर मालवा के राजा ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया तथा ग्रहवर्मा को मार डाला। राज्यश्री मालवाधिप की कैद में आ गयी। राज्य-वर्धन ने हर्ष के कन्धे पर राज्यभार सौंप कर शत्रु के विरुद्ध प्रयाण किया। उन्होंने मालवाधिप को तो युद्ध में परास्त कर डाला किन्तु उसके सहायक गौडाधिप ने धोखे से उन्हें मार डाला। अपने अग्रज के असामयिक निधन से हर्ष अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। अपने अग्रज की मृत्यु का बदला लेने के लिए वे चल पड़े। मार्ग में ही उन्हें दिवाकर मित्र नामक बौद्ध भिक्षु से यह जानकारी मिली कि हर्ष की बहन राज्यश्री बन्दीगृह से छूट कर विन्ध्याटवी में भाग निकली है। कालान्तर में अपनी बहन राज्यश्री से मिलने में हर्ष सफल होते हैं।

इस प्रकार बाणभट्ट ने एक ऐतिहासिक तथ्य को आधार बना कर उसे अलंकृत काव्यमय शैली में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। ऐतिहासिक तथ्य अपनी यथार्थता के कारण प्रायः शुष्क ही होता है। ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बना कर काव्य प्रणयन करने वालों के समक्ष यह गुञ्जाइश भी नहीं रहती कि वे कथावस्तु में सरसता का आधान करने के उद्देश्य से उसमें मनमाना परिवर्तन कर सकें। घटनाक्रम में बिना किसी प्रकार का परिवर्धन किये ही उसे यदि इस रूप में प्रस्तुत कर दिया जाय कि पाठकों को उसमें इतिहास की यथार्थता के साथ-साथ काव्य की सरसता का आनन्द भी साथ- साथ ही उपलब्ध होने

लगे तो निश्चय यह रचयिता का ही अप्रतिम कौशल है। बाणभट्ट ने अपने इसी काव्यकौशल का परिचय हर्षचरित में दिया है। यह सत्य है कि हर्षचरित में जिन ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया गया है उनकी तिथियों का उल्लेख नहीं किया गया है। यहाँ तक कि हर्ष के अग्रज राज्यवर्धन को धोखे से मारने वाले गौडाधिप का भी नामोल्लेख नहीं किया गया है किन्तु इससे प्रस्तुत कृति की इतिहास- परकता तनिक भी बाधित नहीं होती। सरसता, अलङ्कारमयता आदि विविध गुणों के कारण काव्य का आनन्द तो सहज ही प्राप्त होता है। कथावस्तु को रुचिकट बनाने के लिए कही- कही अलौकिक पात्रों तथा पौराणिक कथाओं का भी इसने उपयोग किया गया है।

‘हर्षचरित’ में महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष के समकालीन युग की सांस्कृतिक सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का नितान्त प्रभावशाली चित्रण किया है। यही कारण है कि हर्षचरित को सभ्यता का विश्वकोश माना जाता है। हर्षचरित की तुलना यदि अजन्ता के कलामण्डप से की जाय तो यह कुछ अनुचित न होगा। ह्वेनत्सांग के संस्मरणों तथा हर्षचरित के घटनाक्रमों का ठीक-ठीक मेल हो जाने से हर्षचरित का महत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य की दृष्टि से भी ‘हर्षचरित’ का असामान्य महत्व है। बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में महाभारत, वासवदत्ता एवं बृहत्कथा नामक ग्रन्थों की तथा भास, कालिदास, प्रवरसेन, भट्टार हरिश्चन्द्र एवं आदयराज नामक कवियों की प्रशंसा की है। बाण के स्थितिकाल का निश्चय हो जाने पर अन्य कवियों के स्थितिकाल के निर्णय में बड़ी सहायता मिलती है।

गद्य की जो प्रौढ़ता कादम्बरी में दृष्टिगोचर होती है वह यद्यपि हर्षचरित में नहीं है फिर भी बाण की इस प्रथम कृति में उनकी अभिव्यक्ति क्षमता की प्रौढ़ता तो परिलक्षित होती ही है। ऐतिहासिक तथ्यों की यथार्थता को काव्यात्मक सरसता के मनोरम परिधान में लपेट कर बाण ने ‘हर्षचरित’ को सर्वसामान्य के लिए रुचिकर बनाने का सफल प्रयास किया है।

1.5.2 कादम्बरी :

संस्कृत के अनेक मूर्धन्य कवियों ने अपनी काव्य कृतियों के लिए जिन प्राचीन ग्रन्थों का आश्रय लिया है उनमें तीन प्रमुख हैं- रामायण, महाभारत, बृहत्कथा। यही कारण है अवान्तरकालीन काव्यकृतियों के लिए इन तीन काव्यग्रन्थों को उपजीव्य होने का गौरव प्राप्त है। श्रीमद्भागवत भी यद्यपि इस दृष्टि से पीछे नहीं है तथापि प्रधान रूप से इन्हीं तीनों की उपजीव्यता प्रसिद्ध है। बाणभट्ट की प्रथम रचना ‘हर्षचरित’ तो इतिहासपरक है किन्तु कादम्बरी की कथावस्तु के लिए उन्होंने गुणाढ्यकृत बृहत्कथा को ही आधार बनाया है। गुणाढ्य द्वारा रचित ‘बृहत्कथा’ पैशाची भाषा में निबद्ध वह कथा- ग्रन्थ है जिसका संस्कृतभाषा में अनूदित

स्वरूत्र क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर' में उपलब्ध होता है। इन दोनों ही कथाग्रन्थों में कादम्बरी- कथा का मूलरूप उपलब्ध होता है।

'कादम्बरी' के प्रारम्भिक 20 पद्यों में देवस्तुति, सज्जनप्रशंसा तथा कवि के द्वारा अपने वंश का वर्णन किया गया है। बाद कथामुख अर्थात् कादम्बरीकथा की भूमिका उपन्यस्त की गयी है। कथामुख के बाद प्रधान कथा वर्णित है। संक्षेप में कादम्बरी की कथा इस कथामुख के प्रकार है-

विदिशा के राजा शूद्रक के पास एक चाण्डालकन्या पञ्जरबद्ध आश्चर्यजनक शुक को लेकर आती है तथा राजा को समर्पित करती है। वह शुक अपने जन्म से लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुँचने तक का अपना वृत्तान्त सुनाता है। महर्षि जाबालि शुक के पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं, उज्जयिनी के राजा तारापीड थे। उनकी रानी का नाम विलाप्तवती था। उनके महामन्त्री का नाम शुकनास था जो अत्यन्त नीतिकुशल तथा गुणवान् थे। बहुत प्रतीक्षा के बाद राजा को पुत्र-लाभ होता है। उसी समय मन्त्री शुकनास की पत्नी मनोरमा एक पुत्ररत्न को जन्म देती है। राजा तारापीड के पुत्र का नाम चन्द्रापीड तथा मन्त्री शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा जाता है। दोनों बालक साथ-साथ गुरुकुल में अध्ययन करते हैं, तथा युवावस्था प्राप्त करने पर ही दिग्विजय के लिए सेना लेकर निकल पड़ते हैं। राजकुमार चन्द्रापीड एक बार किन्नरमिथुन का पीछा करते हुए बहुत दूर अच्छोद सरोवर के पास पहुँच जाते हैं। वहाँ उन्हें महाश्वेता नाम की एक गन्धर्व कन्या मिलती है जिससे उन्हें ज्ञात होता है कि पुण्डरीक नामक उसका प्रियतम मिलन से पूर्व ही दिवंगत हो गया था। अपने प्रियतम के भावी मिलन की आशा में ही वह अच्छोद सरोवर के तट पर निवास कर रही है। उसकी सखी कादम्बरी ने भी कौमार्यव्रत धारण कर रखा है। महाश्वेता चन्द्रापीड को कादम्बरी के पास ले जाती है जहाँ प्रथम दर्शन में ही चन्द्रापीड तथा कादम्बरी दोनों ही परस्पर अनुरक्त हो उठते हैं। चन्द्रापीड वहाँ से लौट कर अपने स्थान को आते हैं तथा वहाँ पिता का पत्र पाकर अकेले हो घर चले जाते हैं। घर से पुनः स्कन्धा-वार पहुँच कर तथा वहाँ वैशम्पायन को न देख कर वे दौड़े दौड़े महाश्वेता के पास पहुँच जाते हैं। महाश्वेता से ही उन्हें यह ज्ञात होता है कि वैशम्पायन ने जब महाश्वेता से प्रणय- याचना की तो महाश्वेता ने उसे शुक बना दिया। अपने प्रिय मित्र की इस दारुण विपत्ति को न सहने के कारण राजकुमार चन्द्रापीड भी अपने प्राण त्याग देते हैं। चन्द्रापीड को प्रियतमा कादम्बरी वहाँ पहुँच जाती है तथा अपने प्रियतम के पुनः मिलन की आशा से राजकुमार चन्द्रापीड के मृत शरीर की सेवा में संलग्न हो जाती है। यहाँ जाबालि की कथा समाप्त हो जाती है।

तब शुक राजा शूद्रक से कहता है कि मैं अपनी प्रेयसी महाश्वेता के लिए उड़ चला तो बीच में चाण्डाल-कन्या ने मुझे पकड़ कर आपके पास पहुँचा दिया। तब चाण्डालकन्या ने रहस्योद्घाटन करते हुए बताया कि मैं लक्ष्मी हूँ, यह शुक पुण्डरीक है और आप ही चन्द्रापीड हैं। चाण्डालकन्या के मुख से यह सुनते ही राजा शूद्रक को कादम्बरी का प्रेम स्मरण हो गया। उनके प्राण निकल गये तथा उधर चन्द्रापीड जीवित हो उठा। शुक की आत्मा भी पुण्डरीक के मृत शरीर में आकर पुनः मिल गयी जो चन्द्रलोक में सुरक्षित था। तत्पश्चात् महाश्वेता और पुण्डरीक, कादम्बरी और चन्द्रापीड सब एकत्र हो गये तथा विवाहित होकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार कादम्बरी की कथा-वस्तु आदि से अन्त तक अप्राकृतिक घटनाओं से भरी हुई तथा कुतूहल उत्पन्न करने में विलक्षण सिद्ध हुई है। कादम्बरी की कथा में जो घटना-वैचित्र्य तथा कुतूहल-जनकता है उसी का यह परिणाम है कि कोई भी पाठक यदि कादम्बरी को हाथ में ले लेता है ही फिर उसे, आद्योपान्त पढ़े बिना नहीं रह सकता। मुख्य कथा के साथ-साथ अनेक उपकथाएँ भी इसमें प्रयुक्त हैं, जो मुख्य कथा की ही पोशिका सिद्ध हुई हैं। कादम्बरी ही इस काव्य की नायिका है तथा उसी की प्रणयकथा मुख्यकथा है किन्तु महाश्वेता की प्रणयकथा भी महत्व की दृष्टि से न्यून नहीं है। कादम्बरी की प्रणयभावना के उत्कर्षण में महाश्वेता की प्रणयकथा नितान्त उपस्कारिका सिद्ध हुई है। कथावस्तु के विन्यास की, दृष्टि से बाणभट्ट ने जी निपुणता कादम्बरी में प्रदर्शित की है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

चरित्रचित्रण के क्षेत्र में भी बाणभट्ट ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। महाराज तारापीड, राजकुमार चन्द्रापीड, महामन्त्री शुकनास, रानी विलासवती, महाश्वेता, कादम्बरी, पत्रलेखा, कपिल आदि सभी प्रधान-अप्रधान पात्रों का इस निपुणता के साथ चित्रण किया गया है कि कादम्बरी का अध्ययन करते समय उसके सभी पात्र नेत्रों के समक्ष मानो सजीव होकर उपस्थित हो जाते हैं।

1.6 बाणभट्ट की गद्यशैली :

लोकोत्तरवर्णनानिपुण कवियों की शैली भी असामान्य एवं विलक्षण हुआ करती है। महाकवि बाणभट्ट की शैली उनकी काव्यविषयक मान्यता के अनुरूप ही, परम हृद्य है। 'कादम्बरी' एवं 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक कतिपय पद्यों में बाणभट्ट ने कवि, काव्य एवं काव्यशैली से सम्बद्ध अपनी विशिष्ट अवधारणा का स्फुट प्रकाशन किया है। वे राग-द्वेष से युक्त कवियों को कामोद्दीपक कोकिल के समान वाचाल समझते हैं। जो काव्य के व्याज से बस्तुतः असम्बद्ध प्रलाप ही करते हैं। काव्य में स्वरूप मात्र का वर्णन करने वाले कवियों की

तुलना उन्होंने घर- घर में जन्म लेने वाले कुत्तों से की है, जबकि सरस, चमत्कारपूर्ण एवं विलक्षण काव्य की सृष्टि करने वाले कवियों की तुलना उन्होंने शरभों से की है-

‘प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः।

कोकिला इव जायन्ते वाचालाः कामकारिणः॥४॥

सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।

उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव॥५॥

(हर्षचरित.प्रस्तावना.5)

अभिप्राय यह है कि बाणभट्ट सरल तथा सोरस गद्यशैली के पक्षपाती नहीं है जिसमें मात्र तथ्य कथन हो तथा वैचित्र्य का सर्वथा अभाव हो ऐसा काव्य उनकी दृष्टि में हेय है। इसके साथ ही काव्य की मौलिकता के प्रति भी बाणभट्ट का पर्याप्त आग्रह है। दूसरे की कविता के कुछ वर्णों को बदल कर अपनी कविता घोषित करने वाले कवि को बाण ने चोर कहा है-

“अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः।

अनाख्याताः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते॥”

(हर्षचरित.प्रस्तावना.6)

बाणभट्ट ने विभिन्न क्षेत्रों के कवियों द्वारा विनिर्मित काव्यों में पायी जाने वाली भिन्न-भिन्न विशेषताओं का उल्लेख अधोनिर्दिष्ट रूप में किया है-

“श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।

उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वाक्षराडम्बरम्॥”

(हर्षचरित.प्रस्तावना.7)

अर्थात् उत्तरी क्षेत्र के कवियों के काव्यों में श्लेष की, पश्चिमी क्षेत्र के कवियों के काव्यों में अर्थमात्र की, दाक्षिणात्य कवियों के काव्यों में उत्प्रेक्षा की तथा गोडदेशीय अर्थात् पूर्वी कवियों के काव्यों में अक्षरमात्र का प्राधान्य रहता है।

उपर्युक्त विवेचन के मूल में बाण का यही उद्देश्य निहित है कि काव्य में उसके उत्कर्षाधायक सभी तत्त्वों का सम्यक् समावेश होना चाहिए, न कि किसी एक तत्त्व का ही प्राधान्य होना चाहिए, एकाङ्ग का परिहार करते हुए समन्वय का आश्रय ही आदर्श कवि के लिए अपेक्षित होता है, तभी उसका काव्य प्रशस्य एवं उत्कृष्ट हो सकता है। उत्कृष्ट काव्य के लिए बाणभट्ट ने जिन विशेषताओं को अपेक्ष्य एवं आश्रयणीय माना है, उनका उल्लेख अधोनिर्दिष्ट पद्य में उन्होंने किया है-

“नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लष्टः स्फुटो रसः।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥”

(हर्षचरित-प्रस्तावना-8)

अर्थात् काव्य में नवीनता, स्वभावोक्ति की चमत्कारपूर्णता, श्लेष की अक्लिष्टता, रस की स्फुटता एवं आकर्षक शब्दों की योजना का होना बाण की दृष्टि में परमावश्यक है। कहना न होगा कि बाण के काव्य में ये सारी विशेषताएँ समवेत रूप में विद्यमान हैं।

बाण चूँकि सर्वोत्कृष्ट गद्यकवि है। अतः उन्होंने अपने गद्यकाव्यों में जिस शैली का प्रयोग किया है उसका स्वरूप भी एकाङ्गी नहीं अपितु समन्वयात्मक ही है। बाण के समय से ही चार प्रकार की गद्यशैलियाँ प्रचलित थी जिनमें से बाण ने अपने गद्यकाव्य में तीन शैलियों का बहुत प्रयोग किया है। ये तीन गद्यशैलियाँ हैं- उत्कालिका, चूर्णक तथा आबिद्ध। उत्कालिका नाम की गद्यशैली के अन्तर्गत दीर्घसामासिकपदावली का तथा चूर्णकशैली के अन्तर्गत अल्प- सामासिक पदावली का प्रयोग किया जाता है जब कि समासरहित शैली को आबिद्ध कहा जाता है। गद्यकाव्य की उत्कृष्टता का मानदण्ड चूँकि समासभूयस्त्व को माना गया है अतः लम्बे लम्बे समासों वाली उत्कालिका शैली के प्रति बाण का सर्वाधिक पक्षपात होना स्वाभाविक ही है। उत्कालिका शैली चूँकि चित्रात्मक प्रसंग के अनुकूल पड़ती है इसलिए हर्षचरित के दधीच वर्णन, गोष्म वर्णन आदि प्रसङ्गों में बाण ने इस शैली का भरपूर प्रयोग किया है। जहाँ कहीं भी चित्रात्मक वर्णन का प्रसङ्ग आया है वहाँ बाण ने लम्बे लम्बे समासों वाली इस शैली का प्रयोग कर वर्णनीय वस्तु के चित्र को पाठक के नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थापित करने में विलक्षण सफलता पायी है। इस प्रकार के वर्णनों के अन्त में पुनः बाण आबिद्ध शैली का आश्रय ले लेते हैं। इसी प्रकार अल्पसमासों वाली चूर्णक शैली का भी प्रयोग इन्होंने पर्याप्तरूपेण किया है। तत्तत् स्थलों में इसका साक्षात्कार किया जा सकता है। अभिप्राय यह है कि समास-बहुलता एवं गाढबन्धता को ही उत्कृष्ट गद्य का मानदण्ड मानते हुए बाण ने यद्यपि उत्कालिका शैली का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है किन्तु अवसर एवं प्रसङ्ग को ध्यान में रखते हुए चूर्णक एवं आबिद्ध शैली का भी यथास्थान प्रयोग किया है। सामान्य परिचर्चा या उपदेशात्मक कथन के प्रसङ्गों में चूर्णक एवं आबिद्ध शैली का भव्य प्रयोग किया गया है। हर्षचरित के चतुर्थ उच्छ्वास के अन्तर्गत राज्यश्री के विवाह-प्रसङ्ग में बाण की शैली का निखरा हुआ रूप उपलब्ध होता है।

बाण के गद्य में जो प्रौढता, प्राञ्जलता एवं सरसता है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसीलिए कहा गया है-

“हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।

भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्॥”

गद्य की जो सर्वोत्कृष्ट शैली है उसी को सङ्केतित करते हुए बाण ने कादम्बरी में कहा है कि नाना प्रकार के वर्णों के द्वारा नये अर्थ-समूह का प्रतिपादन करने वाला गद्य ही उत्कृष्ट होता है अथवा ऐसा गद्य उत्कृष्ट कवि द्वारा ही विनिर्मित होता है-

“उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्।”

बाण का शब्द-कोष अक्षय है। एक ही बात को अनेक रूपों में, नये-नये शब्दों में कहना बाण की अन्यतम विशिष्टता है। बाण के काव्य में पाञ्चाली रीति का ही प्राचुर्य है। इस रीति के अन्तर्गत अर्थों के अनुरूप ही शब्दयोजना की जाती है। अर्थानुरूप शब्दयोजना किसी भी कवि का उत्कृष्ट गुण होता है और बाण इस कला में निपुण है। इसीलिए ‘सरस्वतीकण्ठाभरण’ में कहा गया है-

“शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।

शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदा।।”

अलङ्कार-प्रयोग एवं रस-योजना की दृष्टि से भी बाण की शैली परम हृद्य है। शब्दालङ्कारों में अनुप्रास एवं श्लेष का तथा अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसंख्या आदि अलङ्कारों का रुचिकर प्रयोग बाण ने अपने काव्य में किया है। इसी प्रकार हर्षचरित के अन्तर्गत यथास्थान विभिन्न रसों की योजना भी सफलता एवं कुशलता के साथ की गयी है। दधीचि एवं सरस्वती के पारस्परिक प्रणय-प्रसङ्ग में शृङ्गार रस का समुचित प्रयोग किया गया है। सम्राट् हर्षवर्धन के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन करते समय वीर रस को मनोज्ञ अभिव्यक्ति हुई है। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के प्रसङ्ग में करुण रस का मार्मिक परिपाक हुआ है।

इस प्रकार महाकवि बाणभट्ट की शैली के अन्तर्गत उत्कृष्टता की सृष्टि करने वाले सभी अपेक्षित तत्वों का मञ्जुल समावेश परिलक्षित होता है।

1.7 हर्षचरित के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण :

1.7.1 प्रभाकरवर्धन :

प्रभाकरवर्धन ‘हर्षचरित’ के प्रधान नायक सम्राट् हर्षवर्धन के पिता थे। हर्षचरित के चतुर्थ उच्छ्वास में उनके गरिमा-मण्डित व्यक्तित्व का भव्य प्रकाशन हुआ है। वे अद्वितीय पराक्रमी एवं महान् योद्धा थे। उन्होंने सिन्धु, गुर्जर, गान्धार, लाट, मालव आदि प्रान्तों के राजाओं को युद्ध में पराजित कर अपना अतिविस्तृत एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया था। वे हुणरूपी हरिणों के लिए सिंह के सदृश थे। विलक्षण पराक्रमी होने के कारण ही वे प्रतापशील के नाम से भी सुविख्यात थे-

प्रतापशील इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः।”

वे अत्यन्त प्रजावत्सल तथा परोपकारी थे। पराक्रमी होने के साथ-साथ वे परम धार्मिक भी थे। उनके शासन काल में निरन्तर यश हुआ करते थे तथा मन्दिरों में सतत् देव-पूजन होता था। उनके यहाँ स्वर्णनिमित्त वस्तुओं की भरमार थी तथा वे ब्राह्मणों को दान में प्रचुर धन दिया करते थे जिससे उनकी ऐश्वर्यशालिता के साथ-साथ उनकी दानशीलता का भी परिचय प्राप्त होता है-

“काञ्चनमयसर्वोपकरणैर्विभवैर्विशीर्णमिवमेरुणा, द्विजदीयमानैरर्थकलशैः फलितमिव भाग्यसंपदा ---”

राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन नामक अपने दोनों पुत्रों को उन्होंने जिस प्रकार उपदिष्ट किया है उससे पता चलता है कि वे व्यवहार, नीति एवं राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित तथा मर्मज्ञ थे-

“वत्सो! प्रथमं राज्याङ्गदुर्लभाः सद्भृत्याः शल्यं हृदये निक्षिपन्त्यतिमार्गणाः।”

मालवराज के कुमारगुप्त एवं माधवगुप्त नामक दोनों पुत्रों के प्रति स्नेह, मृदुता, सहानुभूति एवं उदारता से परिपूर्ण व्यवहार उनकी कृपालुता का ही द्योतक है। अपनी पुत्री राज्यश्री के युवावस्था में प्रवेश करते ही वे उसके विवाह को लेकर चिन्तित हो उठते हैं, तथा ग्रहवर्मा जैसे सुयोग्य वर के साथ उसका विवाह सम्पन्न करवाते हैं, जिससे अपने कर्तव्य के प्रति उनका सतत् जागरूक रहना स्वतः परिलक्षित होता है।

स्वयम् मृत्यु शय्या पर पड़े हुए तथा जीवन की अन्तिम साँस गिनते हुए वे अपने बिलखते से पुत्र हर्षवर्धन को जिस प्रकार सान्त्वना देते हैं, उससे उनके असीम धैर्य तथा लोकोत्तर सहिष्णुता की स्फुट अभिव्यक्ति होती है।

इस प्रकार महापराक्रमी, अद्वितीय योद्धा, परम ऐश्वर्यशाली, महान् परोपकारी, नितान्त प्रजावत्सल एवं पुत्रवत्सल तथा परमकर्तव्यपरायण राजाधिराज के रूप में चित्रित प्रभाकरवर्धन का चरित्र निश्चय ही परम अभ्यर्हणीय है।

1.7.2 राज्यवर्धन :

राज्यवर्धन राजाधिराज प्रभाकरवर्धन एवं महारानी यशोवती के ज्येष्ठ पुत्र तथा सम्राट् हर्षवर्धन के अग्रज थे। जन्म के समय से ही राज्यवर्धन में प्रचण्ड योद्धा के लक्षण दृश्यमान होने लगे थे। जन्म के समय उनका वर्णन करते हुए कहा गया है कि मानो बज्र के परमाणुओं से, शेषनाग के फणामण्डल की निर्माण सामग्री से या दिग्गजों के शरीरावयवों से उनका निर्माण किया गया हो-

“सर्वोर्वोभृत्यक्षपाताय वज्रपरमाणुभिरिव निमित्तम्, त्रिभुवनभारधारणसमर्थ शेषफणामण्डलोपकरणैरिव कल्पितम्, सकलभूभृत् कम्पकारिणं दिग्गजावयवैरिव विहितमसूत देवं राज्यवर्धनम्।”

राज्यवर्धन परमपराक्रमी तथा अपने पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे। उपलब्ध वर्णन के अनुसार प्रभाकरवर्धन अपने इस वीर पुत्र का हूणों से युद्ध करने के लिए उसी प्रकार भेजते हैं। जिस प्रकार सिंह हाथियों को मारने के लिए अपने बालसिंह को भेजता है-

“हूणान्हन्तुं हरिणानिव हरिर्हरिणेशकिशोरम्- - - - - ।”

राज्यवर्धन के व्यक्तित्व में प्रारम्भ से ही ओजस्विता का तत्त्व भरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। उनके हृदय में अपने वंश की मान-मर्यादा को सुरक्षित रखने का दृढ़ निश्चय तो है ही साथ ही अपने पिता के प्रति अगाध भक्ति एवं अपने सोदर भाई-बहनों के प्रति प्रगाढ़ स्नेहभाव से ओतप्रोत उनका अन्तः-करण भी परम श्लाघ्य है। जब वे हूणों से युद्ध करते जाते हैं। तो उनका 14- 1५ वर्ष का किशोर अनुज हर्ष भी उनके साथ ही जाता है तथा कुछ पड़ावों तक साथ चलता है किन्तु हिमालय की तराईयों में आखेट करने में हर्ष का मन रम जाता है और वह वहीं रुक कर अपने बड़े भैया के लौटने की प्रतीक्षा करने लगता है। इस सामान्य-सी लगने वाली घटना पर यद्यपि विस्तार से प्रकाश नहीं डाला है किन्तु राज्यवर्धन के व्यक्तित्व के दर्पण में झाँकने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपने छोटे भाई की कच्ची उम्र को ध्यान में रख कर ही वे उसे अपने साथ न ले गये हों तथा रास्ते में ही रोक कर अपने छोटे भाई को उन्होंने आखेट में उलझा दिया हो। अनुज के प्रति अत्यधिक स्नेहशील होने के कारण ऐसी सम्भावना की जा सकती है। आगे भी कुछ इसी प्रकार क प्रसङ्ग उस समय दृष्टिगोचर होता है जब मालवराज के द्वारा ग्रहवर्मा की हत्या का समाचार पाकर राज्यवर्धन उसका नाश करने के लिए स्वयम् ही चल पड़ते हैं। उस समय भी हर्ष उनसे निवेदन करते हैं, कि वे उन्हें अपने साथ ले चलें किन्तु राज्यवर्धन अपने अनुज की इस प्रार्थना को अस्वीकार कर उसे वही रुकने का आदेश देते हैं, तथा बिना छोटे भाई को साथ लिये ही वे युद्धार्थ चल पड़ते हैं। इस प्रकार स्वयम् बार-बार युद्धाग्नि में सोत्साह कूद पड़ना तथा अपने अनुज को बार-बार युद्ध से रोकने के मूल में निश्चय ही राज्यवर्धन का अनुज के प्रति प्रगाढ़ स्नेहचाव ही परिलक्षित होता है।

राज्यवर्धन की पितृभक्ति भी स्तुत्य है। जब उन्हें अपने माता-पिता के दिवंगत होने का दुःखद समाचार मिलता है तो वे अपनी राजधानी लौट कर पितृशोक में इस प्रकार निमग्न हो जाते हैं कि उन्हें उस समय एकमात्र वैराग्य ही श्रेयस्कर प्रतीत होने लगता है। राज्यवर्धन के अघोनिर्दिष्ट कथन में उनका मार्मिक पितृशोक उमड़ता-सा प्रतीत होता है-

“तथापि किं करोमि। स्वभावस्य सेयं कापुरुषता वा स्त्रैण वा यदेवमास्पदं पितृशोकहुतभुजो जातोऽस्मि। मम हि- - - - - इत्यादि।”

पितृशोक के कारण वे इतने आकुल हो जाते हैं कि उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो उठता है तथा स्थाणीश्वर के परम ऐश्वर्यसम्पन्न राजसिंहासन के अपने उत्तराधिकार का परित्याग कर उसे सहज ही अपने छोटे भाई को समर्पित करने को तत्पर हो उठते हैं। इसलिए वे हर्ष को समझाते हुए कहते हैं-

“व्यक्तसकलबालक्रीडनेन हरिणेव दीयतामुरोलक्ष्म्यै। परित्यक्तं मया शस्त्रम्।”

राज्यवर्धन के उक्त व्यवहार से जहाँ एक ओर उनकी पितृभक्ति प्रकाश में आती है वहीं दूसरी ओर अपने अनुज के प्रति स्नेह तथा उदारता से परिपूर्ण उनके अन्तःस्थल की झाँकी भी मिल जाती है।

राज्यवर्धन अपने कुटुम्ब तथा सगे- सम्बन्धियों के प्रति सदैव साकांक्ष एवं अनुदासीन दृष्टिगोचर होते हैं। पितृशोक के कारण वे जब विरक्त होकर शस्त्रत्याग करने को उद्यत हो जाते हैं, तभी उन्हें सूचना मिलती है कि दुष्ट मालवराज द्वारा उनके बहनोई ग्रहवर्मा की निर्मम हत्या कर दी गयी है। बस, फिर क्या था! इस समाचार को सुनते ही उनका वीरोचित स्वाभिमान पुनः एक बार सर उठाने लगता है। शत्रु के द्वारा किये गये इस कुकृत्य के बारे में सुनकर वे क्रोध से तिलमिला उठते हैं, तथा शस्त्र-त्याग एवं वैराग्यधारण करने के अपने पूर्व के निर्णय को वे तत्क्षण तिजला-ज्जलि देकर मालवराज के समूलोच्छेदन के लिए चल पड़ते हैं। राज्यवर्धन का इस प्रकार का आचरण उसके हृदय में सन्निहित संवेदनशीलता तथा भावुकता का ही परिचायक है।

इस प्रकार राज्यवर्धन का विशिष्ट चरित्र एक पराक्रमी योद्धा, आज्ञाकारी एवं पितृभक्त पुत्र, उदार एवं स्नेहशील भाई तथा वंश की मानमर्यादा को प्राणपण से रक्षा करने वाले स्वाभिमानी एवं ओजस्वी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है जो निश्चय ही परमश्लाघ्य है।

1.7.3 हर्षवर्धन :

हर्षवर्धन ‘हर्षचरित’ नामक प्रस्तुत गद्यकाव्य के चरितनायक हैं। ये स्थाणीश्वर के महाराज प्रभाकर वर्धन के द्वितीय पुत्र तथा राज्यवर्धन के अनुज थे। वर्धन वंश के आदि संस्थापक राजा पुष्पभूति को लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर यह बरदान दिया था कि उनके वंश में हरिश्चन्द्र के समान सभी द्वीपों पर शासन करने वाला तथा मान्धाता के सदृश त्रिभुवन को जीत लेने की इच्छा रखने वाला हर्षनामक चक्रवर्ती उत्पन्न होगा।

“यस्मिन्नुत्पत्स्यते सर्वद्वीपानां भोक्ता हरिश्चन्द्र इव हर्षनामा चक्रवर्ती त्रिभुवनविजिगीषुद्वितीयो मान्धातेव- - - - ।”

लक्ष्मी द्वारा दिये गये बरदान के अनुसार ही हर्ष में जन्म से ही सारे गुण परिलक्षित होने लगे थे। जिस समय वे अपनी माता यशोवती के गर्भ में थे उस समय यशोवती जिन इच्छाओं का वर्णन किया गया है उनसे यह सिद्ध होता है कि किसी अद्वितीय पराक्रमी एवं भविष्य में समग्र भूमण्डल पर शासन करने वाले चक्रवर्ती पुत्र को वे जन्म देने वाली हैं-

“क्रीडायामपि नासहताज्ञाभङ्गम् अपि च चतुर्णां महार्णवानामेकृताम्भसा स्नातुं वाञ्छा बभूव--।

अर्थात् खेल-खेल में भी महारानी आज्ञाभङ्ग को नहीं सह पाती थी। चारों समुद्रों के एक में मिले हुए जल में स्नान करने की उनकी इच्छा हो रही थी। समुद्रतटीय बन के लतागृहों की रेतों में घूमने का उनका मन होता। आवश्यक कार्यों में भी केवल विलास के साथ उनकी भौह चलती थी। समीपस्थ मणिदर्पणों के होते हुए भी बह नंगी तलवार में ही अपना मुंह देखना चाहती थी। वीणा- ध्वनि की अपेक्षा धनुष की टंकार ही उन्हें सुनने में अच्छी लगती थी। पिंजड़े के सिहों को देखने में उनका मन रम जाता था। गुरुजनों को प्रणाम करते समय भी उनका सिर किसी-किसी प्रकार झुक पाता था...इत्यादि।

उपरिवर्णित तथ्य के अनुकूल ही हर्ष शैशवकाल से ही परण युद्धोत्साही एवं चक्रवर्ती के समस्त लक्षणों को धारण करने वाले परिलक्षित हो रहे थे। पिता की आज्ञा से जब उनके अग्रज राज्यवर्धन हूणों से युद्ध करने हेतु प्रस्थान करते हैं, तो उस समय 14- 15 वर्ष के किशोर हर्ष भी उनके साथ ही जाते हैं। इतनी कम आयु में युद्ध के प्रति ऐसा उत्साह किसी भावी चक्रवर्ती सम्राट् में ही सम्भव है।

अपने अग्रज के साथ हर्ष युद्ध में उनका साथ देने के लिए निकलते तो हैं किन्तु हिमालय की तराइयों में वे आखेटमग्न हो जाते हैं। तथा अपने अग्रज के लौटने की प्रतीक्षा करते हैं। वही उन्हें अपने पिता की रुग्णता का समाचार मिलता है। वे तुरन्त अपने पिता के पास लौट आते हैं। पिता की रुग्णता के कारण वे इतने व्यग्र एवं चिन्तित हो जाते हैं कि तीन दिनों तक वे अन्न- जल तक का त्याग कर बैठते हैं। पिता द्वारा पुत्र की शारीरिक दुर्बलता का कारण पूछने पर भण्डि का अधोनिर्दिष्ट कथन इसका प्रमाण है-

“देव ! तृतीयमहः कृताहारस्यास्याद्य।”

इस प्रसङ्ग में हर्ष की असामान्य पितृभक्ति का बाण ने विस्तृत परिचय दिया है। स्वयम् प्रभाकरवर्धन ने हर्ष की प्रशंसा करते हुए कहा है कि तुम्हारे जैसे लोग अल्प पुण्य वालों के कुल में उत्पन्न नहीं होते। तुम अनेक जन्मान्तर किये गये पुण्य-कर्मों के फल हो-

“न ह्यल्पपुण्यभाजां वंशमलंकुर्वन्ति भवादृशाः। फलमस्यानेकजन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मणः।”

हर्ष जैसे सुयोग्य पुत्र को पाकर प्रभाकरवर्धन स्वयम् को कृतकृत्य समझते हैं तथा उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष जैसे पुत्र को पाने के बाद अब जीवन में कोई भी अभिलाषा अधूरी नहीं रह गयी है-

“त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि। निरभिलाषोऽस्मि जीवितव्ये।”

पिता की स्वस्थता के लिए समस्त वैद्यों को बुलाना तथा उन्हें चिकित्सा आदि का निर्देश देना आदि ऐसे प्रसङ्ग हैं, जो हर्ष की पितृविषयक चिन्ता एवं भक्ति का परिचायक हैं। पिता की मृत्यु एवं माता का उन्हीं के साथ सती हो जाने से हर्ष का शोकोद्विग्न हृदय हर्षरहित होकर सर्वथा भिन्न-भिन्न हो जाता है। अपने अग्रज राज्यवर्धन को वे सूचना भिजवा देते हैं किन्तु उनके विषय में भी तरह-तरह की कुशङ्काओं से उनका मन उद्विग्न होने लगता है, वे अपने अग्रज के विषय में ऐसी सम्भावना व्यक्त करते हैं कि कहीं माता-पिता की मृत्यु का समाचार पाकर बड़े भैया विरक्ति के कारण सन्यस्त न हो जायें। हर्ष की इस प्रकार की चिन्ताओं से उनकी भ्रातृ-भक्ति का ही परिचय प्राप्त होता है।

राज्यवर्धन जब लौटते हैं तो वे माता-पिता के मृत्युजन्य शोक के कारण हर्ष के अनुमानानुसार शस्त्र-त्याग कर सन्यस्त हो जाना चाहते हैं किन्तु इसी समय मालवराज के द्वारा राज्यश्री के प्रति ग्रहवर्मा की निर्मम हत्या के समाचार से वे क्रोध से आग-बबूला हो उठते हैं तथा पितृशोक को भुला बैठते हैं, तत्क्षण वे मालवराज का संहार करने हेतु चल पड़ते हैं। उस समय भी हर्ष उनके साथ चलने हेतु तत्पर हो उठते हैं किन्तु उनके अग्रज उन्हें रोक देते हैं। कालान्तर में जब गौडाधिप द्वारा अपने अग्रज को धोखे से मार डालने का समाचार उन्हें मिलता है तो उस समय हर्ष का क्रोध अपनी सीमा को पार कर जाता है। उस समय हर्ष का शौर्य, ओजस्विता, साइस आदि फूट कर निकलने लगते हैं। वे गौडाधिप के संहार की प्रतिज्ञा अधोनिदिष्ट ओजस्वी शब्दों में करते हुए कहते हैं-

“शपाम्यार्यस्यैव पादपांसुस्पर्शेन, यदि परिगणितैरेव वासरैः सकलचापचापल दुर्ललितनरपतिचरण-रणरणायमाननिगडां निर्गौडं गां न करोमि ततस्तनूनपाति पौतसर्पिषि पतङ्ग इव पातको पातयात्मानम्।”

अर्थात् आर्य की ही चरणधूलि लेकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि कुछ ही दिनों के अन्दर धनुष चलाने की चपलता के घमण्ड में भरे हुए समग्र उद्धत राजाओं के पैरों की बेड़ियों की झनकार से पूर्ण करके पृथ्वी को गौडरहित न बना दूँ तो घी से धधकती हुई आग में पतिङ्ग के समान पातकी स्वयम् को जला डालूंगा।

इस प्रसङ्ग में हर्ष के द्वारा अभिव्यक्त उनके प्रचण्ड क्रोध से जहाँ एक ओर उनके भ्रातृ- भक्ति का परिचय मिलता है वहीं दूसरी ओर उनके प्रचण्ड शौर्य एवं ओजस्वी व्यक्तित्व का भी संकेत प्राप्त होता है।

सप्तम उच्छ्वास के अन्तर्गत प्राग्जोतिषेश्वर कुमार द्वारा भेजे गये 'आभोग' नामक अद्भुत छत्र तथा अन्य वस्तुओं को उपहार में पाकर वे उनके प्रति कृतकृत्य हो उठते हैं तथा उनके साथ आजीवन मैत्री बनाये रखने का निश्चय मन में कर लेते हैं। हर्ष की इस भावना से उनकी कृतज्ञता का ही साक्षात्कार होता है।

काव्य के पूर्वार्ध में किये गये वर्णन के अनुसार हर्ष के द्वारा बाण का जैसा स्वागत किया जाता है उससे उनकी गुणग्राहिता भी स्वतः प्रकाश में आ जाती है। पहले तो कुछ लोगों के बहकावे में आकर ये बाण का तिरस्कार करते हैं किन्तु जब बाण स्वयम् अपना विशिष्ट परिचय देते हैं, तो हर्ष उनके प्रति श्रद्धाशील होकर उन्हें उचित सम्मान देते हैं। बाण ने स्वयम् ही हर्ष की गुणग्राहकता का विस्तृत वर्णन किया है।

इस प्रकार परम ऐश्वर्यशाली, महान् पराक्रमी, नितान्त रणोत्साही, विवेकशील तथा गुणग्राही चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में तो उनका चित्रण किया ही गया है, साथ ही पितृभक्ति, भ्रातृभक्ति, प्रजावत्सलता, कृतज्ञता आदि अनेक सद्गुणों से मण्डित हर्ष का चरित्र नितान्त स्पृहणीय एवं परमश्लाघ्य भी है।

1.7.4 राज्यश्री :

राज्यश्री महाराज प्रभाकर वर्धन एवं महारानी यशोवती को सबसे छोटी सन्तान थी। वह परमलावण्यमयी एवं कोमलाङ्गी थी। नृत्य-गीत आदि विभिन्न ललित-कलाओं में वह दक्षा थी। जब उसने युवावस्था में प्रवेश किया तो उससे विवाह करने के लिए अनेक राजाओं के प्रस्ताव आने लगे। उसके अप्रतिम सौन्दर्य एवं सर्वगुण सम्पन्नता के कारण ही सभी राजाओं के लिए यह काम्या बन गयी थी। जिस प्रकार बाण एक ही लक्ष्य पर गिरते हैं, उसी प्रकार उसके ऊपर सभी राजाओं की दृष्टि पड़ गयी थी। अपने- अपने दूत भेज कर राजा लोग उसकी याचना करने लगे थे-

“निपेतुरेकस्यां तस्यां शरा इव लक्ष्यभुवि भूभुजा सर्वेषां दृष्टयः। दूतसम्प्रेषणदादिभिश्च तां ययाचिरे राजानः।”

उचित समय पर पिता ने ग्रहवर्मा जैसे सुन्दर, योग्य एवं वीर राजा के साथ राज्यश्री का पाणिग्रहणसंस्कार सम्पन्न करवा कर उसे ससुराल भेज दिया। कालान्तर में राज्यश्री के ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। मालवराज द्वारा उसके पति की निर्मम हत्या कर दी गयी तथा उसे भी बन्दी बना कर कारावास में डाल दिया गया। अपने सतीत्व की रक्षा करने हेतु

वह किसी प्रकार मालवराज के कारावास से भाग निकली तथा विन्ध्य के भयानक जंगल में भटकने लगी। राज्यश्री के इस आचरण से उसकी पति-परायणता तथा सहिष्णुता रूपी गुणों का स्पष्ट संकेत मिलता है। सम्राट् हर्षवर्धन को जब एक भिक्षु के द्वारा राज्यश्री का पता चलता है तो वे उसे ढूँढ़ निकालते हैं, वहाँ पर भाई एवं बहन के परस्पर मिलाप का दृश्य बड़ा ही कारुणिक सिद्ध हुआ है। राज्यश्री विधवा होने के कारण कषाय वस्त्र धारण कर भिक्षु दिवाकरभित्र के आश्रम में भिक्षुणी के रूप में रह जाती है और इस प्रकार वह एक भारतीय ललना के उच्चादर्श को प्रस्तुत करने में कृतकार्य सिद्ध होती है, क्योंकि भारतीय नारी के लिए पति के अभाव में समस्त सांसारिक सुख हेय हुआ करता है।

इस प्रकार प्रारम्भ में जो सर्वगुण सम्पन्ना, नितान्त सौन्दर्यमयी तथा परमा सुकुमारी राजकुमारी के रूप में चित्रित की गयी थी वही राज्यश्री भन्ततः विरक्ता भिक्षुणी के रूप में पाठकों के मानस पटल पर अपने उदात्त व्यक्तित्व को अमिट छाप छोड़ती प्रतीत होती है। आदि से अन्त तक वह एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में ही चित्रित की गयी है इसलिए उसका चरित्र भी सुतरां प्रशंस्य है।

1.8 पञ्चम-उच्छ्वास का सार :

राजा ने राज्यवर्धन को युवराज बनाकर हूण नामक स्वधर्मच्युत क्षत्रियों को जीतने के लिये उत्तर में स्थित प्रदेशों में भेजा। राजकुमार हर्षवर्धन भी सहोदरता के स्नेह से कुछ दूर तक अश्वारूढ़ होकर उसके लिये उस गति को ही श्रेयस्कर समझकर अधोमुख किये चुप-चाप बड़ा रहा। रानी यशोवती पुत्र-स्नेह को त्याग कर अन्तःपुर से निकल पड़ी, और पैदल ही चढ़ती हुई सरस्वती नदी के तट पर पहुँची, वही पर चिता रचवाकर उस चिताग्नि पर आरूढ़ हो गई। तब हर्ष, माता यशोवती की मृत्यु से अत्यन्त विह्वल होकर पुनः पिता के पास पहुँचा। पिता के अल्पावशेष जीवन को अपनी अश्रुधाराओं से सींचता हुआ विमुक्त कण्ठ से चिरकाल तक रोता रहा। बहुत समय के पश्चात् राजा की आँखें जब खुलीं, तब उन्होंने राजकुमार को उस तरह रोते देखकर अत्यन्त क्षीणस्वर में किसी तरह कष्ट से कहा- हे बेटे! इस प्रकार विह्वल होते अपनी आत्मा को क्यों नहीं रोक पा रहे हो? तेरे जैसे पुरुष, अमहासत्त्व नहीं हुआ करते, तथा अल्पबुद्धि नहीं हुआ करते। कहाँ तेरे जैसे महापुरुष? और कहाँ यह विकलता? तुम कुलदीपक हो, तुम पुरुषसिंह हो। विधाता ने ही सार्वभौम के शुभ लक्षणों से तुम्हें विभूषित कर दिया है। अतः “यह पृथ्वी तुम्हारी है” यह कहना पुनरुक्ति ही होगी। लक्ष्मी ने स्वयं होकर तुम्हारा हाथ, अपने हाथ में लिया है, अतः “लक्ष्मी का आलम्बन करो”, यह कहना अनुचित होगा। हे बेटे ! अब चपलता पर नियन्त्रण रखो इत्यादि

उपदेश देना, तुम जैसे स्वभाव से धीरपुरुष के लिये आवश्यक नहीं है। इत्यादि स्नेहपूर्ण वचनों को कहता हुआ वह राजसिंह पञ्चमहाभूतों में विलीन हो गया।

उसी समय वासरमणि भगवान् सूर्य भी अस्तंगत हो गये। पूर्व दिशा में तारापति चन्द्र के प्रकाशित होने पर अनेक सामन्त नृपगण, नागरिकजन, पुरोहितगण आदि राजभक्त प्रजाजन एकत्रित हो गये। राजा की शव-शिबिका को उठाने में राजाओं ने स्वयं अपने कन्धे दिये और उस शिबिका को सरस्वती नदी के तट पर ले गये। वहाँ पर राजोचित चिता पर उस राजा के शरी को रखा गया और अग्निक्रिया करके उनके शरीर का भस्मान्त कर दिया। इस रीति से औशीनर के समान वह यशोधन राजेन्द्र कीर्तिशेष मात्र रह गया। रात बीत गई, भगवान् सूर्य का पुनः उदय हुआ। तब हर्ष ने स्नान किया और पिता के लिये जलाञ्जलि दी। प्रेत कार्य के उद्देश्य से स्नान किया हुआ आर्द्रमस्तक से ही धौत-धोती तथा उत्तरीय-वस्त्र धारण कर पैदल, ही अधोमुखदृष्टि किये गरम गरम श्वासोच्छ्वास के साथ राजभवन में वह वापस आया।

इस प्रकार एक साथ ही माता-पिता से विहीन होने के कारण हर्ष, नितान्त-विह्वल और किंकर्तव्यविमूढ से हो गये। अपने बड़े भाई राज्यवर्धन के विषय में सोचने लगे पिता की, महाप्रलय के समान मृत्यु को सुनकर भैया का तो धीरज ही छूट जायेगा। उनकी आँखों से तो आसुओं का प्रवाह ही उमड़ पड़ेगा। उस शोकावेग में क्या वे वन में चले जायेंगे? अथवा राज्यसिंहानन का हो त्याग कर देंगे? अथवा समीप आई हुई राजलक्ष्मी का अनादर कर देंगे? क्योंकि बड़े भैया, बहुत ही पितृवत्सल है। वे सर्वदा ही पिताजी की प्रशंसा करते हुए मुझ से कहा करते थे वत्स हर्ष! अपने पिताजी जैसा शरीर, क्या किसी अन्य का है? या कभी किसी का था? या किसी का आगे होगा? ऐसा मुखकमल क्या किसी का है? उनकी जैसी भुआएँ क्या अन्य किसी की हैं? इनके जैसे कार्य, क्या अन्य किसी के दिखाई देते हैं? अपने पिताजी के अतिरिक्त कौन दूसरा ऐसा स्वाभिमानी, पराक्रमी, दानशूर हो सकता है? इस प्रकार उनके कथनों का स्मरण करते हुए शोकार्त होकर उनकी प्रतीक्षा में समय व्यतीत करने लगे।

1.9 बाणभट्ट की प्रशंसा :

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरे-

ऽलङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।

आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवी चातुरी-

सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः॥

(श्रीचन्द्रदेवस्य)

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण सर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किता कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ् मन्ये परिम्लानताम्॥
(रुय्यककृतव्यक्तिविवेकव्याख्याने)

अर्थेश्वरं हन्त भजेऽभिनदं वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे।
रसेश्वरं नौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि॥
(उदयसुन्दर्या सोद्बलस्य)

परिशीलितैव सरसं कविराजैर्बहुभिरत्र वाग्देवी।
बाणेन तु वैजात्यात् कथयति नामैव वाणीति॥
(विश्वेश्वरस्य)

शश्वद्वाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाद्येन निःशेषो रञ्जितो जनः॥
(त्रिविक्रमस्य)

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥
(गोवर्धनस्य)

सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः।
श्रीहर्ष इव संघट्ट चक्रे बाणमयूरयोः॥
(नवसाहसाङ्के)

प्रतिकविभेदनबाणः, कवितातरुगहनविहरणमयूरः।
सहृदयलोकसुबन्धुजंयति, श्रीभट्टबाणकविराजः॥
(वीरनारायणचरिते)

1.10 हर्षचरित के प्रमुख गद्यांश :

दुःस्वप्न दर्शन :

एकदा तु वासतेय्यास्तुरीये यामे प्रत्युषस्येव स्वप्नेचटुलज्वालापुंजपिंजरीकृतसकल-
ककुभादुर्निवारेण- दवहुतभुजा दह्यमानं केसरीणं अट्टाक्षीत्। तस्मिन् एव दावदहने समुत्सृज्य

शावकान् उत्प्लुत्य चात्मानं पातयन्तीं सिंहीमपश्यत्। आसीच्चास्य चेतसि-लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति। प्रबुद्धस्य चास्य, मुहुर्मुहु दक्षिणेतरमक्षि पस्पन्दे। गात्रेषु चाकस्मादेव वेपथुर्विपप्रधे। निर्निमित्तमेवान्तर्बन्धनस्थानाच्चात्मेव हृदयम्। अकारणादेव चाजायत गरीयसी दुःखासिका। किमिदमिति च समुत्पन्न विविध विकल्पविमथित- मतिरपगतधृतिश्चिन्तावनमितवदनः स्तिमिततारकेण चक्षुषा समुद्भिद्यमान- स्थलकमलिनीवनामिव चकार चकोरेक्षणः क्षणं क्षोणीम्। अहिनश्च तस्मिन् शून्येनैव च चेतसा चिक्रीड मृगयाम्। आरोहति च चरितहये मध्यमह्नो भवनमागत्योभयतो मन्दं मन्दं संवाह्यमान तनुतालवृन्तः क्षितिलवितता- मतिशिशिर-मलयजरसलव-लुलितवपुषमिन्दुधवलपधानधारिणो वेत्रपट्टिकामधिशयानः साशंक एव तस्थौ।

अनुवाद :

एक बार रात के चौथे प्रहर उषाकाल में ही हर्ष ने स्वप्न में चंचल ज्वालाओं से सम्पूर्ण दिशाओं को लाल-पीला किये हुए, न बुझाई जा सकने वाली वनाग्नि द्वार जलाया जाता हुआ सिंह को देखा और उसी वनाग्नि में अपने बच्चों को झोंकर तथा छलांग लगाकर स्वयं को भी उसमें डालती हुई सिंही को भी देखी। हर्ष के मन में विचार आया- संसार में सचमुच लोहे से भी कठिन स्नेहरूप बन्धनपाश हुआ करते हैं, जिनसे आकृष्ट हुए पशु-पक्षी भी इस तरह करते हैं। सोकर उठी उसकी बायीं आंख बार-बार फड़क उठी, अंगों में अकस्मात् कम्पन होने लगा। अकारण ही हृदय भीतरी बन्धन के स्थान से बाहर निकलता सा प्रतीत होने लगा। बिना कारण के ही दुःख का वेग बहुत बढ़ गया, यह क्या है? इस तरह विभिन्न प्रकार के विकल्पों से मथित बुद्धि वाले, धैर्य से रहित होकर चिन्ता के कारण झुके हुए मुखमण्डल वाले हर्ष, स्थिर पुतलियों वाले नेत्रों से पृथ्वी की और चकोर के समान क्षणभर देखने लगे मानो जमीन से निकलती हुई स्थल कमलिनियों को निहार रहे हों, उस दिन शून्य हृदय से ही उन्होंने शिकार खेला। जब मध्याह्न हो गया तब लौटकर वे निवास स्थान पर आये तथा जमीन पर बिछी हुई बैत की चटाई पर, जो अत्यन्त शीतल चन्दन रस के छिड़काव के कारण भीगी हुई थी और जिसके शिर के नीचे सफेद तकिया रखा हुआ था, चिन्तित होकर बैठ गये, तथा उनके दोनों और ताड़ के पंखे धीरे- धीरे सेवकों द्वारा झले जाने लगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

वासतेयी- रात्रौ, तुरीये- चतुर्थे, यामे- प्रहरे। चटुलाः- चंचलाः। दवस्य- वनस्य। हतभुजा- अग्निना। केसरिण- सिंहम्। अट्टाक्षीत्- अपश्यत्। दावदहन- वनाग्नि। शावकान्- शिशुन्। समुत्सृज्य- परित्यज्य। पातयन्ती- प्रक्षिपन्ती। चचाल- चलितं अभवत्। विपप्रथे-

प्रथितवान्। अजायत- उत्पद्यत। अपगता- दूरीभूता। अवनमित- नीचैः। क्षौणी- पृथ्वी।
चकार- कृतवान्। स्तिमिता- स्तब्धा। अहिन- दिवसे। चिक्रीड- क्रीडितवान्। हरितहये-
हरितवर्णाः- हयाः अश्वाः यस्य तस्मिन् (बहुव्रीहि)। आरोहति- प्राप्नुवती। क्षितितले- भूतले।
वेत्रपट्टिका- वेत्रनिर्मितशय्याम्। अधिशयान- अधितिष्ठन्। तस्थौ- स्थितः।

शोकाकुल स्कन्धावार :

अन्यस्मिन् अहनि मध्यन्दिने विगतजयशब्दम्, अस्तमितसूर्यनादम्, उपसंहृतगीतम्, उत्सारित
उत्सवम् अप्रगोत-चारणम्, अप्रसारित आपणपण्यम्, स्थानस्थानेषु पवनबलकुटिलाभिः कोटिहोमधू-
मलेखाभिः, उल्लसन्तीभिः, यममहिषविषाणकोटिभिः इव उल्लिख्यमानम्, कृतान्तपाशवागुराभिरिव
वेष्ट्यमानम्, क्वचित् प्रतिशायितस्निग्धबान्धवाराध्यमानहिर्बुध्नम्, उपहतमिव श्मशानपांशुभिः
अमंगलैरिव परिगृहीतम्, यातुधानैरिव- विध्वस्तम्, कलिकालेनेव कवलितम्, अधर्मविक्षपैरिव
लुण्ठितम्, शून्यमिव-सुप्तमिव-मुषितमिव- विलिखितमिव- छलितमिव-मूर्च्छितमिव स्कन्धावारं
समाससाद।

अनुवाद :

दूसरे दिन दोपहर को जहाँ जय-जयकार की ध्वनी बिलकुल बन्द थी, जहाँ तूर्य की
आवाज नहीं हो पा रही थी, जहाँ गीत नहीं हो रहा था, जहाँ उत्सव बन्द करा दिये गये थे,
जहाँ चारण स्तुति गान नहीं कर रहे थे, जहाँ बाजारों में खरीदी जाने वाली वस्तुएँ नहीं
फैलाई गई थी, जहाँ जगह- जगह पर यज्ञों की करोड़ों धूमलेखाएँ हवा के कारण टेढ़ी-मेढ़ी
निकल रही थीं मानो यमराज के भैसे की सींगों के अग्रभागों से कुरेदा जा रहा हो, जो मानो
यमराज के फाँस से घिरा हुआ था। कहीं राजा के स्नेह- बान्धव लोग उपवास में रहकर
भगवान् शिव की आराधना कर रहे थे। जो श्मशान की धूलियों से मानो दूषित हो चुका था,
जो मानो चारों ओर से अमंगलों से घिर चुका था, जो मानो राक्षसों द्वारा विध्वस्त कर दिया
गया था, जो मानो कलिकाल द्वारा निगल लिया गया था, जो मानो अधर्म के कार्यों से लुट
चुका था, जो बिलकुल सुनसान की तरह, सुप्त की तरह, लुटे हुए की तरह, छले हुए की
तरह, बेहोशी को प्राप्त हुए की तरह था, ऐसे स्कन्धावार नामक राजधानी में हर्ष पहुँचा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

अन्यस्मिन्-अपरस्मिन्। अहनि-दिने। मध्यन्दिने- मध्याह्ने। विगतः- अपगतः। तूर्याणा-
वाद्यविशेषाणाम्। उपसंहृतानि-समाप्तानि। उत्सारितः- अपनीतः। उत्सवः- आनन्दः। पण्यानि-
विक्रयवस्तूनि। उल्लिख्यमानम्- धृष्यमाणम्। कृतान्तः- यमः। पाशस्य- बन्धनस्य। वागुरा-
जालम्। आवेष्ट्यमानम्- परिव्रियमाणम्। वायसाना- काकानाम्। भ्रमन्तीभिः- विचरन्तीभिः।
आवेद्यमान- सूच्यमानम्। प्रतिशायिताः- उपोषिताः। अहिर्बुध्नः- शिवः। आमर्दकः- वेतालः।

उद्ध्रियमाणः- उत्थाप्यमानम्। वप्रः- प्राकारः (दीवार)। विधृतः- स्थापितः। विकलाः- व्याकुलाः। निशिता- तीक्ष्णा। शस्त्री- छुरिका। निकृत्त- छिन्नम्। उपहतम्- दूषितम्। कवलितम्- ग्रासीकृतम्। पटलैः- समूहैः। संछादितम्- आवृतम्। विक्षेपैः- संचारैः। अनित्यतायाः- विनश्वरतायाः। धिक्कारैः- अवज्ञाभिः। विलासैः- चेष्टितैः। सुप्तम्- निहितम्। मुषितम्- लुण्ठितम्। मूर्छितम्- गतचेतनम्। स्कन्धावारम्- राजधानीम्। समाससाद- प्राप्तवान्।

रूग्णावस्था में प्रभाकरधर्म का वर्णन :

परलोकविजयाय नीराज्यमानमिव ज्वरज्वलनेन अनवरतपरिवर्तनैरस्तरङ्गिणि शयनीये शेषमिव विषोष्मणा क्षीरोदन्वति विचेष्टमानम्। कालेन कैलासमिव दशाननेनोदध्रियमाणम्, अविरतचन्दन-चर्चापराणां परिचारकाणामत्युष्णावयवस्पर्शभेस्मौभूतोदरैश्विधवलैः करैः स्पृश्यमानं, आसन्नयम-दर्शानोद्वेगादिव च किञ्चित् अन्तं प्रविष्टतारकं चक्षुर्दधानम्। उरःस्थलस्थापितमणिमौक्तिक-हारचन्दनचन्द्रकान्तं कृतान्तदूतदर्शनयोग्यमिवात्मानं कुर्वाणम्, महाप्रस्थानकाले स्वसन्तापसन्तान-आप्तहृदयेषु संचारयन्तम्, अरपरिगृहीतं इत्येव छायाया विमुच्यमानम्, दष्टं दुःखासिकया आत्मीकृत-अस्वास्थ्येन विधेयीकृतं व्याधिना, क्रोडीकृतं कालेन, पीतमिव पीडाभिः, जग्धमिव जागरणेन, ग्रासीकृतमिव गात्रभंगेन, पार्श्वोपविष्टया-चानवरतः रोदनोच्छूननयनया गृहीत चामरिकयापि निःश्वसितैरेव विजयन्त्या विविध ओषधिधूलिधुसरित शरीरया मुहुमुहुः आर्यपुत्र! स्वपिषि इति व्याहरन्त्या देव्या यशोमत्या शिरसि वक्षसि च स्पृश्यमानं पितरमद्राक्षीत्।

अनुवाद :

परलोक पर विजय प्राप्त करने हेतु ज्वराग्नि से जिनकी मानो आरती, उतारी जा रही थी, जो ज्वर के कारण अंग परिवर्तनों से तरंगित शय्या पर इस प्रकार छटपटा रहा था, जैसे तरंगों वाले क्षीर समुद्र में विष की ज्वाला के कारण शेषनाग छटपटाता है। जिस प्रकार रावण ने कैलास पर्वत को उठा लिया था उसी प्रकार काल अर्थात् मृत्यु द्वारा उठालिये जाते हुए, निकटवर्ती यम के दर्शनजन्य उद्वेग के कारण ही मानो जिनकी आंखें भीतर की और धंसती जा रही थी ऐसे, जिनके वक्षःस्थल पर मणि और मुक्ता के हार चन्दन और चन्द्रकान्त से युक्त ऐसा लग रहा था, मानो अपने को यमदूत के दर्शनयोग्य बना रहा हो, महाप्रयाण के समय अपने सन्तापसमूह को स्वजनों के हृदय में जो संचरित कर रहे थे ऐसे अरतिग्रस्त हो जाने के कारण ईर्ष्या से कान्ति के द्वारा जो परित्यक्त किये जा रहे थे ऐसे, जो दुःखानुभूति से दष्ट थे ऐसे, जिन्हें व्याधिने अपने अधीन कर रखा था ऐसे, जिन्हें काल ने अपनी गोद में ले लिया था ऐसे, जो मानो पीड़ाओं द्वारा पी लिये गये थे, जागरण द्वारा मानो खा लिये गये थे, अंगों की तोड़-मरोड़ द्वारा (अपना) ग्रास बना दिया था। पास बैठी हुई, निरन्तर रोते रहने के कारण सूजी हुई आंखों वाली, चँवर लिये रहने पर भी केवल निःश्वासों से हवा

करती हुई, अनेक प्रकार के ओषधि की धूल से धूसरित शरीर वाली तथा बार-बार आर्यपुत्र! क्या आप सो रहे हैं, ऐसा पूछती हुई रानी यशोमती जिनके सिर एवं छाती का स्पर्श कर रही थी ऐसे अपने पिता को हर्ष ने देखा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

आसन्नः- सन्निहितः। यमः- मृत्युः। उद्वेग- भयम्। प्रविष्टाः- गताः। तारका- कनीनिका। निराज्यमान- नीराजनविषयीक्रियमाणम्। ज्वलन- अग्नि। विषस्य उष्मणा- उष्णिम्ना। विचेष्टमान- विविधं चेष्टमानम्। क्षीरोदन्वति- क्षीरसमुद्रे। उद्धाध्रिमाणम्- उत्थाप्यमाणम्। अविरता- निरन्तरा। चर्चा- लेपः। स्पर्शः- संसर्गः। स्पृश्यमाणम्- स्पर्शविषयीक्रियमाणम्। आसन्नः- समीपस्थः। उरस्थले- वक्षस्थले। कृतान्तः- यमराजः। महाप्रस्थान- महायात्रा मृत्युरित्यर्थः। आप्तहृदयेषु- बन्धुबान्धवानां हृदयेषु। संचारयन्तम्- संक्रामयन्तम्। अरतिः- एकत्र अनवस्थितिः परिगृहीतम्- आत्मीर्याकृतम्। ईर्ष्या- असूयया। मुच्यमाणम्- परित्यज्यमाणम्। आत्मौकृतम्- स्वायत्तीकृतम्। विधेयीकृतम्- आज्ञापालकीकृतम्। दष्टम्- क्षतम्। पीतम्- पानविषयीकृतम्। जग्धम्- भक्षितम्। ग्रासीकृत- कवलीकृतम्। दीर्घनिद्रायाः- मृत्युरूपायाः महानिद्रायाः। जीवितेशस्य- यमस्य। उपविष्टा- स्थितया अनुवद्धम्- अनुसृतम्। निश्वसितैः- निजदीर्घ- निश्वसैः। वीजयन्त्या- वीजनं कुर्वन्त्या व्यवहरन्त्या- कथयन्त्या वक्षसि- उरसि। अद्राक्षीत्- अपश्यत्।

राजभवन में अशुभसूचक उत्पात :

नराधिपविनाशसंभ्रमभीतैलोकपालैरिव कालायसकवाटपुटैः अकालकालमेघपटलैः अरूध्यन्त दिग्द्वाराणि। प्रेतपतिप्रयाणपहताः पटवः पटहा इवारटन्तो हृदयस्फोटनाः पस्फायिरे निर्घातानां घोरा निर्घोषाः। निकटी- भ्रमद्यममहिषखुरपुटोद्भूता इव द्युमणि धामः धूसरी चक्रूः। क्रमेलककचकपिलाः पांशुवृष्टयः। विरसविरा- विणीनामुन्मुखीनां शिखिनो ज्वालाः प्रतीच्छन्त्य इव पतन्तोरूल्का नभसा बवाशिरे शिवानां राजयः। राजधामनि धूमाय- मानकबरीविभागविभावितविकाराः प्रक्रीर्णकेशपाश- प्रकाशितशोकारिव प्राकारान्त प्रतिमाः कूलदेवतानाम्।

उपसिंहासनमाकुलं कालरात्रिविधूयमानवृजिनवेणीबन्धविभ्रमं विभाणं बभ्रम भ्रामरं पटलम्। अटतां अन्तः पुरस्योपरि क्षणमपि न शशाम व्याक्रोशौ वायसानाम्। श्वेतात्पत्रमण्डलमध्याज्जीवितमिव राज्यस्य सरसपिशित- पिण्डलोहितं चञ्चच्चञ्चुरूच्चैरूच्चखानं खण्डं माणिक्यस्य कूणम् जरन् गृधः। महोत्पातदूयमानश्च कथमपि निनाय निशाम्।

अनुवाद :

राजा की मृत्यु पर होने वाली भागदौड़ से डरे हुए लोकपालों ने लोहे के क्वाड़ जैसे लग रहे असमय के मेघसमूहों से दिशाओं के द्वार ढक दिए, यमराज के प्रस्थान में बज

रहे तीव्र नगाड़े जैसे- गड़गड़ाते और परस्पर टकराते पवनों के हृदय दहल जाने वाले निर्घोष बढ़ गये। निकट-निकट आते हुए यम के भैसे के खुर-पुटों से उठी हुई जैसी ऊंट के बालों के समान पीली-पीली धूल-वृष्टियाँ सूर्य के तेज को धूसर बना बैठी। बुरी तरह चिल्लाने वाले गीदड़-गीदड़ियों के झुण्ड ऊपर मुह किये आग की लपटों के समान गिरती हुई उल्काओं को (मुँह से) ग्रहण करते हुए जैसे चिल्ला उठे। राजप्रसाद में धुआं छोड़ते हुए सीमन्तों द्वारा विकार प्रकट किये हुए कुलदेवताओं की मूर्तियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो बिखरे हुए केशसमूहों द्वारा (अपना) शोक दिखाये हुए हों। राजसिंहासन के पास कालरात्रि के लटकते हिलते हुए टेढ़े वेणीबन्ध का आकार धारण करता हुआ चपल भ्रमरसमूह मंडरा पड़ा। अन्तःपुर के ऊपर उड़ते हुए कौओं की कांव-कांव क्षणभर भी नहीं रूकी। कूजता हुआ चंचल चोंच बाला बूढ़ा गीध श्वेताछत्र के घेरे के बीच में से खून-सने मांस खण्ड के समान (दीख रहे) लाल रत्न-खण्ड को राज्य के प्राण को जैसे ऊपर से उखाड़ बैठा। बड़े-बड़े उत्पातों से दुःखी होते हुए (हर्षवर्धन) ने किसी तरह रात काटी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

सम्भ्रमः- उद्वेगः। लोकपालैः- इन्द्रादिभिः अष्टदिगीशैः। कालायस्य- लोहस्य। प्रहताः- ताड़िता। पटवः- तीव्रध्वनयः, स्कोटयन्ति- विदारयन्ति। धोराः- भीषणाः। निर्धोषाः- शब्दाः। पस्फायिरेः (स्फाय+लिट्) ववृधिरे। क्रमेलकस्य- उष्ट्रस्य। कचाः- केशाः। विरसः- विगतः रसः। प्रतीच्छन्त्यः- गृहणन्त्य। ववाशिरे- आक्रन्दन। विभावितः- प्रदर्शितः। आकुल- चंचलम्, विभ्रम- विलासम्। विभ्राण- धारयन्तम्। पटल- समूहः। अटता- भ्रमताम्। व्याक्रोशः- विकृतस्वरेण विरावः। जीवित- प्राणम्। चंचन्ती- चलन्ती। जरन्- वृद्धः। उत्पाताः- प्राकृतिकोपद्रवाः। दूयमानः- खिद्यमानः। निनाय- अत्ययापयत्।

राजा की मृत्यु :

अस्मिन्नेवान्तरे पूषाप्यायुषेव तेजसा व्ययुज्यत। ततश्च लज्जमान इव नरपतिजीविता- पहरणजनितादात्मापराधात् अधोमुखेः समभवत्। भूपालाभावशोक शिखि इव चान्तस्ताप्यमानः ताम्रतां प्रपेदे। मन्दं मन्दमप्रियप्रश्नार्थं इव स्थितिमनुवर्तमानो लौकिकीमवतरत् दिवः। दित्सुरिव जनेशाय जलांजलिमपरजलनिधिसमीपमुपससर्प। सद्योदत्तनृपजलांजलिदुःखदहनदग्धमिव करसहस्रं आलोहितं अधत्त।

अनुवाद :

इसी बीच सूर्य भी आयु की भाँति तेज से वियुक्त हो गया और मानो राजा के प्राणों को हरने से उत्पन्न अपने पुत्र यम के अपराध के कारण लज्जित सा होकर उसने अपना मुँह नीचा कर लिया। राजा के अभाव रूपी शोकानल से मानो अन्दर ही संतप्त किया

गया वह ताम्बे के रंग का हो गया। मानो इस अप्रिय प्रश्न को पूछने के लिए की राजा की मृत्यु कैसे हुई लोक मर्यादा का अनुसरण कर रहा हो, इस प्रकार सूर्य धीरे-धीरे आकाश से उतर गया। मानो मृत राजा को जलांजलि देने की इच्छा से पश्चिम समुद्र के समीप पहुँच गया। तुरन्त जलांजलि देकर मानो दुःख की आग से जले हुए अपने लाल-लाल हजारों हाथों या किरणों को उसने धारण किया।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

अस्मिन् एव अन्तरे- मध्ये। पूषा- सूर्यः। व्ययुज्यत- वियुक्तोऽभवत्। अधोमुखः- विनमितमुखः। भूपालः- राज्ञः। शिखी- अग्निः। ताप्यमानः- प्रज्वाल्यमानः ताम्रता- रक्तवर्णताम्। प्रपेदे- प्राप्तवान्। स्थितिम्- मर्यादाम्। अनुवर्तमानः- अनुसरन्। दिवः- आकाशात्। जनेशाय- राज्ञे। जलांजलि- तर्पणांजलिम्। दित्सः- दातुं इच्छुः- (दा+सन्+उ)। उपससर्प- उपजगाम। आलोहित- ईषत् रक्तम्। कराः- किरणाः। अधत्त-धृतवान्।

हर्ष का शोक :

देवोऽपि हर्षः पुञ्जीभूतेन सकलेनेव जीवलोकेन राजकुलसंबद्धेन अशेषेण शोकमूकेन परिवृतो- अन्तर्वर्तिनापि शोकानलतप्तेन स्नेहद्रवेण बहिरिव सिच्यमानो निर्व्वधानायां धरण्यामुपविष्ट एव तां निशीथिनी भीमरथी भीमां अखिलां सराजको जजागार। अजनि चास्य चेतसि- ताते धूरीधूते संप्रत्येतावान् खलु जीवलोकः, लोकस्य भग्नाः पन्थानः मनोरथानां खिलीभूतानि भूतिस्थानानि, स्थगितानि आनन्दस्य द्वाराणि, सुप्ता सत्यवादिता, लुप्ता लोकयात्रा, विलीना बाहुशालिता, प्रलिना प्रियलापिता, प्रोषिताः पुरुषकारविहारविकाराः, समाप्ता समरशौण्डता, ध्वस्ता परगुणप्रीतिः, विभ्रान्ता विश्वासभूमयः, अपदान्यपदानानि, निरूपयोगानि शास्त्राणि, निरवलम्बना विक्रमैकरसता कथावशेषा विशेषज्ञता, ददातु जनो जलांजलिणित्याय प्रतिपद्यता- प्रव्रज्यां प्रजापालता, वघ्नातु वैधव्यबेणी वरमनुष्यता, समाश्रयतु राजश्रीराश्रमपदम्, परिधत्तां धवले वाससी वसुमती, बहत्तु वल्कले विलासिता, तपस्यतु तपोवनेषु तेजस्विता प्रावृणोतु चीवरे वीरता, क्व गम्यतां पुनस्तस्य कृते कृतज्ञताया? क्व पुनः प्राप्स्यति तादृशान् महापुरुष-निर्माण परमाणुन् परमेष्ठी, शून्याः संवृत्ता दशदिशो गुणानाम्, जगज्जातमन्धकारं धर्मस्य, निष्कलमधुना जन्म शास्त्रोपजीविनाम्। तातेन विना कुतस्त्यास्तादृश्यो- दिवसमसमसररसमारब्धकलहकथा कण्टकितसुभट कपोलभित्तयो वीरगोष्ठ्यः।

अपि नाम स्वप्नेऽपि दृश्यते दीर्घरक्तनयन-पुनस्तन्मुखेसरोजम् जन्मान्तरेऽपि पुनः परिष्वज्यते- तल्लोहस्तम्भाधिकगरिमगर्भं भुजयुगलम्। लोकान्तरेऽपि पुत्रः पुत्रः इति आलपतः पुनः पुनः श्रूयेत सा सुधारसमुद्गिरन्ती मथ्यमान क्षीरसागरोद्गारगम्भीरा भारतीति। एतानि चान्यानि च चिन्तयत एवास्य कथमपि सा क्षयमियाय।

अनुवाद :

इकट्टे हुए सारे संसार से जैसे-राजकुल से सम्बन्ध रखने वाले शोक में मौन सभी लोगों से घिरा हुआ देव हषवर्धन भी भीतर रहते हुए भी शोकानल से तपकर पिघले द्रव से जैसे (आ) बाहर सींचा जाता हुआ नंगी जमीन पर बैठा-बैठा ही राजाओं सहित भीमरथी के समान भयंकर उस सारी रात को जागता ही रहा और उसके मन में विचार उठे- पिताजी के चल बसने पर यह संसार अब बस इतना ही है, लोगों के (उन्नति) मार्ग टूट गये हैं, मनोरथों के समृद्धि स्थान सूने पड़ गये, आनन्द के द्वार बन्द हो गए, सत्यवादिता सो बैठी, लोगों की सुखपूर्वक जीवन यात्रा लुप्त हो गई, भुज-पराक्रम विलीन हो गया, मधुर भाषिता खो गई, पौरुष कर्मों के विविधरूप प्रवास कर गए, रणमत्तता समाप्त हो गई, परगुणों के लिए प्रेम विनष्ट हो गया, विश्वास के स्थान नहीं रहे, प्रशस्त कार्य स्थान वंचित हो गए, शास्त्र निष्प्रयोजन बन गए, वीररस के प्रति एकनिष्ठा निराश्रित हो गई, विशेषज्ञता कथाशेष रह गई, लोग अजेस्विता को जलांजलि दें, प्रजापालन धर्म सन्यास ले ले, उदात्तमानवता वैधव्य की एक वेणी बांध ले, राजलक्ष्मी आश्रयस्थान का आश्रय ले, पृथिवी दो श्वेतवस्त्र पहन ले, भोगविलासित बिल्कुल धारणा कर ले, तेजस्विता तपोवनों में तप करे, वीरता दो जीर्णवस्त्र ओढ़ ले, कृतज्ञता उसे (प्रभाकर वर्धन को) फिर ढूंढने कहा जाएगी?

ब्रह्मा महापुरुष के निर्माण के लिये कैसे जैसे- परमाणु कहाँ पाएगा? गुणों के लिए दशों दिशाएँ सूनी पड़ गई हैं, धर्म के लिए जगत् अन्धकार रूप हो गया है, शस्त्रजीवी लोगों का जन्म अब व्यर्थ पड़ गया है, पिताजी के बिना अनुपम युद्धधरण से आरम्भ हुई युद्ध-कथाओं से सुभटों के कपोल- स्थलों को रोमांचित कर देने वाली दिन भर की वैसी वीरगोष्ठियाँ कहाँ से आएंगी? काश! विशाल लाल लोचनों वाला उनका मुखकमल स्वप्न में भी देखने को मिल जाता, अपने भीतर लोहे के खम्भे से भी कई अधिक गरिमा रखने वाले उनके दोनो भुजाओं को दूसरे जन्म में भी फिर गले लगा लेता, जन्मान्तर में 'पुत्र' इस प्रकार कहते हुए उनकी वह अमृत रस वर्षा करने वाली, जोर से मथे क्षीर-सागर के शब्द के समान गम्भीर वाणी सुन पाता। ऐसे और अन्य बातों को सोचते हुए ही उसकी वह रात किसी तरह कटी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

पुंजीभूतेन- एकत्रीभूतेन। मूकेन- मौनेन, परिवृत्तः- परिगतः। सिच्चमानः- सेकं प्राप्यमाणः। उपविष्टः- स्थितः। निशीथिनी- निशाम्। जजागार- जागरित एव स्थितः। मनोरथाना- अभिलषितानाम्। भूति- समृद्धिः। स्थगितानि- रूद्धानि। लोकयात्रा- संसारस्य व्यवहारः। शौण्डता- मत्तता। निरूपयोगानि- निष्प्रयोजनानि। विक्रमैकरसता- पराक्रमैकनिष्ठता।

जलांजलिम्- मृतस्य कृते दीयमानं जलतर्पणांजलिम्। और्जित्याय- बलाय। प्रव्रज्या- सन्यासम्। प्रतिपद्यताम्- प्राप्नोतु। वरा- उत्कृष्टा। वैधव्यस्य- विधवात्वस्य। परिधत्तां- विभर्तु। वहतु- धारयतु। राजश्री- राजलक्ष्मी। आश्रमपदम्- तपोवनम्। तपस्यत- तपस्यां चरतू। चीवर- जीर्णवस्त्रम्। प्रावृणोतु- परिधत्ताम्। परमेष्ठी- ब्रह्मा। प्राप्स्यति- लप्स्यत। शून्याः- रहिताः। संवृत्ताः - जाताः। असमः- अनुपमः। समररसः- युद्धानुरागः। सुभटः- वीरः। भित्तयः- फलकानि। शस्त्रोपजिविनाम्- शस्त्रैः- आयुधै- ये प्रजीवन्ति (जीवनं यापयन्ति) इति भावः। वीरगोष्ठ्यः- वीरपुरुषाणां सम्मेलनानि। सरोज- कमलम्। जन्मान्तरे- अन्यस्मिन् जन्मनि। परिष्वज्येत- आश्लिष्येत। गरिमा- गौरवम्। गर्भे- अभ्यन्तरे। आलपतः- कथयतः। श्रूयते- आकर्ण्यते। उद्गिरन्ती- उद्वमन्ती। गम्भीरा- गभीरा, भारती- वाणी। चिन्तयतः- विचारयतः। यामिनी- रात्रिः। इयाय-गता।

हर्ष को राज्यवर्धन की चिन्ता :

अस्वतन्त्रीकृतश्च तैर्मनसापि नालभत शोकानुप्रवणमाचरितुम् अनुनीयमानश्च कथं कथमप्याहारादिकासु क्रियास्वाभिमुख्य अभजत। भातृगत हृदयश्चाचिन्तयत् अपि नाम तातस्य मरणं महाप्रलयसदृशं इदमुपश्रुत्य आर्यो वाष्पजलस्नातो न गृह्णीयात् वल्कले। नाश्रयेत् वा राजर्षि आश्रमपदं न विशेत् वा पुरुषसिंहो गिरिगुहाम् अम्रसलिलनिर्भरभरितनयननलिनो युगलो वा परयेदनाथां पृथिवीम्, प्रथम व्यसन विषमविह्वलः स्मरेदात्मानं वा पुरुषोत्तमः। अनित्यतया याति वैराग्यो वा न निराकुर्यादपसर्पन्तीः राजलक्ष्मीम्, दारुण दुःख दहनप्रज्वलितदेहो वा प्रतिपद्येताभिषेकम्, इहागतो वा राजर्षिभिर्मिथीयमानो न पराचिन्तां आचरेत्। अतिपितृपक्षपाती खलु आर्यः। सर्वदा तातश्लाघया मां अभिधत्ते- तात हर्ष, कस्यचित् अभूद् भविष्याति वा पुनः कांचनतालतरुप्रांशु कायप्रमाणमिदम्। ईदृक् च दिवसमुन्मुखविकसितं मुखमहाकमलं एतौ च वज्रस्तम्भभास्वरौ भुजकाण्डौ एते च हसित मदालस हलधर विभ्रमा विलासाः कोऽन्यो मानी विक्रान्तो वदान्यो वा इति। एतानि चान्यानि च चिन्तयन् दर्शनोत्सुको हृदयो भ्रातुरागमने उदीक्षमाण कथं कथमपि अतिष्ठत् इति।

अनुवाद :

उन लोगों द्वारा स्वतन्त्र न छोड़े जाने से हर्ष को शोक का अनुभव नहीं हो पाया। बहुत से मित्रों से प्रार्थना करने पर वे सगोत्र लोगों के साथ किसी- किसी प्रकार भोजनादि कार्यों में प्रवृत्त हुए, भाई राज्यवर्धन की याद करके वे सोचने लगे- “पिता जी की इस महाप्रलय के समान मृत्यु का समाचार सुनकर तात कहीं आँसुओं में स्नान करके अर्थात् रोते हुए वल्कल के जोड़े को न धारण कर लें अर्थात् विरक्त न बन जायें। अथवा वे राजर्षि आश्रम का आश्रय न ले लें। अथवा अश्रुजल से पुरी तरह भरे हुए नेत्र कमल वाले वे

अनाथ हुई पृथिवी को न देख लें। अथवा दुःख के प्रथम आघात से विह्वल होकर कहीं श्रेष्ठपुरुष वे आत्मचिन्तन में न लग जाये। अथवा संसार की अनित्यता से वैराग्य युक्त- होकर समीप आती हुई राजलक्ष्मी को कहीं वे ठुकरा न दें। अथवा घोर दुःखरूपी अग्नि के कारण जलते हुए शरीर वाले वे कहीं पानी में डूबने न लग जाये। अथवा यहाँ आने पर राजाओं के द्वारा विनती पर भी सिंहासन पर आरूढ़ होने से कहीं वे विमुख न हो जाये।

आर्य पिताजी अत्यन्त पक्षपाती है। हमेशा पिताजी प्रशंसा करते हुए मुझसे कहा करते हैं- “हर्ष! सुवर्ण के ताल वृक्ष के समान लम्बा शरीर किसी का हुआ है या फिर होगा? सूर्य के प्रति अनुराग से विकसित होने वाला उनका मुखरूपी महाकमल, वज्रस्तम्भ के समान चमने वाले उनके ये दोनों बाहुदण्ड और मद से अलसाये हुए तथा हंसते हुए बलराम के समान उनके विलास किसी के हुए हैं- या फिर कभी होंगे? इस प्रकार कौन दूसरा मानी पराक्रमी या दानशील है? इस प्रकार की और दूसरी- दूसरी चिन्ता करते हुए बड़े भाई के दर्शन की उत्सुकता से भरे हृदय वाले हर्ष उनके आने की प्रतीक्षा करते हुए किसी-किसी प्रकार अवस्थित रहे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी :

अस्वतन्त्रीकृत- न स्वाधीनीकृतः। अनुप्रवणम्- अनुकूलम्, आचरितुं- कर्तुम्। अलभत-प्राप्तवान्। अनुनीयमानः- प्रार्थ्यमानः। आभिमुख्यम्- पटुत्वम्। महाप्रलयेन- महाविनाशेन। उपश्रुत्य- श्रुत्वा। वाष्पाणाम्- अश्रुणां जलेन। स्नातः- कृतस्नानः। वल्कल- वस्त्रम्। गृहणीयात्- परिधत्ताम्। विशेत्- प्रविशेत्। अस्त्राण- अश्रूणाम्। निर्भर- पूर्णतया, भरित- पूरितम्। अनाथाम्- स्वामीरहिताम्। प्रथम- पूर्वम्। व्यसन- दुःखम्। विष- गरलम्। विह्वलः- व्याकुलः। उपसर्पन्ती- तस्य समीपे आगच्छन्तीमदहनः- अग्निः। प्रतिपद्येत- स्वीकूर्यात्। अभिधीयमानः- कथ्यमानः। पराचीनता- प्रतिकूलताम्। आचरेत्- कूर्यात्, अभिधत्ते- कथयति। उन्मुख- उद्यतम्। काण्डौ- दण्डौ। मदेन- मत्ततया, अलसः- मन्थरः। विक्रान्तः- विक्रमशीलः। वदान्यः- दानी। प्रासङ्गिकानि- विषयान्तराणि। चिन्तयन्- मनसि कुर्वन्। उदीक्षमाणः- प्रदीक्षमाणः। अतिष्ठत्- स्थितः।

1.11 अभ्यास प्रश्न :

अति-लघुत्तरात्मकप्रश्न :

प्र.1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए।

कथा एवं आख्यायिका है -

क) गद्यकाव्य ग) चम्पूकाव्य

ख) आख्यान घ) पद्यकाव्य

गद्यचिन्तामणि के रचयिता हैं -

क) बाणभट्ट ख) विश्वेश्वर पाण्डेय

ग) अश्वघोष घ) वादीभसिंह

बाणभट्ट की कृति है -

क) कादम्बरी ख) वासवदत्ता

ग) मन्दारमंजरी घ) मेघदूतम्

दशकुमारचरित के रचयिता हैं -

क) बाणभट्ट ख) दण्डी

ग) सुबन्धु घ) क्षेमेन्द्र

सुबन्धु की रचना है-

क) प्रबन्धकोश ख) प्रबन्धचिन्तामणि

ग) वासवदत्ता घ) शिवराजविजय

लघुत्तरात्मकप्रश्न :

प्र.1. साहित्यदर्पणकार के अनुसार गद्यकाव्य के चार भेदों के नाम बताइए।

साहित्यदर्पणकार के अनुसार गद्यकाव्य के चार भेदों का नाम इसप्रकार है- मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक।

प्र.2. तीन आधुनिक गद्यकारों के नाम बताइए।

तीन आधुनिक गद्यकारों के नाम इसप्रकार हैं- श्रीनारायण शास्त्री खिस्ते, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी तथा अभिराज राजेन्द्र मिश्र।

निबन्धात्मक प्रश्न :

प्र.1. बाणभट्ट की गद्यशैली का परिचय प्रदान कीजिए।

बाण से पूर्व सुबन्धु ने श्लिष्ट-पदावली से अलंकृत गद्यशैली का प्रयोग किया था। दण्डी की शैली में सरलता थी। बाण ने इन दोनों प्रकार की शैलियों का अपूर्व सन्तुलन प्रस्तुत किया और वर्ण्य विषय के अनुरूप पदावली का प्रयोग करते हुए गद्य के परिनिष्ठित स्वरूप को उपस्थापित किया। बाण की गद्यशैली का आदर्श वही है जिसे उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में दुर्लभ कहा है -

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥

अर्थात् नया अर्थ, सुन्दर स्वभावोक्ति, श्लेष अलंकार, रस तथा अक्षरों की दृढबन्धता ये सभी एक साथ दुर्लभ हैं। शब्दचयन की दृष्टि से बाण की गद्यशैली को पाञ्चाली रीति माना गया है। इस रीति में अर्थ के अनुरूप शब्दों की योजना होती है। बाण एक कलावादी कवि हैं और कला उनके वश में है। वे शृङ्गार में कोमल एवं सरस शब्दों का और वीभत्स आदि के वर्णन में कठोर वर्णों का प्रयोग करते हैं। दीर्घ-दीर्घ समस्त पदों का प्रयोग गद्य में ओजगुण उत्पन्न करता है और उसे ही गद्य का जीवन कहा गया है। बाण ने अपने गद्य में समासों के अवसरानुकूल प्रयोग का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया है। शुकनासोपदेश के निम्नलिखित उदाहरण उनकी शैली की विविधता को स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार कहीं दीर्घसमासों वाली भाषा का, तो कहीं अत्यन्त सरल वाक्यों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं।

कष्टमनऽजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशीरोपचारोहार्योऽतितीव्रोदर्पदाहज्वरोष्मा।
सततममूलमन्त्रगम्यो विषम विषयास्वादमोहरू। नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः।
बाणभट्ट की समास रहित शैली का एक उदाहरण यह है-

न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते। न कुलक्रमानुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमनुबुध्यते।

जहाँ भी इस प्रकार के उपदेश के प्रसंग हैं अथवा प्रेम या शोक आदि भावनाओं के अवसर हैं, वहाँ बाण की शैली प्रायः समासहीन या अल्प समास वाली है।

प्र.2. प्रभाकरवर्धन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

प्रभाकरवर्धन शहर्षचरित के प्रधान नायक सम्राट् हर्षवर्धन के पिता थे। शहर्षचरित के चतुर्थ उच्छ्वास में उनके गरिमा मण्डित व्यक्तित्व का भव्य प्रकाशन हुआ है। वे अद्वितीय पराक्रमी एवम् महान् योद्धा थे। उन्होंने सिन्धु, गुर्जर, गान्धार, लाट, मालव आदि प्रान्तों के राजाओं को युद्ध में पराजित कर अपना अतिविस्तृत एकछत्र-साम्राज्य स्थापित कर लिया था। वे हूणरूपी हरिणों के लिए सिंह सदृश थे। विलक्षण पराक्रमी होने के कारण ही वे शप्रतापशील के नाम से भी सुविख्यात थे-

प्रतापशील इति प्रथितापरमामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः।

प्रभाकरवर्धन अत्यन्त प्रजावत्सल तथा परोपकारी थे। पराक्रमी होने के साथ-साथ वे परम धार्मिक भी थे। उनके शासन काल में निरन्तर यज्ञ हुआ करते थे तथा मन्दिरों में सतत देव-पूजन होता था। उनके यहाँ स्वर्णनिर्मित वस्तुओं की भरमार थी तथा वे ब्राह्मणों

को दान में प्रचुर धन दिया करते थे जिससे उनकी ऐश्वर्यशालिता के साथ-साथ उनकी दानशीलता का भी परिचय प्राप्त होता है-

काञ्चनमयसर्वोपकरणैर्विभवैर्विशीर्णमिव मेरुणा,

द्विजदीयमानैरर्थकलशैः फलितमिव भाग्यसंपदा.....।

राज्यवर्धन एवम् हर्षवर्धन नामक अपने दोनों पुत्रों को उन्होंने जिस प्रकार उपदिष्ट किया है उससे पता चलता है कि वे व्यवहार, नीति एवम् राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित तथा मर्मज्ञ थे।

वत्सौ! प्रथमं राज्याङ्गदुर्लभाः सद्भृत्याः शल्यं हृदये निक्षिपन्त्यतिमार्गणाः।

मालवराज के कुमारगुप्त एवम् माधवगुप्त नामक दोनों पुत्रों के प्रति स्नेह, मृदुवा, सहानुभूति एवम् उदारता से परिपूर्ण व्यवहार उनकी कृपालुता का ही द्योतक है। अपनी पुत्री राज्यश्री के युवावस्था में प्रवेश करते ही वे उसके विवाह को लेकर चिन्तित हो उठते हैं तथा ग्रहवर्मा जैसे सुयोग्य वर के साथ उसका विवाह सम्पन्न करवाते हैं, जिससे अपने कर्तव्य के प्रति उनका सतत जागरूक रहना स्वतः परिलक्षित होता है।

स्वयम् मृत्युशय्या पर पड़े हुए तथा जीवन की अन्तिम साँसे गिनते हुए वे अपने बिलखते पुत्र हर्षवर्धन को जिस प्रकार सान्त्वना देते हैं, उससे उनके असीम धैर्य तथा लोकोत्तर सहिष्णुता की स्फुट अभिव्यक्ति होती है।

इस प्रकार महापराक्रमी, अद्वितीय योद्धा, परम ऐश्वर्यशाली, महान् परोपकारी, प्रजावत्सल एवम् पुत्रवत्सल, परमकर्तव्यपरायण राजाधिराज के रूप में चित्रित प्रभाकरवर्धन का चरित्र निश्चय ही परम सम्माननीय है।

